CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निजात्म तरंगिणी

णिजप्प-तरंगिणी

(हिन्दी - प्राकृत)

कृतिकार :
दिगम्बराचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज

प्राकृतानुवादक :
श्रमण मुनि आराध्यसागर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५.८

श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान
मं०मूल्य ....
वाराणसी

श्रीगणेश वर्णी दि०जैन संस्थान
नरियाँ वाराणसी-5

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिजप्प-तरंगिणी

किदिकारो

समणायरियो विसुद्धसायरो

पागिद-अणुवादगो

समणो आरज्झ-सायरो

निजात्म तरंगिणी

कृतिकार :

श्रमणाचार्य विशुद्धसागर जी महाराज

प्राकृतानुवादकः

श्रमण मुनि आराध्यसागर

प्रकाशक

श्रमण संस्कृति सेवा समिति

पूज्यश्री के साहित्य प्रकाशन हेतु कटिबद्ध संस्था

संपर्क : 94253-21151, 98262-10189

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृतिकार – दिगम्बराचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज

प्राकृतानुवाद – श्रमण आराध्यसागर मुनि

संपादक – डॉ. उदयचंद्र जी, उदयपुर

प्रथम संस्करण – 1000 प्रतियाँ 2017

प्राप्ति स्थल –
1. श्री आजाद कुमार जैन, इन्दौर,
मो. 09425321151
2. श्री मनीष जैन मोना, इन्दौर,
मो. 09826210189
3. श्री नंदीश्वर जिनालय, भोपाल,
मो. 09425374897
4. मनोज झांझरी, जयपुर मो. 09829063426
5. नमोस्तु शासन संघ, मुंबई मो. 09892297204

वेब लॉग इन – www.shramansanskriti.com

मुद्रक – पारस प्रिंटर्स (पवन जैन)
207/जी–10, साई बाबा काम्पलेक्स, एम.पी. नगर,
जोन–2, भोपाल मो. 9826240876

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

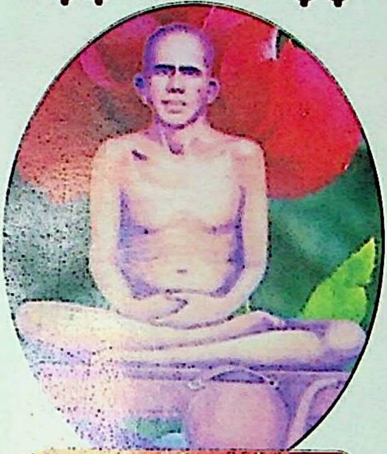

आदिसागर जी (अंकलीकर) महाराज

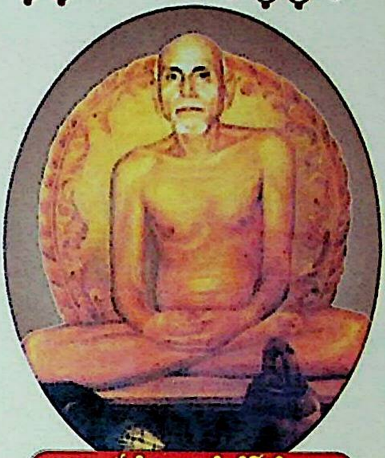

प.पू. आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्ति जी महाराज

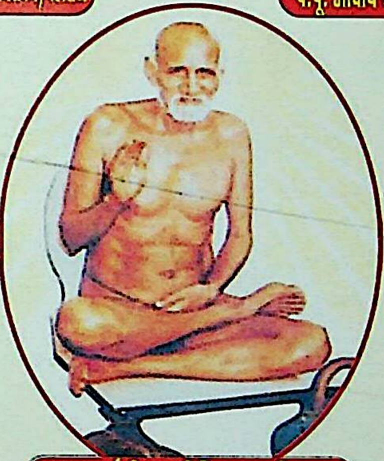

प.पू. आचार्य श्री १०८ श्री विमलसागरजी महाराज

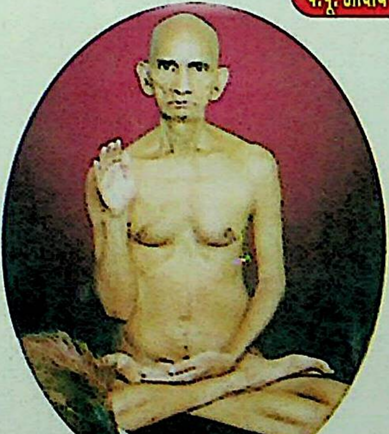

परम पूज्य आचार्य श्री १०८ सन्मतिसागर जी महाराज

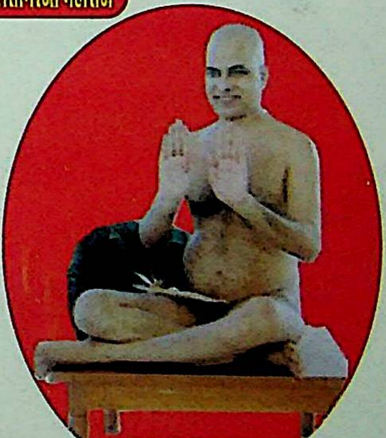

परम पूज्य आचार्य श्री १०८ विरागसागर जी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिगम्बराचार्य 108 विशुद्धसागर जी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

श्रमणाचार्य 108 श्री विशुद्धसागर जी महाराज
श्रमण परिषदी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Delhi and eGangotri

पूण्यार्जक परिवार

श्री रामणलाल कासलीवाल (जैन)

श्रीमती लता कासलीवाल (जैन)

श्री नेमचन्द रमणलाल अतिन रोमी कासलीवाल
37/45, ब्राह्मणपारा, दादा बाड़ी, जैन मन्दिर के पास,
राजनांद गांव (छ.ग.) मो.: 9425559778

श्री सुबोध छाबड़ा

श्री सुशील छाबड़ा

निर्मल, शान्ति, सुबोध, सुशील, सुमत छाबड़ा (चन्दलाईवाले) जयपुर
C/o छाबड़ा इन्टरप्राइजेज, पुराना बस स्टैण्ड
राजनांदगांव (छत्तीसगढ़) मो.: 9300109121

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगलाचरण

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥
चत्तारि मंगलं अरंहता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं
केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं॥
चत्तारि लोगुत्तमा अरहंता लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा
साहू लोगुत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा॥

चत्तारि सरणं पवज्जामि-अरहंते सरणं पवज्जामि
सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि
केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभाशीष

सारे विश्व को वस्तु स्वतंत्रता, कारण-कार्य-व्यवस्था, कर्म-सिद्धांत-भाव-शक्ति-क्रिया-शक्ति-अध्यात्म-सिद्धांत-तर्क-न्याय, व्याकरण-नीति-पुराण-चारित्र की व्याख्या करने वाले श्रुत-सागर को प्रदान करने वाले अनेक वीतरागी दिगम्बराचार्य हुए हैं जिन्होंने स्व-समय से संमय निकालकर समय अर्थात् आगम को समय प्रदान कर उन्होंने किया है, आत्म-ब्रह्म की सिद्धि हेतु शब्द-ब्रह्म का सृजनकर महान् उपकार किया है

श्रुताराधना आत्म-साधक का अनिवार्य अंग है। इसी भावना से युक्त होकर श्रुतसेवी श्रमण आराध्य सागर जी ने "निजात्म-तरंगिणी" ग्रन्थ का हिन्दी भाषा से प्राचीन आगम की भाषा प्राकृत में भाषान्तर कर वाग्वादिनी की अपूर्व सेवा एवं श्रुतभक्ति का परिचय दिया है। उनके पवित्र कार्य के लिए मंगलाशीष। इसी प्रकार भारती के भण्डार का वर्धन करें।

इति अलम्

ॐ नमः सिद्धेभ्यः —आचार्य विशुद्धसागर

मंगल प्रवास

सिवनी (म.प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्त-तरंग

हमने प्राकृत भाषा का अध्ययन किया, तदुपरान्त हमने आचार्य भगवंत से न्याय विद्या में विशारद प्राप्त किया। इस युग में न्याय, व्याकरण, व अध्यात्म को सुबोध शैली में समझाने वाला शायद ही कोई दूसरा हो या मेरे ध्यान से बाहर है। सभी दर्शनों के शिरमोर गुरुवर विशुद्धसागर जी से निवेदन किया।

गुरु जी! इमने प्राकृत भाषा के सिद्धांतो व लेखन शैली की कला का समार्जन कर लिया है, आपकी कृपा व आशीष से। उसमें अपनें आधिपत्य के हेतु, कोई उपाय बतलाने की कृपा करें। तब उन्होंने अपने वरद हस्तों से "निजात्म-तरंगिनी" नामक ग्रंथ प्राप्त सानुकम्पा की। निर्देश दिया एवं इस पर विचार करने को कहा। वह समय था 2014 की ग्रीष्म कालीन वाचना छतरपुर व इसका समापन भोपाल चातुर्मास विजयदशमी को पूर्ण हुआ।

यह कृति आचार्य भगवन् की साधना के शैसवकाल की रचना है। प्रत्येक जीव के जीवन में कैसे-कैसे पहलू सुख व दुःख के क्षण आते हैं, उनका स्थितिकरण किस तरह से हो सकता है, इसपर चिंत्वन विभिन्न दृष्टियों से करना, समुद्र मंथन से प्राप्त निधियों के तुल्य है। इन चिन्तवनों का संग्रह "निजात्म तरंगिणी" नामक ग्रन्थ है। जो दुःखी जनों के सुख-दुःख में परम मित्र के समान सिद्ध होगा।

अध्ययन व अनुवाद के कार्य में संघ के सभी संयतों का बहुमूल्य सहयोग रहा है, किसी न किसी रूप में जो अविष्मरणीय है। आरम्भिक प्रयास होने से स्वभाविक है, कि त्रुटियाँ बहुत सी होंगी। अतः विद्वत् वर्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से निवेदन है कृपा इसे सुधार कर ग्रहण करें व इस अल्पधी को अवश्य सूचित करें, ताकि पुनरावृत्ति न हो व संशोधन हो सके। इसमें जो भी है, वह आचार्यश्री का ही है, मैंने तो इसका अनुवाद मात्र किया है।

धनुर्विद्या में अर्जुन के समान प्राकृत विद्या के परम ज्ञाता डॉ.उदय चन्द्र जी ने जो सराहनीय कार्य कुशलता पूर्वक किया है, इसके लिए वे शुभाशीष के पात्र हैं। उन्हें आशीष है कि वे कई वर्षों तक इसी प्रकार श्रुत देवी की सेवा करते रहें। जितने भी भव्य जनों ने चाहे प्रेस वाले भाई या अन्य श्रावक जिन्होंने भी इस कार्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दिया है, उन्हें शुभाशीष।

अन्ततः यह कृति जिनकी है वे मेरे मन मन्दिर के देवता हैं। जिनसे बहुत सीखा और बहुत सीखने की अभिलाषा है, उनके चरणो में त्रियोग से बारम्बार नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

–श्रमण मुनि आराध्य सिन्धु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ. उदयचन्द्र जैन

णियप्प-तरंगिणी-दिट्ठी

णियप्प-तरंगिणी-एगा अज्झप्पहाण गज्ज-विवेयणं। अस्सि विवेयणे विविह-तरंगिणी अत्थि। सम्मत्त-अट्ठायामो णिस्संगत्तणं च+परमेसरं पडि सड्ढा समण सक्किदी णिदिकरणं वच्छल्ल त्तणं णायगभावत्तणं अप्प-उट्ठाण=सोवाणं धम्मकत्तव्वं सामाइगो वंदणा थुदी परिक्कमणं पच्चक्खाणं काउस्सग्गो आगमें णो संका णाणब्भासो अप्पोवदेसो दहदारं।

अप्पसहावो- अप्प-सहावो णिय-सहावो त्थि। जस्सिं विज्जदे खमा। जत्थ खमा वीरस्स भूसणं। रावणेत्थि माणं अहिमाणं च रिउजत्तणादो पत्तेदि जणो सरलभावं। सरलत्तणेणं च जादि संप्पहुत्तणं च जादि संप्पहुत्तणं।

निजात्म-तरंगिणी की दृष्टि

निजात्म तरंगिणी-एक अध्यायत्मप्रधान गद्य विवेचन है। इसमें विविध तरंगिणी हैं। इसमें सम्यक्त्व के आठ आयाम, निःशंकता, परमेश्वर के प्रीत श्रद्धा, श्रमण संस्कृति, स्थितिकरण, वात्सल्यता, ज्ञायक-भावता, आत्मोत्थान के सोपान, धम-कर्त्तव्य, समायिक, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग। आगम के प्रति शंकादि न होना, ज्ञानाभ्यास और आत्मोपदेश के दश द्वार।

आत्म-स्वभाव- निज स्वभाव है जिसमें विद्यमान हैं क्षमा। क्षमा जहाँ है वहाँ वीरता है। रावण में मान-अभिमान था। ऋजुता से मनुष्य सरलभाव के पाता है। सरलता से संप्रभुता आती है। निर्लोभता से आत्मीयता आती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिल्लोहत्तणादो अप्पणिज्ज त्तणं। जदि जीवने सच्चं पावणं होदि जणो। जहेट्ठो त्थि लोए सच्चेण सह संजमो त्थि सो संजमो वि सव्वत्थ सुंदेरो। तवादो तत्त-माण्वो सुज्ज-सम दिप्पेज्जदे। चाग-धम्मो महा-। अदो रम्मेज्ज अप्प-रमाए। एस संदेसो णियप्प-तरंगिणीए।

वेरग्ग-सिहरं- वेरग्ग सिहदं उच्चठाणं च वेरग्ग-जणणी अणिच्च-असरण-संसार-एगत्त- पहुदी त्थि। दुवालस-अणुप्पेहणं जस्सिं अगच्छेंति ते वेरग्ग-सण्णिगडे तेहिं परमत्थ-तित्थ-दंसणं जाएंति। कम्मासवाणं खयो वि।

सुद्धोवजोग-फलो- अप्पे अप्पज्झ विसुद्ध-परिणामादो तदा जादि तत्तो हवदि अप्पदिट्ठणा अ प्पा णो दुरप्पो। अप्प-सिद्धी वि संवर-णिज्जरणं विणा णत्थि।

है। यदि जीवन में सत्य है तो उससे मनुष्य पावन होता है। सत्य यही है कि लोक में सत्य के साथ संयम है तो वह संयम सर्वत्र सुन्दर होता है। तप से तप्त मानव सूर्य सम दीप्त होता है।

त्याग धर्म तो महान् है। अतः आत्म रमा में रमण करें। यह संदेश है निजात्म तरंगिणी में।

वैराग्य-शिखर- वैराग्य है उच्चशिखर-उच्चस्थान भी। अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व आदि जहाँ है वहाँ वैराग्य जननी है। जिसमें भी बारह अनुप्रेक्षाओं का अनुप्रेक्षण होता है वे वैराग्य के सन्निकट पहुँच जाते हैं। उनसे परमार्थ तीर्थ के दर्शन होते हैं और कार्माश्रवों का क्षय भी हो जाता है।

शुद्धोपयोग फल-

आत्मा में जब अध्यात्म की विशुद्धता होती तब होता विशुद्ध परिणाम, उससे होता है।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विसुद्धप्प- सहावेणं च जहेट्ठ-मग्गो जायदे। अस्सिं च अत्थि अप्पदिट्ठी णियप्प- दिट्ठी परमप्पदिट्ठी परमप्पगास- दिट्ठी सव्वण्हुदिहि त्थि।

जिणधम्मो हु सुधम्मो

मण्णेंति जणा सव्वे जेणं जएज्ज इंदिय-मणं सो जिणो। तस्स धम्मो जिणधम्मो/ वत्थु-विवेयणं जत्थ हवदि तत्थ सुधम्मो उत्तमधम्मो परमप्प-धम्मो जियप्प-धम्मो वि। बेहि-समाहि-सम्मादिट्ठी तत्थेव अप्प-सोहणं चित्ते ठाणं च पवित्तठाणं सुसधम्मेणं च।

अप्पासुहं परमं सुहं

सुहं च परम सुहं तत्थेव हवदि जत्थ णत्थि किंचि वि णो जाएज्ज पमादो जत्थ। अप्प-सोहणमेत्तमेव। दोसाणं उवसमणं वए मोणं संजमो बंभचेरो समिदा सग-पर-पगासगदिट्ठी साहुत्तणं च।

आत्म दृष्टि से आत्मा भी दुरात्मा नहीं होता है। संवर-निर्जरा के बिना आत्म सिद्धि नहीं। विशुद्ध स्वभाव से यथेष्ठ मार्ग उत्पन्न होता है। इसमें आत्म दृष्टि निजात्म दृष्टि, परमात्म दृष्टि, परमप्रकाश दृष्टि एवं सर्वज्ञ दृष्टि है।

जिनधर्म ही सद्धर्म

सभी मानते- जिसने इन्द्रिय एवं मन को जीत लिया वह जिन है, , उनका धर्म-जिनधर्म है। वस्तु विवेचन जहाँ होता है वहाँ सुधर्म, उत्तमधर्म, परमात्मधर्म, निजात्म-धर्म भी है। बोधि-समाधि की सम्यक् दृष्टि वहीं पर है। आत्म-शोधन और चित्त में स्थान पवित्र स्थान सुधर्म से है।

आत्मसुख परम सुख

सुख भी परम सुख वहीं होता जहाँ नहीं है कुछ भी भीरुता। जहाँ मात्र आत्म शोधन हो। जहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गज्ज-परंपरा

गज्जस्स संबंधो त्थि मत्थगेण अम्हाण। अस्सिं च विज्जदे समअणु भूदि णा सह णियप्प-भावाणं अहिविजणा वि। कप्पणा मह-बुद्धि-तच्च-गारवत्तणं छंद-बंध-पहीणत्तणं इदिवुत्ताभावो भासा-सद्दत्थ-रस-परिपागो वि बहुत्तणं।

सक्किद-गज्ज-सहिच्चो

वेद-संहिदा-बंहण-गंथ- आरण्णग-उवणिसदेसुं च जाणि सुत्ताणि मंताणि णिरुत्ताणि सिक्खप्पहाण-सार-गब्भिद-भावाणुभावा-गज्जाणि गज्जेसुं अलोगिग-सत्ति त्थि।

तच्चत्थ-सुत्त-सव्वत्थ-सिद्धि-रायवट्टिग-धवला टीगा- महा धवलाटीगा-सव्वे तक्क पहाण-दंसणिग-गंथा परिक्खासुह णियायदीविगा-

प्रमाद नहीं हो। जहाँ दोषों का उपशमन, वचन में मेल, संयम, ब्रह्मचर्य, समता, स्व-पर प्रकाश-दृष्टि एवं साधुता हो।

गद्य-परंपरा

गद्य का सम्बंध हमारे मस्तसकस से है। इसमें है स्वानुभूति के साथ निजात्म भावों की अभिव्यंजना। इसमें कल्पना, बुद्धि-तत्त्व की महनीयता, गौरवता, छन्द बन्ध प्रहीनता, इतिष्ट स्वभाव भी। भाषा, शब्दार्थ एवं रस परिपाक की बहुलता।

वेद, संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, अरण्यक एवं उपनिषद में जो सूत्र, मंत्र, निरुक्त आदि शिक्षा प्रधान, सार गर्भित, भावानुभाव आदि गद्य हैं। उन गद्यों में अलौकिक शक्ति है।

तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, धवला टीका, महाधवला टीका, सभी तर्क प्रधान दार्शनिक ग्रन्थ-परीक्षा मुख,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ममापमेय-कलिगा पमेयरदणमाला-पमेय-कमल-मत्तंड- पमाणमीसंसा-सियादवाद- मंजरी- अट्ठसहस्सी- अट्ठसदी कुंदकुंद-वट्टकेर- सिवारिय -पहुदी आइरिय- संरचिद- पाइय-कव्वेसुं सक्किद-टीगा-वुत्ति-भस्स-पहुदी सव्वे अद्धमागहीए - अंग - उबंगादि-गंथेसुं च सक्किद-टीगा वि महणिज्जा अत्थि। आइरिय गणाइरियस्स सर्वोदयी टीगा मूलाचारे गणिणी णाणमदीए सक्किद-टीगा गज्ज-समलंकिदा।

महाभारदे वि गज्जं। णिरुत्त-पातंजल भस्स- मीसंसग-सुत्त- सक्किद-णा डगे वि। सुसबसंधु- वाण-दंडी-वासवदत्त- हरिस चरिद-तरंगवती पहुदी-गज्ज-समलंकिदा भडारग-हरिसचंदो त्थि जसस्सी-

न्यायदीपिका, प्रमाप्रेमय-कलिका प्रमेयरत्नमाला , प्रमेय-कमलमार्तण्ड, प्रमाणमीमांसा, स्यद्वाद मंजरी अष्ठ शती, कुंदकुंद, वट्टकेर, शिवार्य, आदि रचित प्राकृत काव्यों पर संस्कृत टीका, वृत्ति, भाष्य अदि, एवं सभी अर्धमगधी, के अंग-उपांग आदि ग्रन्थों पर संस्कृत टीकाएँ महनीय हैं। गणाचार्य की सर्वोदयी टीका मूलाचार पर गणिनी आर्यिका ज्ञानमती की संस्कृत टीका संस्कृत गद्य युक्त हैं।

महाभारत में गद्य का प्रयोग है। पातञ्जल भाष्य, मीमांसक सूत्र एवं संस्कृत नाटकों में भी गद्य है। सुबन्धु, वाण, वासवदत्त, हर्षरित, तरंगवती अदि के गद्य समलंकृत हैं। भट्टारक हरिश्चंद यशस्वी गद्यकार हैं। धनपाल की तिलकमंरी का भी महान् स्थान है। गद्यचिंतामणि, यशस्तिलचंपू, कथाओं के विविध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गज्जयारो। धणवालस्स तिलगमंजरीए महठाणं गज्ज चिंतामणि, जसतिलगचंपू कहाणं विविह-कहाकोसा वि गज्जे अत्थि।

पाइए भासाए गजजाणि

सव्वे आगमेसु सिद्धंत-सुत्तेसुं कहसाहिच्चेसुं चंपू-कव्वेसुं गज्ज - बाहुलत्तणं अत्थि। मज्झ-कालपुव्वे वि पच्छा गज्ज- सहिच्चं रचिदं। दिल्ली - महुरा - आगदा-अलीगढ़-अउज्झ-जयपुर-पहुदी-खेत्ते गज्ज-साहिच्च-विणिम्मिदं। गज्जाणुवादो सव्व-भासासुं च अत्थि।

अज्ज-पज्जुप्पण्ण-समक्ष गज्जं

मज्झ-कालं पच्छा सक्किद-पागिदेसुं च विरचिदं सहिच्चं पज्जेसुं च अज्ज वि गज्ज-विवेयणं होज्जहिदि तस्सिं हिंदी

कथाकोश गद्य में हैं।

प्राकृत-भाषा में गद्य

सभी आगमों, सिद्धान्त सूत्रों, कथा, चंपू अदि में गद्य की बहुलता है। मध्यकाल के पूर्व पश्चात् भी गद्य साहित्य लिखा गया। दिल्ली, मथुरा, आगरा, अलीगढ़, अयोध्या, जयपुर आदि क्षेत्र के गद्य- साहित्य लिखा गया, गद्यानुवाद सभी भाषाओं में है।

वर्तमान समय में गद्य-

मध्यकाल के पश्चात् संस्कृत एवं प्राकृत में रचित साहित्य के पद्यों पर जो गद्य विवेन हो रहा, उसमें हिन्दी की बहुलता वाला गद्य है। किन्तु वीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में डॉ. नेमिचंद के अतिरिक्त तुलसी, आ. अजितसगर विरगसागर, विद्यासागर अदि अचार्यों एवं मुनि प्रणम्यसागर गुणरत्न सूरि आदि के द्वारा संस्कृत में बहुत लिखा गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुलत्तणं गज्जं। किण्णु विंसवी-सदीए उत्तरद्धे णेमिचंदे वदिरित्तो तुलसी-अदिसागर-विराग सगर-विज्जासागर- पहुदी आइरिएणं मुणि पणम्म-सागरे गुणरदण-सूरिणा पहुदिणा सक्किदे-बहु-रचिदं।

पागिदे डॉ उदयचंदेण चंपू-कहा बहुविह-विवेयणं किदं णिबंधणं आइरिय-विसुद्धसागरस्स सव्व-विवेयणं वक्खाणं णेदूणं च गज्जे गज्जणु रुवंतरणं किदं समण-आदिच्च सागरेणं च वित्थिण्ण-रूवे किदं।

समण-अरज्झसागरस्स पढमपयासो वि गज्ज-पागिदे त्थि। पुव्वे पाइयाइरियो सुणीलसायरो सुदसायरो पण्णसायरो पागिदे लिहंति विवेचेंति वक्खएंति वि। पाइय-सुउमाल-पुप्फमालाए गुंफिदा

प्राकृत में डॉ. उदयचंद द्वारा चंपू काव्य, कथा एवं अनेक निबंध लिखे जा रहे हैं।

आचार्य विशुद्धसागर का सभी विवेचन एवं व्याख्यान हिंदी गद्य में है, उसे लेकर श्रमण आदित्य सागर द्वारा भी अनेक ग्रन्थों का गद्य रूपान्तरण विस्तृत रूप में किया है।

श्रमण आराध्यसागर भी प्रथम प्रयास गद्य-प्राकृत युक्त है। पूर्व के प्राकृताार्य सुनीलसागर, आ.श्रुतसागर एवं प्रज्ञसागर भी प्राकृत में लिखते, विवेचन करते और व्याख्यान देते हैं।

प्राकृत की सुकुमाल पुष्पमाला में गुंफिद निजात्म तरंगिणी में तत्सम बहुलता, भाषा प्रवाह, भाषागति, उद्धरण बहुलता, संदर्भ गर्भिता भावाभिव्यंनता आदि है। यह शौरसेनी भाषा प्रिय श्रमण श्रमणाचार्य विशुद्धसागर के भाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इमाए णियप्प तरंगिणीए तदसम बाहुलत्तणं भासप्पवाहो भासागदी उद्धरण-बहुलत्तणं संदब्भ - गब्भिद। भावाभिविंजणगत्तणं पहुदी अत्थि। एस सोरसेणी पिय-समणो समणइरिय-विसुद्धसागरस्स भावं णेदूण पाइय-भासंतरं मेत्तं पाइए पवीणत्तणं हेदू अप्प-सहावे-रदणत्तय-सारं इच्छेदि तम्हा माण-सम्माण-अंकख-विमुहमेव पाइय-णियमाहिंतो विमुत्तो वि जं किंचि कधणे समत्थो जादो तस्सिं गदि-जुत्त-समणो सफल-संपेक्षण-सुसमाजुद - संयोजणाए पाइयस्स अत्थपयडीए अत्थ-संयोजणे अवसं पत्तेहिदि वि।

लेकर प्राकृत में प्रवीणता हेतु आत्म स्वभाव में रत्नत्रय के सार चाहता है इसीलिए मान-सम्मान की आकांक्षा से रहित प्राकृत नियमों से विमुक्त भी जो कुछ भी कथन करने में समर्थ हुआ उसमें गति युक्त श्रमण सफल सम्प्रेषण, सुषमा युक्त अर्थ संयोना के सथ प्राकृत की अर्थ प्रकृति और अर्थ संयोजन को अवश्य प्राप्त होंगे।

डॉ. उदयचन्द्र जैन
29 पार्श्वनाथ कॉलोनी, सवीना,
उदयपुर (राज.) 313002

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ क्रमांक
	सम्मत्तस्स अट्ठायामो	
	(सम्यक्तव के आठ आयाम)	
1.	णिस्संकत्तादु णिस्संगत्तं (निःशंकता से निःसंगता)	1
2.	कस्स कामणा पुण्णेज्जा (किसकी पूर्ण हुई कामना)	13
3.	पंथसंपदायम्हि परमेसरस्स अवमाणं मा मुण (पंथ संप्रदाय में पड़ परमेश्वर का अनादर मत कर देना)	15
4.	परेसिं कत्ता मण्णेणं मूढत्तं (पर का कर्त्ता मानना बड़ी मूढ़ता)	18
5.	धम्मप्प-हासो समण-सक्किदि-कलंको (धर्मात्मा की हँसी-श्रमण संस्कृसित पर कलंक)	23
6.	कुण-णिय-ठिदिकरणं (कर निज स्थितिकरण)	27
7.	वच्छलत्तभावे समगिदभावो (वात्सल्य भाव में समकित भाव)	30
8.	णायगभावलिणत्तं णिच्छय-पहापणा (ज्ञायक भाव में लीनता निश्चय प्रभावना)	34
	अप्पोट्ठाणस्स छं सोवाणं	
	(आत्मोत्थान के षट सोपान)	
9.	कत्तव्वमेव धम्मो (कर्त्तव्यमेव धर्मः)	36

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

10.	सग-संगणं-सामइगो (स्वयं से मिलो (सामायिक))	40
11.	वंदेज्ज कंदणं हरेज्ज (करो वंदना हरो क्रन्दना)	43
12.	सुगो णो थुदो होज्जा (तोता नहीं स्तोता बनो)	46
13.	णिय-दप्पणं सच्छकरणत्थं कला-पडिक्कमणं (निज दर्पण को स्वच्छ करने की कला-प्रतिक्रमाण)	51
14.	अप्पोक्कस्स-आयामो पच्चक्खाणं (आत्मोत्कर्ष का आयाम: प्रत्याख्यान)	62
15.	कउस्सग्गो त्थि उवाहिचागो (कायोत्सर्ग यानि उपाधि की तिलांजालि)	65
16.	सज्झाओ जीवणस्स चरम-णिही (स्वाध्याय जीवन की परमोत्कृष्ट निधि)	68
17.	आगमो त्थि आगमं (आगम को आगम ही रहने दो)	73
18.	णो संका जिण्णासा (शंका नहीं जिज्ञासा)	77
19.	वायणेणं सद्धिं पायणं (वाचन के साथ पाचन अनिवार्य)	82
20.	अम्मणयं सददं णाणब्भासो (आम्नाय यानि सतत् ज्ञानाभ्यास)	89
21.	धम्मोवएसो जम्हि अप्पोवएसो (धर्मोपदेश वही है, जिसमें निहित है आत्मोपदेश)	92

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्पाणवेसणस्स दहदारं
(आत्मान्वेषण के दस द्वार)

22. खमा वीरस्स भूसणं 98
(वीरों की संपदा क्षमा)

23. रावणो त्थि माणं 103
(रावण का रूप मान)

24. रिउत्तं पहुत्त-जणणी 109
(ऋजुता ही प्रभुता की जनक)

25. णिल्लोहो त्थि विसुद्धप्प-सोवाणं 114
(आत्मिक पवित्रता का सोपान "निर्लोभता")

26. सच्चं खलु पावणं 119
(सत्यता ही पवित्रता)

27. संजमो त्थि सव्वत्थ सुंदेरो 124
(आत्मा का अनुपम सौंदर्य संयम)

28. तवत्तो दिप्पेज्जा 131
(चमकना है तो, तपो)

29. धम्मो चाग-महा 138
(त्याग धर्म महान)

30. सुमिणं एग-भावो 145
(संसार एक स्वप्न)

31. अप्प रमाए रमेज्जा 149
(आत्म रमणी में रमो)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेरग्ग-जणणी बारसाणुवेक्खा
(वैराग्य की जननी द्वादशानुप्रेक्षाएँ)

32. अद्धुवे धुवलाहो कस्स? 155
(अध्रुव में ध्रुव की प्रप्ति कैसे)

33. असरणे सरण गवेसणं अण्णाणी कज्जो 159
(अशरण में शरण खोजना अज्ञानी की क्रियाएँ)

34. तुज्झ झेओ लक्खो 162
(तेरा ध्येय मंजिल)

35. दुहजणगा संबंधा 167
(संबंध ही दु:ख के जनक)

36. परमत्थादु तित्थो णियप्पो 170
(परमार्थ से निजात्म ही तीर्थ है)

37. कम्मासवदारो त्थि असाहुत्तं 176
(खोखली साधुता कर्माश्रव का द्वार)

38. सुज्झोवओगस्स फलं मोक्खो 182
(शुद्धोपयोग का फल मोक्ष)

39. देहे आददिट्ठी हु दुरप्पणो 184
(शरीर में आत्म दृष्टि ही दुरात्मा)

40. संवरेणं विणा अप्पसिद्धी-असंभवा 189
(बिना संवर के आत्मसिद्धि संभव नहीं)

41. विसुद्ध-विसेसणं विसुद्धेज्जा 194
(विशुद्ध विशेषण को विशुद्ध ही रखना)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

42.	जिणधम्मो हि सुधम्मो (जिनोपादिष्ट ही सद्धर्म)	200
43.	सो पुरिसो भीरू त्थि, जो बोहीए पमाई (वह पुरुष कायर है, जो बोधि में प्रमादी है)	205
44.	आद-सोहणोवाओ णियालोयणा (आत्मशोधन का उपाय : आत्मालोचना)	210
45.	दोसाणं उवसमणं पायच्छिदं (संपूर्ण दोषों के शमन का माध्यम प्रायश्चित)	214
46.	दुहिजणाणं चित्ते ठाणं (दुखित ह्रदयो को अपने ह्रदय से लगाओ)	217
47.	वयण-मोणेणं सह मण-मोणी (वाणी के मौन के साथ मन के मौनी बनो)	220
48.	णो कत्ता, दिट्ठा होहि (कर्ता नहीं दृष्टा बनो)	223
49.	बालत्तेण संजमो, संजमे णो बालत्तणं (बालपन में संयम धारण हो सकता है, परंतु संयम में बालपन नहीं)	226
50.	समदाए साहुत्त-परिक्खा (समता में साधुता की परीक्षा)	230
51.	सगपर-पसंसणिंदासु अच्छाहो णो महणिज्जो (स्व प्रशंसा पर निन्दा में, नहीं फूलना ही महानता है)	232

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

52. परिणामाणं परिणदिं संरक्खणं साहुत्तं 235
(परिणामों की परिणति को संभालकर रखना ही साधुता)

53. जसमरणं सुमरणं अजसजीवणत्तो 238
(यश का मरण श्रेष्ठ है, अपयश के जीने से)

54. अप्पसाहणस्स सोवाणं मोण 242
(आत्म साधनां का सोपानः मौन)

55. तारेज्ज भवादो, सो तित्थो 245
(जो भवावली से तिरा दे, वही सच्चा तीर्थ)

56. उवएसो, आदेसो णो 248
(उपदेश तो देना, आदेश नहीं)

57. सद्ध-पदीवं पज्जलेहि 251
(श्रद्धा दीप जलाओ)

58. णो कुण, असूयं 256
(इर्ष्या नहीं, पुण्य करो)

59. अप्पासुहं, परमं सुहं 261
(आत्म सुख ही सच्चा सुख है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिस्संकत्तादु णिस्संगत्तं

भो णाणि! अप्पसरूवो णिसंको, णिस्संगत्तेणं विणा ण णिप्परिग्गाही, णिप्परिग्गहत्तेण विणा णिस्संहपि ण होस्सदि। सम्माइट्ठी णिस्संगणिब्भयो वि होदि, कत्तो भयत्तो ण भयभीदो। आदस्स रिउमिताणि णत्थि भयो कस्स? कं? वीदराग-जिणिंददेववयणे पुण्णसद्धाजुत्तो होदि। जदि ण चित्ते जिणवयणं ताव ण आसंकेदि, जिण्णासं कुणदि। णाणीहिंतो पुच्छदि आइरियउवज्झायसाहु-भगवंत-चरणेसु उवविसित्तु अप्पणाण-तिण्हं दूरं कुणेदि। जावंण समाधाणं, तावं सो गुरुं जिणिंददेवं-जिणवयणं च दोसिदं णं भण्णेदि, णिय-मइछीणत्तं मण्णेदि। दे विससुद्धप्पणो! मुणेहि वीदराग-वाणी कया वि असच्चवक्खाणं ण

निशंकता से निःसंगता

भो ज्ञानी! आत्मा का स्वरूप निशंक निशंकित हुए बिना निःसंग नहीं हो सकेगा। निसंग हुए बिना निःसंघ भी नहीं हो सकेगा। सम्यग्दृष्टि जीव निशंकित होता है, एवं निर्भय होता है, किसी भी प्रकार के भय से भयभीत नहीं होता। आत्मा का कोई शत्रु-मित्र ही नहीं है, भय किसका? किसको? वीतराग जिनेन्द्र देव की वाणी पर पूर्ण श्रद्धा से युक्त होता है। यदि समझ में भी न आए जिन वचन तो वह उस पर शंका नहीं करता, जिज्ञासा रखता है। ज्ञानियों से पूछता है, आचार्य, उपाध्याय, साधु भगवन्तों के श्री चरणों में बैठकर अपनी ज्ञान पिपासा को दूर करता है। जब तक समाधान नहीं होता, तब तक वह गुरु, जिनेन्द्र देव, जिनवाणी को दोषी घोषित नहीं करता, स्वयं के क्षयोपशम की कमी को ही स्वीकार करता है। हे विशुद्धात्मन्! ध्यान रख, वीतराग वाणी कभी असद् व्याख्यान नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुव्वेदि अम्हाणं पण्णाए धिक्कारो, जो णाणम्हि वाया ण आगच्छेदि, तुमं झायहि! जिणिदवाणी अणेकंत वाया जम्हि पुण्ण-पयत्थाणं वण्णणं। किं सच्चं असच्चं वा, णिण्णयं लहूपण्णाणं अकज्जं। वत्तमाणे वि साहू! सम्मत्तसुरक्खणत्थं मुणेहि जो सत्थे उवलद्धं तम्हि सद्धा कुणसु। तेसुं पण्हं अणावस्सगं। सो साहगोसवगो णो, जो पुव्वारिय-पणीदआगमे पण्हं करित्ता संकिदूण असद्धंत्तो व अण्णापि संकाए पडावेदि। तत्तो जेटठो अण्णाणी जिणसासण-बहिरो को होदि। अम्हाण सद्धाणं आइरिय-समंतभदस्स भासाए- "जधा अत्थि तथा होदव्वा।" सुमग्गेमग्गीसु वा। वत्थु-सहावं जिणिंदेण भणिदं जं अण्णं ण, ण अण्णहा। खडगारोहउदगं- सुमेरु व्व थिर-परिणदी जादा णिसंको

करती, हमारी बुद्धि की बलहारी है, जो कि समझ में वाणी नहीं आ रही। तू ध्यान रख! जिनेन्द्र की वाणी अनेकान्त वाणी है- जिसमें अखिल पदार्थों का वर्णन है। क्या सत्य है क्या असत्य? इसका निर्णय करना तुझ अल्पज्ञ का कार्य नहीं है। वर्तमान में भी साधु! तुझे अपने सम्यक्त्व की रक्षा करना है तो ध्यान रख, जो शास्त्र हमारे पुण्य से उपलब्ध है, उनके ऊपर पूर्ण विश्वास कर। उसमें क्यों, किन्तु, परन्तु, लेकिन इत्यादि प्रश्नवाचक शब्द जोड़ने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। वह साधक व श्रावक नहीं है, जो पूर्वाचार्यों के उपलब्ध साहित्य पर प्रश्न खड़े करके शंकित होकर स्वयं श्रद्धा से रहित हो रहा है व अन्य को भी शंका में डाल रहा है। उससे बड़ा अज्ञानी जिनशासन से बाह्य अन्य कौन हो सकता है? हमारा श्रद्धान आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी की भाषा में "जैसा है, वैसा ही होना चाहिए" सद्मार्ग व मार्गी पर। पदार्थ यानि वस्तु का स्वभाव ऐसा ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिब्भ्यो। चेयण्ण! तुज्झ सहावो सत्त-भयमुत्तो। अण्णाणी असंजमी भयजुत्तो, चेयण्ण-णाणी अप्पधम्म-कवचाहिंतो रक्खिदो जस्स अरिहंतदेवसामी, जिणवयणा माउत्थि णिग्गंथ-दियंबरो गुरु, तं भयं किं? णको वि भयो इहलोग-परलोग-भयो पढमो भयो। अण्णाणी मूढ़ो जीवो संसारस्स पच्चुपण्णं सुहाइं पासित्ता भय भी दो होदि। कहं मे सुहाइं ण उवसमेज्जा को वि अवहरणं मा कुणेज्जा। तहा परलोगेवि विवरीदेव विचिंतेइ, व ण जाणेमि एरिसाइ-सुहाइं परभवम्हि लहेस्सं व ण लहेस्सं एवं उहयलोयत्तो अण्णाणी सभयो होदि। व णाणी णियणाण बलेण उहय भयत्तो रहिदो होदि। सो सम्मं विचिंतेइ। सव्वदव्वाओ भिण्णं टंकोक्किण्णं चिणमय-चैयणसरूवं णियलोगं। सो णिच्चं, सो णो

है जैसा जिनेन्द्र देव ने कहा है, अन्य नहीं है, अन्यथा नहीं है। तलवार चढ़े पानी की तरह अचल, सुमेरु की तरह अकम्प परिणति होती है। निःशंक होने से निर्भय होता है। हे चैतन्य! सप्त भय विमुक्त तेरा स्वभाव है। अज्ञानी असंयमी भयभीत रहता है, चैतन्य ज्ञानी तो आत्म धर्म के कवच से रक्षित रहता है। अरहंत देव जिसके स्वामी है, माँ जिनवाणी जिनकी मातारी है, निग्रन्थ दिगम्बर गुरु हैं, उसे किस प्रकार का भय? कोई भय नहीं है। प्रथम भय इहलोक, द्वितीय भय परलोक है। अज्ञानी मूढ़ प्राणी संसार के वर्तमान सुखों को देखकर दुःखी होता है। कहीं मेरे सुख समाप्त न हो जायें, कोई छीन न ले, तथा परलोक के बारे में भी विपरीत चिन्तवन करता है, क्या मालूम ऐसे सुख आगे पर भव में प्राप्त होंगे, या नहीं? इस प्रकार उभयलोक से अज्ञानी भयभीत रहता है। पर ज्ञानी जीव आत्मज्ञान के बल से दोनों भयों से रहित होता है। वह सम्यक् चिन्तवन् करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णस्सिओ ण णासेहिदि। इदं अप्पलोगेव मज्झ लोकं णियलोयम्हि भयो ण कोवि, अप्पलोकं मुच्चित्ता सेसासव्वे परलोगं। परलोयत्तो मज्झ णिय संबसंधेव ण, तदो भयो किं? एवं णियणाण-सरूवसंसत्तो भव्वणाणी इहपरलोयभयत्तो रहिदो। अण्ण-जीवाणं पि एवमेव उवएसेदि। तुज्झ सरूवो णिब्भयो। विहाव-परिणदीए परे होहि। चेयण्ण! तीओ भयोवेयणा अत्थिअण्णाणी बहिरप्पो! गत्त-वेयणं अप्पसरूवं णाऊण भुंजदि। णाणी गत्तस्सेव जाणदि। जइवि देहमज्झे आदेव भुंजेदि सुहं-दुहं वा। अच्छदेहाओ जादं सुहदुहं वा परमत्थणयेण आदभिण्णेव। ववहारादु विहावेण आदा भुंजदि। भो णिरंजणसरूवि-अप्पा! पज्जायगदं सुहदुहंवा आद-सुरूवं ण जाणहि। परमत्थणयेण णिराउल समरसी भावेहिंतो णिय णाणा-

---

सम्पूर्ण द्रव्यों से भिन्न टंकोत्कीर्ण चिन्मय चैतन्य स्वरूप आत्मलोक है, वह शाश्वत है, वह कभी भी विनाश को प्राप्त न हुआ न होगा। यह आत्मलोक ही मेरा लोक है, निज लोक में कोई भय नहीं है। आत्मलोक को छोड़कर अब शेष सभी परलोक हैं। परलोक से मेरा कोई आत्म संबंध नहीं है, तो भय किसका? इस प्रकार निज ज्ञान स्वरूप में लीन भव्य ज्ञानी जीव इस लोक, परलोक भय से रहित होता है। अन्य जीवों को भी यही उपदेश देता है। निर्भय स्वरूप तेरा है। विभाव परिणति से दूर हटो। हे चैतन्य! तृतीय भय वेदना का है। अज्ञानी बहिरात्मा शरीर की वेदना आत्म-स्वरूप मानकर वेदता है। ज्ञानी शरीर गत ही मानता है। यद्यपि शरीर के माध्यम से आत्मा ही वेदन कर रही है, कष्टों का व सुखों का। पर इन्द्रिय देह जन्य सुख-दुःख परमार्थ दृष्टि से आत्मा से भिन्न है। लेकिन व्यवहार दृष्टि से विभाव रूप से आत्मा ही वेदन करती है। भो निरञ्जन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णंदं तुमं अणुभवेसि णो वियारिभावाणं। परम-विसुद्ध-णिच्चयदो वेज्ज-वेदगभावादो रहिदो तुं चिणमय-चेयण्ण-जोई त्थि, तुं कहं बहिर सुहदुहाइं वा जाणसि? जाव तुं परदव्वाणं अणुहवेज्ज, तं किं वेयणाए भयो? भो तच्चग्गो! अवेज्ज परमहंससरूवो तुं तहेव अणुभवेहि। पढमं वत्थाए पंच-परम-गुरुणो पूयाअच्चणा वा पंचमरमेष्ठी सरूवं कहं लहेमु एरिसो भावेहि। तदणुसारं उज्जमेहि अवेज्जभावं लहेसु। भो जोगिंदु! चउत्थो भयो अरक्खा। अण्णाणी सया विचिंतेइ। इणं कोवि ण रक्खेगो! को मज्झधणं मा हरउ, मज्झ जीवणं ण विणासेउ, मज्झ आवासं ण हरउ, एवं णिय-वहिं रक्खणं वियारंतेइ। भो णाणी! कम्मसत्तूहिं तुज्झणिम्मल-विसुज्झ-णाणदंसणरूवो-धणं हरिज्जंतो, तम्हि दिटिठं ण पडावेसु? कम्मत्तो

स्वरूप आत्मा! पर्यायगत सुख-दुःख को आत्मा स्वरूप मत मान बैठना। परमार्थ दृष्टि से निराकुल, परम समरसी भाव से निज सहज शुद्ध ज्ञानानन्द का तू वेदक है, विकारी भावों का नहीं। परम शुद्ध निश्चय नय से वेद्य वेदक भाव से रहित तू चिन्मय चैतन्य ज्योति है, फिर तू कैसे बाधक बाह्य सुख-दुःख का वेदक है? जब तू पर द्रव्यों का वेदक नहीं तो फिर वेदना का भय भी तेरे कैसे है? भो तत्वज्ञ! तू अवेद्य स्वरूप परमहंस स्वरूप है उसी स्वरूप का अनुभव कर। प्रारंभिक अवस्था में पंच परम गुरुओं की भक्ति पूजन का वेदन कर एवं पंच परमेष्ठी के स्वरूप को प्राप्त कैसे करुँ ऐसी भावना कर। तदनुरूप पुरुषार्थ कर अवेद्य भाव को प्राप्त कर। हे योगेन्द्र! चतुर्थ भय संसारी जीव को अरक्षा का है। अज्ञानी जीव अहोरात्र एक ही धुन में लीन रहता है यहाँ कोई भी रक्षक नहीं है, कोई मेरे धन का हरण न कर ले, मेरे प्राणों का नाश न करदे व मेरे भवन को छीन न ले, इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्पं सुरक्खेहि। परमत्थेण वत्थु सदसरूवं अत्थि सद्सच्चंवा किं पि णो विणासेदि व असदं पि ण उप्पज्जेदि। एरिसा भगवद-अरहदस्स वाया एवं वीदराई दिअं-बराइरियेहिं भणिणदा। वत्थुं चिदचिद-रूवं धम्मजुदं। पज्जाए विणासं दव्वस्स विणासं ण जाण। पज्जाए उप्पादम्हि जादि पज्जाई-तिआलिया धुव्वसासदो होदि। उप्पाद-व्वय-धोव्व तुत्तोत्थि सो सादो। सद च्चिय दव्वलक्खाणं। पज्जाय परिणमणं दव्वविणासं ण होदि। घडो भंजिदो, घडपज्जायं विणासं कवालपज्जायस्स उप्पादो व मिट्टिया दव्वं तहेव जा घम्हि आसि। एवं जाणेहि जह मिदुत्तं ण विणसिआ तह पइ दव्वस्स दव्वत्तं कयावि ण विणासेज्जदि। भो सदचियाणंदस्वरूवं भगवमादा! एवं घडो मिट्टआ सारिच्छं मणुस्साइ-पज्जाए जाण। चेयणा जीवो।

प्रकार अपनी बाह्य रक्षा के बारे में सोचता है। भो ज्ञानी! कर्म-शत्रुओं के द्वारा तेरे निर्मल शुद्ध ज्ञान दर्शन रूप धन का हरण किया जा रहा है, उस पर दृष्टि क्यों नहीं डालता? कर्मों से अपनी रक्षा कर। लेकिन परमार्थ से विवेकी जीव चिन्तवन करता है, पदार्थ सत्-स्वरूप है। सत्य व सत् का कभी विनाश नहीं एवं असद् का उत्पाद भी नहीं होता है। ऐसी भगवद् अर्हद् देव की वाणी है, ऐसा हमारे वितरागी दिगम्बराचार्यों ने कहा है। पदार्थ चाहे चित्त-रूप हो, चाहे अचित् दोनों अपने-अपने धर्मों से युक्त हैं। पर्याय के परिणमन को द्रव्य नाश नहीं समझना। पर्याय उत्पद् ध्वंसि होती है, पर पर्यायी त्रिकाली ध्रुव शाश्वत होता है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त है वह सत् है। सत् ही द्रव्य का लक्षण है। पर्याय का परिणमन द्रव्य का विनाश नहीं है। घट फूटा, घट पर्याय का विनाश कपाल पर्याय का उत्पाद पर मिट्टी द्रव्य वही है जो घट में थी। इस प्रकार समझना जैसे मृदुत्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मणुस्साइ पज्जाया परिवट्टंति, चेयणत्तं ण विणासेदि कयावि। सदसरूवं जं णाणदंसणं अप्प-धम्मो, सो णिच्चो। जाव धम्मो णिच्चो ताव धम्मिआदो वि णिच्चो। जओ धम्मिगेणं विणा धम्मं व धम्मेणं विणा धम्मिस्स वासं ण होदि। जस्स उण्हेण रहिदग्गी, अग्गीए रहिदं उण्हत्तं ण एवं अप्पं जाणहि। णाणदंसणेणं विणा अप्पा, अप्पेण रहिदो ण णाणदंसणं, इमस्स परोप्परे अविणाहावि णादो। पुण विचारेहि, पुप्फं गंधावेइ णं भमरा हिण्डेस्संति च्चिय व अणुगुजे हिंति। जसो कित्ती होहिदि तु जसं सयमेव होहिज्जदि। जाव खलु दव्वणिच्चं, तं पुण णासं कहं? कस्स? जाव विणासं ण तंअरक्खा वि णो। जो रक्खाए अणवेक्खो पुण अप्परक्खाभयो कस्स होदि, अओ णाणी, भेय विण्णाणी अरक्खाभयत्तो रहिदो।

(मृतिका) का विनाश नहीं हुआ उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य के द्रव्यत्व का कभी भी विनाश नहीं हुआ उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य के द्रव्यत्व का कभी भी विनाश नहीं होता है। भो सद् चिदानन्द स्वरूप भगवद् आत्मा! इसी प्रकार घट मृतिका के समान मनुष्यादि पर्याय घटाकर समझो। चेतन जीव द्रव्य है। मनुष्यादि पर्याय बदलती रहती है, लेकिन चेतनत्व का कभी भी विनाश नहीं होता। सद् स्वरूप जो ज्ञान दर्शन आत्मा का धर्म है, वह अविनाशी है। जब धर्म अविनाशी है तो धर्मी आत्मा भी अविनाशी है, क्योंकि बिना धर्मी के धर्म व बिना धर्म के धर्मी का वास नहीं होता। जैसे उष्णता से रहित अग्नि, अग्नि से रहित उष्णता एक समय भी नहीं रहती, इसी प्रकार आत्मा को समझ। ज्ञान दर्शन रहित आत्मा, आत्मा से रहित ज्ञान दर्शन नहीं रह सकते, इनका परस्पर अविनाभाव संबंध है। तो फिर विचार कर, पुष्प सुगंधित होगा तो भ्रमर मंडरायेंगे एवं गुंजन करेंगे ही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिय आदगुणेहिं णिय सुरक्खेदि। सुरक्खासुरक्खेहिं रहिदो होदि णियस्स-लुद्धो हो। दव्वपाणविओगं विओगं ण जाणित्ता चेयणप्पाणेसु वसहि।

भो विसुज्झप्पणो! संसारम्हि कत्तो वि सुरक्खट्ठाणं कुणसु दुग्गं, गहं, धरणी। जाव कम्मविवागं होदि ताव दुग्गां, गुणयरो व गुणट्ठाणं को वि कज्जं ण कुणंते। जमराओ गुढठाणे वि गवेसेदि। तम्हि कोवि सत्ती बाहगा ण होदि। णिय-गुत्तीए लहेसु ववहारेणं मणवयण-कायेहिं सम्मं वट्टहि। चित्तेण चिंतहि, वायणेण उच्चारणं कायेणं चेट्ठाओ वि असुहं मा कुणहि। तिणं दण्डाणं पालेहि मणवयणकायदण्डाइं च। जस्स संजमस्स अवमाणो ताणं दव्वाणं उवसमेहि गोवणेहि। बहीसुरक्खेणं

यश: कीर्ति होगी तो यश स्वयं होगा ही। जब द्रव्य अविनाशी ही है, तो फिर विनाश कैसा? किसका? जब विनाश नहीं है तो रक्षा भी नहीं है। जिसकी रक्षा करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है, तो फिर अरक्षा भय कैसे हो सकता है? अत: ज्ञानी, भेद विज्ञानी जीव अरक्षा भय से रहित होता है। अपने आत्म गुणों से स्व की रक्षा करता है। पर, रक्षा अरक्षा दोनों से रहित होता है। आत्म रस का रसिक बन। द्रव्य प्राणों के वियोग को वियोग न मानकर चैतन्य प्राणों में निवास कर।

हे विशुद्धात्मन्! संसार में व्यक्ति कितने रक्षा स्थान तैयार कर ले दुर्ग, भूमि, ग्रह लेकिन जब कर्म का विपाक आता है, तब न दुर्ग काम आते हैं, न गुप्तचर न गुप्त स्थान। यमराज तो गुप्त स्थान से भी खोज लेता है। उसके लिए कोई भी शक्ति बाधक नहीं बन पाती। निज गुप्तियों को प्राप्त कर, व्यवहार से मन वचन काय तीनों की सम्यक् प्रवृत्ति कर! मन में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहसुरक्खा हु होदि व चेयणसुंरक्खा आगमोत्त-गुत्तीणं पालणेव होदि णिच्चयेण वत्थु धम्मो, णिय सहावेव गुत्ती। सहावे अण्णाणं ण पवेसं, सगुण-सगुणेव बसंते। दुवं दव्वाइं परोप्परं मिल्लेउ वि-ससहावे कयावि अण्णं पवेसणं ण कादव्वं दव्वरूवेण ण परिणमदि, आददव्वस्स णाणदंसण-गुणेसु अण्णाण गुणाणं पवेसणं ण होदि। णाणदंसणत्तं च पुण्णअवद्धो। भो णाणी! तुज्झसरूवे कोविण अगुत्तत्तं, ताव तुज्झ गुत्तीभयं कहं? जहत्थ वीदराग गुत्तीहिं गुत्तो जोइस्स ण गुत्तीभयं।

भो साहू! तुमं मुण झाएहि, जीवणस्स पइखणं मिच्चु दुवारोण्मुहं अत्थि। आउ-कम्मं णिय कज्जं कुणदि। जमे ण करुणा। अओ णिय साहणम्हि लिणंहोहि। जो जीवो जत्तो आउकम्मं

अशुभ मनन मत करो, वचन से अशुभ उच्चारण नहीं करो और शरीर से अशुभ चेष्टाऐं भी नहीं करो। तीन दण्डों का पालन कर मन वचन काय का। जिससे संयम की अवहेलना होती है, उस द्रव्य का विसर्जन कर दो गोपन कर। बाहर की रक्षा से तन की रक्षा हो सकती है पर चैतन्य की रक्षा तो आगम वर्णित गुप्तियों के पालन से ही संभव है। निश्चय दृष्टि से वस्तु का निज धर्म यानि स्वभाव ही गुप्ति है। स्वभाव में कभी अन्य का निवेश नहीं होता है, निज गुण, गुण ही रहते हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में मिश्रित भी हो जाए फिर भी अपने स्वभाव में किसी को प्रवेश नहीं करने देता यानि कि पर द्रव्य रूप परिणमन नहीं करता, आत्म द्रव्य के ज्ञान दर्शन गुण में अन्य गुणों का प्रवेश नहीं होता। ज्ञानत्व, दर्शनत्व पूर्ण स्वतंत्र है। भो ज्ञानी! तेरे स्वरूप में कोई अगुप्त पना नहीं है तो फिर तेरे लिए गुप्ति भय कहाँ से है? अर्थात् वीतराग-गुप्तियों से गुप्त योगी के गुप्ति भय नहीं होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बज्झेदि, तत्तो कालेव जीवणं, अंतो अण्ण-पज्जाए खु गमणं। ववहारेण णाव-पज्जायोप्पादं जम्मं। दव्वस्स ण जंमं मरणं वा। दव्वदिट्ठीए पज्जाए परिणमणेव जम्मं। अण्णाणी मूढ़ो इमाए विहीए विहाणं पंक्खित्ता हस्सविसादं व कुणंते। णाणी दुवे अवत्थाए थिर-हाउण वेदेदि देक्खदि, दूओ विमुक्कत्थं मग्गं गवेसेदि। इंदियाइं-दहपाणाणं विणासं ववहारेण मरणं कहियां व णिच्चयेण चेयण्ण-पाण-जीवस्स। इंदियाणं दव्वप्पाणं विणासं लहेहिइ णियमेणं पोग्गलिआ। दव्वप्पाणं वियोगं तुमं मरणं मा जाणहि, दुहं मा कुणेसु। असादावेयणीए बज्झं मा कुण, तुमं णियप्पाणाणं पेच्छहि। जो आदस्स सस्सदो णाणदसणं च चेयणप्पाणं, सो एव सदरूवं, तस्स कया वि ण मरणं, अखण्डो

हे साधु! तू ध्यान रख, जीवन के प्रत्येक क्षण मृत्यु के द्वार की ओर है। आयु कर्म अपना कार्य कर रहा है। यमराज (आयुकर्म) को कोई करुणा नहीं है। इसलिए स्वसाधना में लीन रहो। जिस जीव ने जितनी आयु का बन्ध किया है, उतना काल ही जीवन जीने का है अन्त में अगली पर्याय में जाना ही पड़ेगा। व्यवहार दृष्टि से नई पर्याय के उत्पाद को जन्म कहते हैं। द्रव्य का न तो जन्म होता है न मरण। द्रव्य दृष्टि से पर्याय के परिणमन का नाम जन्म हैं। अज्ञानी मूढ़ प्राणी इस विधि के विधान को देखकर हर्ष विषाद करता है। ज्ञानी दोनों अवस्थाओं को तटस्थ होकर वेदन करता है, देखता है, दोनों से मुक्त होने का मार्ग देखता है। इन्द्रियादिक दस द्रव्य प्राणों के विनाश को व्यवहार से मरण कहा है पर निश्चय से चैतन्य प्राण जीव का है। इन्द्रियादिक द्रव्य प्राण विनाश को प्राप्त होंगे ही, पौद्गलिक हैं। भो ज्ञानी! द्रव्य प्राणों के वियोग को तू मरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविणासी। तिकालिय-धोव्व-टंकोक्किण्ण-णायगसरूवी परमपारिणामिग- भावसंजुत्तो तुज्झ अप्पदव्वं। सदो किं कयावि विणासेदि? अरे णो! एवं असदं ण उप्पज्जदि। आद-दव्वस्स चिंतेहि, णिय धोव्ववत्थाए णिरक्ख, अद्धुव्व-पज्जायं किं देक्खसि? दव्वं पेक्खेज्जा कयावि दुहि ण होज्जा पज्जाअं, पेक्खेज्जा कायवि सुहं ण लहेज्जा। अओ तुमं झाएणि णाणी। आदणिच्चो अओ तुमं मरणत्तो वि णिब्भयो, तुं णिब्भयो णिसंका होऊण आदसुहं वेदेहि जोई।

हे विशेद्धअप्पणो! तुमं णिब्भया-सरूवो, आद-विणासो असंभवो, पुण तुज्झ-अंतसे अकंह-भयो कह? अकंह-भयो,भयावह-पदत्थाओ देक्खत्तो उप्पज्जदि, सहसा कोवि

मत मान, दुःखी मत हो। असाता वेदनीय कर्म का बन्ध मत कर, तू निज प्राणों पर दृष्टि डाल। जो आत्मा का शाश्वत ज्ञान दर्शन चेतना प्राण है, वही सदरूप है, उसका कभी भी मरण नहीं होता है, अखण्ड अविनाशी है। त्रिकाली, धौव्य, टंकोत्कीर्ण, ज्ञायक स्वरूपी, परम पारिणामिक भाव से युक्त आत्म द्रव्य तेरा है। सद् का भी क्या कभी विनाश होता है? अरे नहीं! और असद् का उत्पाद नहीं होता है। आत्म द्रव्य पर दृष्टि रख अपनी ध्रौव दशा को देख, अध्रुव्य पर्याय दशा को क्यों देखता है? द्रव्य को निहारता रहेगा तो कभी भी दुःखी नहीं हो सकेगा, पर्याय को देखता रहेगा तो कभी भी सुखी नहीं हो सकेगा। अतः तू ध्यान रख ज्ञानी! आत्मा का मरण नहीं है, इसलिए तुझे मरण का भी भय नहीं है। तू निर्भय निःशंक होकर आत्म सुख का वेदन कर योगी।

हे विशुद्धात्मन्! तू निर्भय स्वरूप है, आत्मा का कभी भी विनाश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुग्घडणा ण होउ- मज्झ अणिट्ठं मा होदु एरिसो अण्णाणी विचिंतेइ, परण्णु णाणी सरूवादे जाणेदि णाणं एक्कं, अणाइ-आणंदं णिच्छलं, णिखेक्खं, इमे बीअस्स ण उव्वादं /एरिसो ण कयावि, पुण अकंहभयो कओ? णाणी णिसंको होऊण अणवरदो-णिय सहाविगणाण-सहावं सया अणु-भवदि। हे साहू! णिच्चयेण एरिसो जाण। ववहारेण पंच परमेट्ठी-णं सरणं, अओ तस्स को भयं ण!

"जयदु णमोत्थु सासणं"

होने वाला नहीं है, तो फिर तेरे अन्दर अकस्मात् भय कैसा? अकस्मात् भय, भयानक पदार्थों को देखने से उत्पन्न होता है, एकाएक कोई घटना न घट जाए, मेरा अहित न हो जाए ऐसा अज्ञानी विचार करता है, पर ज्ञानी अपने ज्ञान स्वरूप से समझता है। ज्ञान एक है, अनादि है, अनन्त है, इसमें दूसरे का उदय नहीं। इसलिए ऐसा कुछ भी नहीं, इसमें दूसरे का उदय नहीं। इसलिए ऐसा कुछ भी नहीं, इसमें फिर अकस्मात् होने का भय कैसे हो सकता है? ज्ञानी निःशंक हुआ निरन्तर अपने स्वाभाविक ज्ञान स्वभाव का सदा अनुभव करता है। हे साधु! निश्चय से ऐसा समझ। व्यवहार नय से पंच परमेष्ठी की शरण है, इसलिए उसे कोई भय नहीं है?

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कस्स कामणा पुण्णेज्जा

भो णाणि! संतीए जीवणं, णिद्धणं होऊण सुजीवणं व असंतीए वेहवं मलव्वं। धणाणि वावारेणं थेएणं च भिक्खाए व संतीए वि लहेज्जइ संती पुव्ववट्टाए लाहो ण होदि। संति बाहिरेण सा अंतसे। जा वंछाए जीवेज्जा सा कयावि सुहं संति च णलहेज्जा। जं पि सुहदुहलाहो वा होदि ते कम्म विवागेण हेंति। सुक्किदोदयो होज्जा ताव तुज्झे सव्वो लहेज्जा। जइ तिव्वो असुहोदयो होज्जा व पुरुसत्थेण वि इच्छालाहो असंभवो होज्जा। किं कामणा, कस्सवि पुण्णेज्जा? पर-संपयं पासिऊण णाणी कया वि जिण सिद्धंतं ण चुक्केदि, परसंपयं पासिता पहाविदं णा होदि जइ जिणसासणे अणत्था होइ ताव वट्टा भिण्णा अत्थि। सम्माइट्ठी जीतो सुहवंछा

किसकी कामना पूर्ण हुई

भो ज्ञानी! शांति का जीवन गरीब बन कर जीना श्रेष्ठ है, लेकिन अशांति का वैभव मल-तुल्य है। धन तो व्यापार के माध्यम से अथवा चोरी से व भिक्षा मांगकर अथवा छीन कर प्राप्त किया जा सकता है, पर ध्यान एवं शांति को पूर्वोक्त बातों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। शान्ति बाहर नहीं मिलती वह तो अंदर है। जो आकांक्षाओं में जी रहा है वह कभी भी शांति सुख को प्राप्त नहीं कर सकता जो भी सुख दुःख प्राप्त होता है वह सब कर्मों के उदय से मिलता है। सुकृत का उदय होगा तो सब कुछ प्राप्त हो जाएगा। यदि तीव्र अशुभ कर्म का उदय है तो पुरुषार्थ करने पर भी अभीष्ट की सिद्धि संभव नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताव कुव्वदि परं असुहं-विसय-कसायजुत्तं वंछा कयावि ण करेदि, सो खु सरूवे वसेइ, पर भावाओ भिण्णो।

॥ जयदु णमोत्थु सासणं॥

क्या कामना किसी की भी पूर्ण हुई? दूसरे की विभूति देखकर ज्ञानी जीव कभी भी जिन सिद्धान्त को नहीं भूलता, पर-वैभव को देखकर प्रभावित नहीं होता। यदि जिन शासन में आस्था है तो अंलग बात है। सम्यक् दृष्टि जीव शुभाकांक्षा तो करता है, पर अशुभ विषय-कषाय, राग जन्य आकांक्षा कभी नहीं करता, वह मात्र स्वरूप चिन्तवन में लीन रहता है, परभावों से परे।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंथसंपदम्हि परमेसरस्स अवमाणां मा कुण

भो णाणि! पइ दव्वं स-सहावे वट्टेदि णवि कंविदव्वं सव्वहं इट्ठंणिटठं वा भोग्गंअभोग्गं वा। जस्स जीवस्स परणदी अत्थि तस्स सा एव रोएदि। करहस्स णिंबो इट्ठो सोच्चिय णरस्स अणिट्ठो होदि। जओ मलं पेक्खित्ता तुमं दुगुच्छेसि। किं सोचिय सुक्करस्स अणिट्ठो? अओ णाणि! वत्थुसरूवे दिट्ठिवादं किं ण कुणसि तुमं। पर-दव्वाओ किं दुग्गुच्छेसि। जडाओ दव्वाओ, दुगुच्छाए लाहो किं? किं पुरीसो, उच्चारो वा बुहा अत्थि? जं पडि तुमं दुगुच्छाभावं कुणसि। दुगुच्छा कुण तुमं दुगुच्छाभावाओ, विहाव परिणदीए जास हेउस्स तुम अज्जोपयं भवे-भवे भीमादो। अणंत

पंथ संप्रदाय में पड़कर परमेश्वर का अनादर मत कर देना

भो ज्ञानी! प्रत्येक द्रव्य स्व स्वभाव में परिणत है, न कोई वस्तु सर्वथा इष्ट है, न अनिष्ट है, न भोग्य है, न अभोग्य है। जिस जीव की जो परिणति है उसे वही रुचिकर लगती है। ऊँट के लिए नीम इष्ट है, वही मनुष्य के लिए कड़वी लगती है। जिस मल को देखकर तू ग्लानि करता है। क्या वही मल सुअर के लिए इष्ट नहीं है? अतः भो ज्ञानी! वस्तु स्वरूप पर दृष्टि क्यों नहीं रखता तू। पर द्रव्यों से ग्लानि क्यों करता है। जड़ पदार्थों में घृणा करने से क्या लाभ? क्या वे मल मूत्र समझदार हैं? जिनके प्रति तू ग्लानि करता है। ग्लानि कर तू ग्लान भाव से, विभाव परिणति से, जिसके कारण तू आज तक भव वन में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पज्जएसु दुहं गहंतेसि साहू जणाणं समलदेहा पासित्ता दुगुच्छा, अबुहजणाणं कज्जं अत्थि। ण णाणीणं। सब्भावमेंत्तीणं च भावाणं आवस्सगदा अत्थि। णिय संघो परसंघो णिय पर समाजो इत्थी एरिसो, बालो बुड्ढो, जुवाणो णारइ, तिरिय, दोवो माणुसो वा भेदेस णिय विराहणं मा कुण। दव्वदिट्ठीए पेक्ख सव्वे भगवं-अप्पा अत्थि, कोवि लहुगुरु वा ण णाणत्तं चेयणत्तं सव्वेसु जीवेसुं अत्थि। पंथ-संपदा एसु, कास पसिद्धस्स सत्तिवंतस्स परमेसरस्स अवमाणं मा कुण। किं कस्स णाणं आसि? अक्क पज्जाए चिट्ठेदि जीवो महावीरो होस्सदि। तम्हि समयम्हि सक्केदि कोवि मुढो तं विच्छं छेद्दो-भेद्दो होसि, किं सो तित्थयरं भगवं कट्टुं मा दिण्णो। एवं

भटक रहा है। अनंत पर्यायों में दुःख प्राप्त कर रहा है। सद पुरुषों के मलिन शरीर देखकर घृणा करना मूढ़ जीवो का कार्य है, ज्ञानियों के तो नहीं है। सद्भाव, मैत्री के भावों की आवश्यकता है। स्व संघ, पर संघ, स्व समाज, पर समाज, स्त्री-पुरुष नपुंसक, बाल-वृद्ध, युवा, नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव इन भेदों में पड़कर स्व की विराधना मत कर बैठना। द्रव्य दृष्टि से देख सभी चैतन्य स्वरूप भगवान् आत्मा हैं, न कोई लघु है, न गुरु, ज्ञायकत्व भाव चेतनत्व परिणाम सभी जीवों में विद्यमान है। पन्थ, सम्प्रदाय में पड़कर किसी प्रसिद्ध शक्तिमान परमेश्वर का अनादर मत कर देना। क्या किसी को मालूम था? आक् की पर्याय में बैठा जीव महावीर बनेगा? उस समय हो सकता है किसी मूढ़ ने आक् वृक्ष को काटा होगा, क्या उसने तीर्थंकर भगवान बनने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोवि कस्स जीवस्स पडि दुगुच्छेदि मुणेहि सो भगवं अप्पं पडि वज्जवादं कुणंतो। कस्स वि लहू मा जाणेहि। भो णाणी! णिव्विदुगुच्छाए अंगाए परिपालणं तहेव संभवो होज्जा, जाव तुम चेयणाचेप्पपणा सव्वाणिं दव्वाणिं पडि सम्मभावो रक्खेज्जा।

सम्माइट्ठी सु-सावगो-साधम्मी-सावगो-साविगा-समण-समणीणं समलदेहाणं पासित्ता कयावि दुगुंछा-भावं ण लहेदि। णाणं गत्ताणं मा पेक्खहि, तेसु देहेसु रयणत्तयजुत्ता अप्पा पासेदि, रयणयस्स वंदणं, कुण, तहेव होदि तुज्झ अप्पपसारो। अण्णहा तुज्झ भव-भमणं ण सुज्झेदि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

वाली आत्मा को कष्ट नहीं दिया? इसी प्रकार से जो व्यक्ति किसी भी जीव के प्रति घृणापात करता है वह भगवान आत्मा के ऊपर वज्रपात कर रहा है। मत समझो किसी को हीन। भो आत्मन्! निर्विचिकित्सा अंग का पालन तभी संभव है, जब तू चेतन अचेतन संपूर्ण द्रव्यों के प्रति सद्भाव बनाके रखेगा। सम्यग्दृष्टि सद् श्रावक एवं साधर्मी, श्रावक, श्रमण-श्रमणियों के मलिन शरीर को देखकर कभी भी ग्लानि भाव नहीं रखता। उनके शरीर को नहीं देखो, उस शरीर के अन्दर विराजमान रत्नत्रय से युक्त आत्मा को निहार, रत्नत्रय धर्म की वन्दना कर, तभी तेरा आत्म विकास होगा। अन्यथा भव भ्रमण समाप्त नहीं हो सकेगा।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परेसिं कत्ता मण्णेणं मूढ़त्तं

भो णाणि! णाण चक्खुणो पेक्खहि कधं तुमं अवोहिदाए ताव णो जीवेसि? अण्णाणदाए जीवणं पसुव्व-जीवणं। माया-जालेसु चरित्तस्स मायं ण विसारणीअं। अण्णं पहावणा, परत्तो पहावणं व परिग्गहेण व किदीए पहावणा अबुहस्स पउत्ती आसि। मुढत्तं मुक्खत्तं, अदेवकुदेवेसु व सदेवस्स बोही, कुसत्थे सुसत्थबोही, अगुरुम्हि सुगुरुबोही, अधम्मे धम्मबोही, अतच्चे तच्चबोही जस्स अत्थि, सो अबुहो। अण्णाणी मोही सरूवं णो जाणित्ता, उज्जल-णरपज्जायं अलोहीए पणासेदि। विदराग-मग्गादो विणा अण्णो कोवि अमोक्खमग्गो। सराइस्स उवासणा

पर का कर्त्ता मानना सबसे बड़ी मूढ़ता

भो ज्ञानी! ज्ञान चक्षु से देख, कहीं तू मूढ़ता में तो नहीं ज़ी रहा? अज्ञानता का जीवन पशुत्व का जीवन है। चमत्कारों में फँसकर चारित्र के चमत्कार को समाप्त नहीं करना चाहिए। पर को प्रभावित करना व पर से प्रभावित होना व आडम्बर से, कृति से प्रभावित करना ये विज्ञ की क्रिया नहीं है। मूढ़ता यानि मूर्खता, अदेव व कुदेव में देव व सुदेव बुद्धि, कुशास्त्र में शास्त्र बुद्धि, कुगुरु में सुगुरु दृष्टि, अधर्म में धर्म बुद्धि, अतत्त्व में तत्त्व बुद्धि जिसकी है, मूढ़ है। अज्ञानी मोही जीव सद्स्वरूप को नहीं समझता पवित्र मानव पर्याय को मूढ़ताओं में नष्ट कर देता है। वीतराग मार्ग को छोड़कर कोई भी मार्ग मोक्षमार्ग नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विदराइव्व कुणेदि, कुणावेदि, अणुमण्णदि, अंण्णं णिय सुहसदुहाणं कत्ता मण्णदा, मुढत्तं।

कत्ताभावादो रहिदो मुढत्तं मा होदि। मिच्छत्तं सरागोवासणाए मूल हेदु। कम्मपिडिदो बहु हवदि व अण्णादो सुहस्स कंखा संरक्खेदि। लोही, वंचगो, सत्थी वा बहुआहोंते। कलिकालादो दुहिं पेक्खित्ता जस्स मच्छीमारो मच्छिं पेसणस्स लोहं दिक्खावेउं कंटगे जक्कडित्ता तस्स पाणं हणेदि व उदरं भरेदि। जहेव पाहंडी मिच्छत्तेण कंटगेण बज्झिउं, सम्मपाणं हणित्ता, दुहीआए धणं हणिउं णीय जीवणं कुणेदि। एरिसा जंत-मंत-जेदिस विज्जावंतहिंतो अप्पणाणीहिंतो सुरक्खणं होयव्वं। जइ कोवि

वीतराग मार्ग को छोड़कर कोई भी मार्ग मोक्षमार्ग नहीं है। सरागी की उपासना वीतरागी की तरह करना करवाना, अनुमोदना करना, पर को अपने सुख दुःख का कर्त्ता मानना, स्व को पर का कर्ता मानना सबसे बड़ी मूढ़ता है। कर्त्तव्य भाव का अभाव हो जाए तो मूढ़ता स्वयमेव पलायन कर जाएगी। मिथ्यात्व सरॉग की उपासना का मुख्य कारण है। कर्मों से पीड़ित प्राणी इतना दुःखी हो जाता है कि उसे सहन नहीं होता, तो वह दूसरे के माध्यम से सुखी होने की अपेक्षा रखता है। लोभी, वंचक, स्वार्थी अनेक जीव हैं। कलिकाल की कृपा से वे दुखिया को देखकर, जैसे आटे का लोभ दिखाकर मछुआरा मछली को कांटे में फँसाकर उसके प्राणों का हरण कर लेता है और उदरपूर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कम्मविवागो होदि ताव समदाए अंखेहि व पंचपरमेट्ठिस्स आराहणं कुण। बलिट्ठो कम्मसतू वि जिणभत्तादु भीउ सेहंते दिढा-अत्था होयव्वा। देक्ख! जह मयुरस्स वाणिं सुणित्ता उग्गा सयमेव चंदणं-विच्छं मुच्चंते जस्स आऊं खयिदं, तं तित्थयरो, इंदो, णरिंदो, चक्की-विण्हू-बंभा, महेसरो वि णो रक्खंते, णीय सरूवं जाणेहि, किं मुढदाए जीवेसि? जंतं-मंतं वा किं कुणेत? इमाओ पहाविदो मा होदि। दुहं सुहे वट्टणस्स उवाओ विदरागमग्गो, अत्थि। अण्णो कोवि उवाओ णत्थि। कम्म-सिद्धंतं जाणेहि। तुमं जं सुहासुहं वा कुणीअ तं को परिवट्टावेदि? सयमेव सक्केसि। कोवि अण्णाणं देवीदेवाणं व आराहणा णवि। जइ तुमं भणेज्जा देवीदेवाणं व

करता है, उसी प्रकार से पाखण्डी मिथ्यात्व के कांटे में फँसाकर, सम्यक्त्व प्राणों को छीनकर, दुखिया के पास जो कुछ धनादि था, उसे भी छीनकर अपनी आजीविका चलाते हैं। ऐसे अज्ञानी मन्त्र-तन्त्र ज्योतिष विद्या वाले अल्पज्ञों से बचकर रहना चाहिए। यदि कोई कर्मोदय चल रहा है तो उसे शान्ति से सहन करते हुए पंचपरमेष्ठी की आराधना कर। प्रबल कर्म शत्रु भी जिन भक्ति से भयभीत होकर भाग जाते हैं। दृढ़ आस्था होनी चाहिए। देख! मयूर की आवाज सुनकर जैसे चन्दन के वृक्ष से लिपटे भुजंग/सर्प अपने आप चन्दन वृक्ष को छोड़ देते हैं। जिसकी आयु पूर्ण हो ही चुकी है, उसे तीर्थंकर भगवान् इन्द, नरेन्द्र, चक्री, हरिहर, बम्हा, महेश्वर भी नहीं बचा सकते, सतत्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आराहगा सुही दिट्ठंते। रे अबुहा मुणेहि! ते सुही देवी अच्चाए ण पुव्वपुण्णादो अत्थि। जो पुव्वे सम्ममग्गं गहिदं तदो पहावादो सुही अत्थि। किं देवी-उवासगो अदुही? बहुआ देवी-उवासगा लहुवो होंते। ते अज्जोवायां वरा किं णा जादा? मिच्छतादो असंजमादो ते अज्जं दुही अत्थि। ताण उवासगाणं ते साहणस्स अहिलासं कुणंते। कस्स होइ? विचिंतेहि, जइ जिणसासण-रक्खगो अच्छच्छणी वा पम्मावदि-खेत्तवालाणं वा कोवि जिणदेव-सारिच्छं जाणित्ता आराहणं कुणेदि, तदो सुहं दुवं वा कप्पेदि, सोवि मूढदाए जीवेइ। सम्मजुत्तो देवो माणपत्तो होदि। संमाणो ताव होदव्वं किण्णु जिणदेवो णा जाणिदव्वो। जहा जोग्गं जाणिदव्वं। सव्वेसुं दव्वेसुं

स्वरूप को समझ क्यों मूढ़ता में जीता है? जादू-टोना क्या कर सकते हैं? इनसे प्रभावित मत हो जाना। असाता के द्रव्य को साता में बदलने का उपाय वीतराग मार्ग की शरण है। अन्य कोई उपाय नहीं है। कर्म सिद्धान्त को समझ! तूने जो शुभाशुभ कर्म किए हैं, कौन परिवर्तित करेगा? स्वयं ही कर सकता है। अन्य कोई देवी देवता की उपासना नहीं। यदि तू कहे कि देवी आदि की पूजा करने वाले सुखी देखे जाते हैं। अरे मूढ़! ध्यान रख, वे देवी पूजा से सुखी नहीं हैं, पूर्व पुण्य से है। जो पूर्व में सद्मार्ग का आश्रय लिया था उसके प्रभाव से सुखी हैं। क्या देवी उपासना करने वाले दुःखी नहीं है? सर्वाधिक देवी उपासना निम्न लोग करते हैं। वे आज तक श्रेष्ठ क्यों नहीं बने? मिथ्यात्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूढदाहिण-परिणदी अमूढदिट्ठित्तणं अत्थि। तुज्झ मोक्खस्स सुहस्स अहिलासा होज्जा ताव जिणिंद-देवे जिणवयणे, णिग्गंथ गुरुणो, णिअप्प देवाणं व सद्धा कुणेज्जा।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

असंयम, इत्यादि के कारण वे आज दुःखी हैं। उसी की आराधना करके पुनः सुखी बनना चाहते हैं। कैसे संभव है? ध्यान रख! यदि जिनशासन रक्षक यक्ष, यक्षिणी, पद्मावती, क्षेत्रपाल इत्यादि की भी यदि कोई वीतराग अरहंत देव जैसे मानकर उपासना करता है, उनसे दुःख सुख की कल्पना करता है, वह भी मूढ़ता में जी रहा है। सम्यक्त्व से युक्त देव आदर सम्मान का पात्र है। सम्मान होना चाहिए पर जिन देव नहीं मानना चाहिए। यथायोग्य जो जैसा है उसे वैसा माननां चाहिए। सर्व पदार्थों में मूढ़ता से रहित परिणति अमूढ़ दृष्टिपना है। जिन देव, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ गुरु निजआत्म देव का श्रद्धान कर, यदि तू सत्य शिव सुख की आकांक्षा रखता है तो।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धम्मप्प-हासो समण-सक्किदि-कलंको

भो णाणि! संमत्तस्स अट्ठंगेसु पंचमंग-उवगूहणं। णिय गुणाणं बड्ढाणं पर दोसाणं झंपाणं व अप्पगुणाणं झंपाणं उवगूहणं। उवगूहणं सयमेव सव्वोच्चठाणं गहेदि। जस्स उवगूहणं-ण, तं सम्मादिट्ठी व जइणो वि णो कहावेदि, सो भद्द परिणामी सदायारी गिहत्थो वि णवि सो भद्दमिच्छदिट्ठी वि ण होदि। भद्दमिच्छादिट्ठी! कस्स वि धम्मिगस्स णिंदालोयणं मा कुण। णिय पुत्त-पुत्तीणं मिच्छा चरिआए किं कस्स सुणावेसि! णिय संताणाणं मिच्छ-चरित्ताणं चरिचं अण्णत्तो कुणेज्जा, ताव णिय हंसणं होदि, अंते संताणं मज्झेव। एसो भव्वमिच्छादिट्ठी वि वियारेदि धिक्कारं, धम्मस्स णेत्तारं, जो धम्मिगस्स चुक्कं ण

धर्मात्मा की हंसी-श्रमण संस्कृति पर कलंक

भो ज्ञानी! सम्यक्त्व के आठ अंगों मं पाँचवा अंग उपगूहन अथवा उपवृंहण अंग है। निज गुणों की वृद्धि करना, पर दोषों को ढकना एवं अपने गुणों को ढकना उपगूहन अंग है। उपगूहन अपने आप में सर्वोच्च स्थान रखता है। जिसके पास उपगूहन अंग नहीं है, उसे सम्यक्दृष्टि व जैन कहना तो दूर रहा, वह भद्र परिणामी सदाचारी गृहस्थ भी नहीं है वह तो भद्र मिथ्या दृष्टि भी नहीं। हे भद्र मिथ्या दृष्टि जीव, किसी भी धर्मात्मा की निन्दा आलोचना नहीं करना। अपने पुत्र पुत्रियों के मिथ्या चाल चलन क्या किसी को सुनाता है। इतना तो विवेक कहता है कि यदि अपनी सन्तान की कुमार्गीपन की चर्चा दूसरे से करेंगे तो उससे निज हंसी होगी, आखिर में संतान तो मेरीं ही है। ऐसा भद्र मिथ्या दृष्टि जीव भी सोचता है पर धिक्कार है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुक्कावेदि इस्साए पत्तेसु, उज्जोयमाणो। समणसक्किदीए किं होहिदि। अरे बंधु! भगदं-समंतभद्दं तुमं मण्णेसि दु तस्स किं णो मण्णेसि? तेणं भासिदो कस्स बालेण, आसत्तो, अण्णाणीणा जइ कह चरितम्हि पमादावेदि, अहवा तदो जिण-धम्मस्स अपहावणा होदि, ताव तस्स लुक्कावेदि सामण्णम्हि-जणम्हि उज्जोअं ण करावेदि अवगूहण अंगो। जो धम्मिगस्स हंसेदि, सो जिणधम्मस्स णमोत्थुसासणस्स हसेदि।

सो णरो णमोत्थुसासणे समण-सक्किदीए कलंको। सो अहुणा सुधम्मस्स सरूवं ण बुझदि, खलु धम्मप्पणत्तं पदंसणं अत्थि। सो भणेदि चुक्कं चुक्कं मा कहेमु? अरे अण्णाणि! णिय दुक्किउं पेक्ख! तुं सयमेव कत्तो चरियजुत्तो, णिद्दोसो, खीरपच्छालिदो।

उन धर्म के ठेकेदारों को जो धर्मात्माओं की कमी को छिपाना तो दूर की बात है, ईर्ष्या से भरकर पेपरों, अखबारों में छपवा रहे है। श्रमण संस्कृति का क्या होगा? अरे भैया भगवान समन्तभद्र स्वामी को मानते हो तो उनकी क्यों नहीं मानते हो? उन्होंने कहा है किसी बाल, आसक्त अज्ञानी के द्वारा यदि कहीं चर्या में शिथिलता आ रही हो, अथवा उनकी किसी भी क्रिया से जिन धर्म की अप्रभावना हो रही हो तो उसे ढकना, छिपा लेना, सामान्य जन में प्रचार नहीं करना उपगूहन है। जो धर्मात्मा की हंसी करता है, वह निज धर्म की नमोस्तु शासन की हंसी करता है। और ऐसा व्यक्ति नमोस्तु शासन यानि श्रमण संस्कृति पर कलंक है। उसने अभी सत्य धर्म के स्वरूप को समझा नहीं.है कोरा धर्मात्मा कहलाने का ढोंग बना रखा है। कहता है गलती को गलती न कहें? अरे अज्ञानी! स्व की ओर तो झांक कर देख! तू स्वयं में कितना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मण्णा तुं णिद्दोसो वि किण्णु अण्णेसिं दोसाइं पेक्खिअ बक्खाणिदा, तस्स समए तुज्झ णाणपरिणदी दोसेसु अत्थि। तस्स समये तुं दोसलिणो होसि किं तु तस्स दोसाणं अदोसी? बुज्झेज्ज! जास चारित्तं समलं तं आलोयणं पडक्कमणत्तं सुद्धो होदि। कुण्डकुण्डेण पण्णत्तो जो चरिय भट्टो तस्स सिज्झेज्जा दंसण भट्टा-भट्टा, तस्स ण सुज्झिं। चरिय भट्टो णिव्वाणपत्तो, दंसण-भट्टस्सणिव्वाणं असंभवो। अओ परिलोक्य! जो धम्मिगस्स णिदं कुणेदि, सो दंसण-भट्टो जओ तेण सह ण उवगूहणेव। एगंगेण खंजो सव्वंगो ण कहावेदि। तहेव सम्मत्तस्स अट्ठंगत्तो एगंगहिणो वि, सु-सम्मादिट्ठी ण कहावेदि, सो अहगोत्तस्स बंधगो होज्ज। जो गुरु-धम्म-धम्मिगाणं णिंदगो, सो

चर्यावान्, निर्दोष, दूध का धोया हुआ बैठा। माना कि आप निर्दोष भी हैं तो जब दूसरे के दोष देख रहे थे व दोषों का बखान कर रहे थे, उस समय तेरी ज्ञान की परिणति दोषों पर थी। उस समय तू दोषो में तन्मय है इसलिए क्या तू उस दोष का दोषी नहीं है? ध्यान रख! जिसने चारित्र में दोष लगाया है, वह तो आलोचना प्रतिक्रमण करके शुद्ध हो सकता है। कुन्द-कुन्द भगवान ने कहा जो चारित्र से भ्रष्ट है, उसकी तो सिद्धि सम्भव है। पर जो दर्शन से भ्रष्ट है वह भ्रष्ट ही है। उसकी शुद्धि संभव नहीं। चारित्र भ्रष्ट निर्वाण का पात्र है, दर्शन भ्रष्ट की सिद्धि संभव नहीं है। इसलिए ध्यान रखो, जो धर्मात्मा की निन्दा करता है वह दर्शन भ्रष्ट है, क्योंकि उसके पास उपगूहन अंग ही नहीं। एक अंग से हीन भी व्यक्ति सर्वांग नहीं कहलाता। उसी प्रकार सम्यक्त्व के आठ अंगों में से एक अंग भी हीन है, तो वह शुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरिसो समण सक्किदीए ण जिणस्स संताणेव। जो लघु बालगस्स वि हासेदि सो अण्णरत्ताओ जादो मण्णहि, सो जेणत्तं लज्जावेदि, चउविह-संघस्स णिंदिउं दुग्गदिं लहेज्जा। उवगूहणस्स पालणं तहेव संभवो जाव अंतसे मद्दवो, अज्जवो, खमा, सच्चधम्मो त्थि, साहिमणं साहू-पुरिसाणं णिंदं करेदि। अहमेव सेट्ठो, इणं वट्टा दिढत्थं इच्छेदि। भो णाणि! णियम्हि करूणं कुण, णिए पेक्खित्ता किं ण णिंदेदि? किं पर-णिंदिउं भवभमणं इच्छेसि? णिंदाओ दुग्गंधाओ सुरक्खेहि, उवगूहणस्स गंधं लहेज्ज।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

सम्यक्दृष्टि नहीं कहला सकता वह तो नीच गोत्र का बन्ध करेगा। जो गुरु व धर्म, धर्मात्मा का निन्दक है, वह व्यक्ति श्रमण संस्कृति में जैन की सन्तान ही नहीं है। जो छोटे से बालक की भी हंसी करता है वह किसी दूसरे के रक्त से उत्पन्न हुआ समझो, जो कि जैनत्व को लजा रहा है, चतुर्विध संघ की निंदा करके दुर्गति का पात्र है। उपगूंहन अंग का पालन तभी संभव है, जब अन्तरंग मार्दव, आर्जव, क्षमा, सत्य धर्म होंगे स्वाभिमान की पुष्टि के पीछे सन्त पुरुषों की निन्दा करता है। मैं ही श्रेष्ठ हूँ, इस बात की पुष्टि करना चाहता है। फिर माया जाल रचता है, और अन्य सद्पुरुषों की आलोचना प्रारंभ कर देता है। पर भो ज्ञानी! निज पर करुणा कर अपने दुष्कृत्यों की निंदा क्यों नहीं करता? क्यों पर निंदा कर भव भ्रमण करना चाहता है। निन्दा की दुर्गन्ध से बच उपगूहन की सुगन्ध को प्राप्त कर।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुण-णिय-ठिदिकरणं

भो णाणि! तुमं चिंतेहि, परोवएसे कुसलत्तं णवि को विसेसो, णिय उवएसलाहो सेट्ठ-कज्जो/ साहू पुरिसो पुव्वे परोवएसं ण किदो सोवएसं। सोवएसेणं विणा परोवइट्ठा घोर-अण्णाणी। समुही होऊण जो समणो धम्मोवएसं कुव्वदि। सो णाणि। जो परमुही होऊण भणेदि, सो जड-जंतं-सारिच्छो, जेत्तिअं सत्थेण गहिया णाणे। णिय कल्लाणेच्छुगो णियकल्लाणं पढमं पेच्छेदि। जत्थ णियदिट्ठि ण तत्थ णो कयावि। भो णाणि! तुह परट्ठिदिकरणं बहुहुत्तं, किदं, एगहुत्तं णियट्ठिदिकरणं करित्ता

कर निज-स्थितिकरण

भो ज्ञानी ! तू ध्यान रख, पर उपदेश में कुशलता प्राप्त कर लेना कोई विशेष बात नहीं है, निज उपदेश को प्राप्त होना श्रेष्ठ काम है। महापुरुष पूर्व में पर उपदेश नहीं देते स्व उपदेश देते हैं। स्व उपदिष्टा हुए बिना जो पर उपदिष्टा बन जाता है वह घोर अज्ञानियों का सम्राट है। स्वमुखी बन कर जो साधक धर्मोपदेश देता है वही ज्ञानी है। जो मात्र परमुखी होकर कथन करता है वह मात्र जड़ कैसिट के तुल्य बोलता है, जितना शास्त्रों से भर लिया है अपने मस्तिष्क में। पर आत्म कल्याण इच्छुक स्वार्थ पहले देखता है। जहाँ निज की दृष्टि नहीं है, वहाँ पर कुछ भी नहीं है। भो ज्ञानी ! तूने पर का स्थिति करण बहुत बार किया, एक बार निज का स्थितिकरण तो करके देख। जब तक स्वयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिरिक्खेज्जा। जाव विसय-कसाया ण पेरेंति, ताव परोवएसं देसि, बुहो होसि। जाव णियपरिणदी वियाररूवा होदि, तदणुरूवो परिणमंतो तस्सि समए तुज्झ मेहा कत्थ गच्छेदि। पवयणसार-मूलायार-सिद्धंत-आगमस्स उववि‍सेंति? अण्णणि! तुमं किं णियवेसं लज्जावेसि? किं तुज्झ णो लज्जदे? जिणवेसं गहित्ता जिणो णवि होसि। विहावस्स जीवणं किं जोगी-धम्मो? विहावम्हि जीवंतो सो ठिदिकरणं णवि लहिदो। उम्मग्ग गच्छंतो णिय आद-परिणामाणं णिय मग्गत्तो जिणमग्गे ठवणं, पर भावत्तो, सहावे गमणं इणं णिच्छएण ठिदिकरणं। णिआय-मग्गाओ चलायमाणो

को विषय-कषाय नहीं सताते, तब तक तू पर को उपदेश देता है, समझदार बनता है। जब निज का परिणमन विकार रूप होता है, तद्नुरूप परिणत होने लगता है, उस समय तेरी समझ कहाँ जाती है? प्रवचनसार, समयसार, मूलाचार, सिद्धांत, आगम की चर्चाएं क्यों समाप्त हो जाती है? रे दुर्बुद्धि! तू क्यों निज भेष को लजाता है? तुझे लज्जा नहीं आती है? जिनरूप का धारण कर जिन नहीं बन पा रहा। विभाव भावों में जीना, क्या योगी का धर्म है? जो विभाव भावों में जीता रहा, वह स्थितिकरण को प्राप्त नहीं हुआ। उन्मार्ग में चलते हुए अपनी आत्मा के परिणामों को निज मार्ग से जिन मार्ग में स्थापित करना, पर भावों से हटाकर स्वभाव में लाना, यह निश्चय नय से स्थापित करना, पर भावों से हटाकर स्वभाव में लाना, यह निश्चय नय से स्थितिकरण अंग है और न्याय मार्ग से चलायमान करने के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करणत्थं काम-कोह-मददाण-विवाग-सत्थाणुसारेण जुत्ति-पुव्वं णियपराणं ठिदिकरणं पि करणियं, अमिदचंद सामीणो मा उत्तो पुरिसत्थ-सिद्धिउवाए। भो चेयण्ण! परत्तो परिणदिं ओसारित्ता णियम्हि ठवियं इणमेव तुज्झ ठिदिकरणं, तहेव तुमं णिम्मलो वीदरागी सम्मादिट्ठि होसि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

काम, क्रोध, मद आदि के उदय होने पर शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक अपना और दूसरे का स्थितिकरण भी करना चाहिए, ऐसा आचार्य भगवान श्री अमृत चन्द्र स्वामी ने पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में कहा है। भो चैतन्य! पर से परिणति हटाकर स्व में लगा यही तेरा स्थिति करण अंग है, तभी तू निर्मल वीतराग सम्यग्दृष्टि होगा।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वच्छल्लभावे समगिदभावो

भो णाणि! जइ तुमं णिय सिद्धिं वंछेसि, तु धम्म-धम्मायदणे वच्छल्लत्तं धारेज्ज, जाव सुद्धावत्थं ण पावेसि। रयणत्त-यभत्तो रयणत्तयजुत्तं पेक्खित्ता पणमेस्सदि। जिणसासणमम्मं बुज्झदि सो जिणरूवस्स अवमाणं ण कयावि करेस्सदि व ण पेक्खदि। जो जिणलक्खणजुत्तं पेक्खित्ता असूया भावं गहेदि, सो महामाणी-तित्थयरसासणं कलंकावेदि अट्ठ दव्वाओ जिणालयं गंतूण ती-ऊण णवकोडिओ मुणीसरायाणं पूजेदि, पणमेदि भत्तिपुव्वं व अग्गे आगंतो पेक्खिउं मुहं पच्छा करेदि। भो भव्व णाणि! इणं कह

वात्सल्य भाव में समकित भाव

भो ज्ञानी! तू स्वात्म सिद्धि चाहता है तो धर्म-धर्मायतन में अनुराग रख, जब तक शुद्धात्मा को प्राप्त नहीं हुआ है। जो जीव रत्नत्रय धर्म का भक्त होगा तो वह रत्नत्रय धारी को देखकर उनके श्री चरणों में झुक जायेगा। जिनशासन के मर्म को समझने वाला जिनरूप की अवहेलना न कभी करेगा न देख ही सकता है। जो जिन मुद्रा धारी को देखकर ग्लानि भाव रखता है, वह महामानी तीर्थंकर शासन को कलंकित कर रहा है। अष्ट द्रव्य से जिनालय में पहुंचकर तीन कम नव कोटि मुनिवरों की पूजा, नमन करता है भक्ति पूर्वक और सामने आते दिख जाएं तो मुख मोड़ ले। भो भोले प्राणी! ये कैसी भक्ति पूजा है? मायाचारी निभाकर क्या पशु समाज की वृद्धि करना है। तिर्यंच

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भत्तीपूया वा? मायायारी करित्ता किं तिरियंच-समुदायं बड्ढावेसि। तिरियगइवियासे तुज्झ दिट्ठी अत्थि। सहाए सब्भावो, सम्मभावो सिणेहो, अणुराओ वच्छल्लस्स मणोहारिं पवयणं, व को वि संतो आगच्छंतो ताव णमणंमुच्चित्ता मुहेण कहणे पि अलं। सामझण-जणाओ हीणो किं साहू? गारत्थेहि वत्ता संभवो साहूणा सहं समायारिस्स वि णो मुणेदव्वं। इणं कस्सवि सत्थे ण उत्तं। रे णाणि! दव्व-लिंगिणो तिदिवसो सामण्ण-ववहारो होयव्वो। पच्चुप्पण्णे कस्स किं मावदण्डो, जो सयमेव सेट्ठो मण्णदि व हीणं अण्णं परिणाम-गई ण सुअ-केवलीविसयं पि। सामण्ण गिहत्थं कस्स

गति का विकास तेरी दृष्टि में है। मंच पर सद्भाव साम्यभाव, प्रेम, अनुराग वात्सल्य का मनोहारी प्रवचन और यदि कोई सन्त आ जाए तो झुकना तो दूर है मुख से बोलना भी बन्द हो गया। सामान्य जनमानस से गिरी अवस्था क्या साधु की है? जो कि गृहस्थों से चर्चाएं हो सकती हैं, पर साधु के साथ समाचारी का भी ध्यान नहीं दिया जाए। ये किसी भी आगम की आज्ञा नहीं है। रे ज्ञानी! द्रव्य लिङ्गी से भी तीन दिन तक सामान्य व्यवहार तो होना ही चाहिए। फिर वर्तमान में किसके पास क्या मापदण्ड है, जो कि एक स्वयं को सर्वोपरि स्वीकारे अन्य को हीन। नहीं! परिणाम की गति श्रुत केवली का भी विषय नहीं है। फिर सामान्य गृहस्थ आदि कैसे निर्णय ले सकते हैं? साधु का नग्न भेष देखकर तुरन्त ही नमस्कार वन्दन होना चाहिए उसके बाद अन्य समाचार क्रिया होना चाहिए। आ. कुन्द कुन्द भगवान ने भी समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिण्णयं कुणेदि? साहुमुद्दं पासित्ता झट्टेव णमण-वंदण-होयव्वं, तं पच्छा अण्ण-समायार-किरियं होयव्वं, आइरिय-कुण्ड-कुण्ड-भगवया समय-पाहुड-गंथे णिदिदठं-सम्मादिट्ठिस्स परिणदि धम्मिगं पडि कस्स हो यव्वं।

जो कुणदि वच्छलत्तं, तिण्हं साहूण-मोक्ख-मग्गम्मि।
सो वच्छल-भाव-जुदो, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

बहिरब्भंतरादो-उभयदो रयणत्तयस्स गहिओ मुणी, अज्जिभा, सावगो वाविगा चउविह संधे, जस्स गोवच्छ-पीदी होदि तं सारिच्छ पंचिंदिय-विसय-णिमित्तं पुत्तो, दारा, सुवण्णं जो

पाहुड़ ग्रन्थ में स्पष्ट उल्लेख किया है, सम्यग्दृष्टि जीव की परिणदि धर्मात्माओं के प्रति कैसी होना चाहिए।

जो कुणदि वच्छलत्तं, तिण्हं साहूण-मोक्ख-मग्गम्मि।
सो वच्छल-भाव-जुदो, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो जीव मोक्ष मार्ग में स्थित आचार्य, उपाध्याय, साधु पद सहित आत्मा में अथ्वा सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्र में वात्सल्य भाव करता है, वह वात्सल्य भाव सहित सम्यग्दृष्टि होता है। बाह्य और अभ्यांतर दोनों प्रकार के रत्नत्रय को धारण करने वाले मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका चारों प्रकार के संघ में, जैसे गाय की वत्स में प्रीति रहती है, उसके समान, अथवा पांचो इन्द्रियों के विषयों के निमित्त पुत्र स्त्री स्वर्ण आदि में जो स्नेह रहता है, उसके समान अतुल स्नेह को जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिणेहेदि तं सारिच्छ अतुल-सिणेहं जो कुणदि, सो ववहारेण वच्छल्लं। णिच्छयेण वीदराग-चारित्तस्स अविणाभावी साणुभूदीए पगड-अप्पाणंदो, तम्हि लिणदा व रोच्चेदि, तं वच्छल्लं। भो णाणि! तुमं उहयदो त्थि अप्पोत्थाणत्थं वच्छल्लत्तणं पालेहि। जइ णिय-वियासं इच्छसि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

करता है, वह व्यंवहार नय की अपेक्षा से वात्सल्य अंग है। निश्चय से वीतराग चारित्र के अविनाभावी भूत स्वात्मानुभूति से प्रकट आत्मानंद है, उसमें लीनता व रूचि, वह वात्सल्य अंग है। भो ज्ञानी! तू तो उभय रूप से आत्मोत्थान हेतु वात्सल्य अंग का पालन कर, यदि स्वात्म विकास चाहता है तो।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णायगभावलीणत्तं णिच्छय-पहावणा

भो णाणि! चिंतेहि जसपूया-भावणा तुह समणत्तं पघादेहिदि। पहावणा-अंगस्स अत्थो गत्त-पहावणा णो। णिय देहचित्ताणं लक्ख-पहावणा णो किं इदं माया-कवडं णो? धम्मवेसं गहित्ता मेत्त-देहपहावणाए संलग्गिओ। जिणसासण-पहावणाजुदो देह पहावणाए णो। किं तुज्झ छायाचित्तेण कस्स हिअयो पहाविदो होदि? धम्मेण छायाचित्तं किं कस्स अण्णाण-णासगं?जिणवयण-मज्झेण अण्णाणं विणस्सदि।अपहावणाए अवसरसु।

अप्पण! सव्वत्तो भावणा सयं धम्मजुत्तो अण्णंपि

ज्ञायक भाव में लीनता निश्चय प्रभावना

भो ज्ञानी! तू ध्यान रख, ख्याति लाभ पूजा की भावना तेरे श्रमणत्व का घात करा देगी। प्रभावना अंग का तात्पर्य अपने तन की ख्याति नहीं है। निज तन, फोटो, तस्वीरों का उद्देश्य प्रभावना मत मान बैठना। क्या ये छल कपट नहीं है? धर्म के भेष को धारण कर मात्र निज तन के प्रयास में लगा है। जिन शासन की प्रभावना वाला प्राणी तन प्रभावना में नहीं गिरता। क्या तेरे फोटो तस्वीरों से किसी का हृदय प्रभावित होता है? धर्म से क्या फोटो किसी के अज्ञान का नाशक है? जिनवाणी के माध्यम से अज्ञान मिटता है। अप्रभावना के कारणों से दूर रहना।

आत्मन्! सबसे श्रेष्ठ भावना है, स्वयं धर्म से आर्द्र होना व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धम्मजुत्तावेदि ण णिय-गत्तम्हि। जिणसासण-महत्तं पयासणं ववहार पहावणा। जाव जिणसासण पहावेदि, ताव तुज्झ पहावणा सयमेव होस्ससि। रयणत्तेणं तेजेणं णिय-अप्पं पहाविदं कुण, णायग-भावथिरा णिच्छय-पहावणा। दाण तव-चाग-जिणपूया-विज्जा-अज्झणंमंत-अदिसएहिं च जिण-सासण-पहावणं कायव्वं। सयमेव लक्खं कारित्ता एरिसा जिणिंद-आणा।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

अन्य को धर्म में लगाये रखना, अपने तन में नहीं। जिनशासन के महत्व को प्रगट करना व्यवहार प्रभावना करेगा तो तेरी प्रभावना स्वमेव हो जायेगी। रत्नत्रय के तेज से निज आत्मा को प्रभावित करना, ज्ञायक भाव में लीन रहना निश्चय प्रभावना है। दान के द्वारा तप व त्याग, जिन पूजा, विद्या अध्ययन मंत्र आदि अतिशयों के द्वारा जिन-शासन की प्रभावना करना चाहिए स्व को लक्ष्य में रखकर, ऐसी जिनेन्द्र की आज्ञा है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कत्तव्वमेव धम्मो

भो णाणि! आवस्सगं कत्तव्वमेव तुज्झ णिय कत्तव्वं। इणं कयाति ण परित्तजेहि। णिय आवस्सगाणं भुल्लिओ विसरिदो दु संसारे परिहिंडेहिसि परिभमंत्तो विप्पमुक्कस्स चिंति दव्वं! णीदिगारेहिं भासिदा "कर्त्तव्यमेव धर्मः" णो। कत्तव्वं धम्म-सण्णं कहं लहेदि? इमस्स उत्तरे आइरिय-भगवंतेहि भासिदा-जाव तुज्झ किरिया, भाव विसुज्झीए सह होज्जा। जइ किरियाए सह तुज्झ भवसुज्झी होज्जा, ताव सा किरिया धम्म-सरूवे परिणमेज्जा जं कत्तव्वं तुमं कुणेसि तं णिय कत्तव्वं चिंतिदूण जइ तं कत्तव्वं कुणेहि

कर्त्तव्यमेव धर्मः

भो ज्ञानी! आवश्यक कर्त्तव्य ही तेरे निज कर्त्तव्य हैं। इनको कभी भी मत भूलना यदि तू अपने आवश्यक कर्त्तव्यों को भूल गया, तो तुझे संसार में झूलना पड़ेगा, यदि झूलने से बचना है, तो ध्यान रख। नीतिकारों ने कहा है- "कर्त्तव्यमेव धर्मः" कर्त्तव्य ही धर्म है। नहीं। फिर धर्म कर्त्तव्य संज्ञा को कब प्राप्त होता है? इसके उत्तर में अचांर्य भगवन्तों ने कहा है कि जब तुम्हारी क्रिया, भाव-विशुद्धि के साथ होगी। यदि क्रिया के साथ तेरे भाव शुद्ध हैं, तो वह क्रिया धर्म रूप परिणत हो सकती है। जिस कर्त्तव्य को तू कर रहा है, उसको अपना कर्त्तव्य समझ के यदि कर रहा है तब तो धर्म स्वरूप है। यदि भार स्वरूप समझ के कर रहा है तो मात्र कोरी क्रिया है। कोरी क्रिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताव धम्म-सरूवो जदि-भारमाणं मण्णंतो चरदि ताव किरिया मेत्ता। मेत्ता-किरिया णिस्सार णिप्फला होदि आइरिय-कुमुदचंद सामिणा पण्णत्तो- "यस्मात् क्रियाः प्रति-फलंति न भाव शून्याः"। विणा-भाव विसुज्झिए किरिया धम्मविहिणा, असंजम-रूवा, अधम्मरूआ किरिया मेत्त अणत्थगं पुरिसत्थं इमस्स अंतपरिणामो होदि, णिरासा हदासा वा हविऊण तुमं छडिडेज्जा, जेण सव्व-पयारेण तुज्झ पडणं आरंभेज्जदि। भो णाणि! तच्चणाण-भिण्णो वा, तच्च-भावभिण्णो, तच्चभाणेण सह कत्तव्वं।

सत्थे जईणं छट्ठावस्सगं णिदिदठं। जो अवसं सो आवस्सगं

निरर्थक निष्फल होती है, जैसा कि आचार्य भगवन्त कुमुदचंद्रस्वामी ने कहा है- "यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव शून्याः" अर्थात् भाव शून्या क्रिया फलितार्थ नहीं होती है। भाव विशुद्धता से रहित क्रिया, धर्मविहीन, असंयम रूप, अधर्म रूप क्रिया है, मात्र व्यर्थ का श्रम है जिसका अन्ततः परिणाम होगा हताशा। यानि निराश और हताश होकर फिर तू छोड़ने को तैयार हो जायेगा, जिससे सभी प्रकार से तेरा पतन प्रारंभ हो जाएगा। भो ज्ञानी! तत्त्व-ज्ञान भिन्न है, जबकि तत्त्व-भान भिन्न है, तत्त्व-भान के साथ कर्त्तव्य पालन कर।

आगम में यतियों के षट् आवश्यक कर्त्तव्य बतलाये हैं। आवश्यक का तात्पर्य-जो अवश हो यानि जो किसी के वश में न हो, और न जिस पर किसी का वश चले यानि जिसको अवश्य ही करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पालेहि। जो केणवि ण वसे सो आवस्सगो। जो अवस्स-करणीयं सो आवस्सगो जो साधगो णिय कत्तव्वाणं जहित्ता जत्थ-तत्थ कज्जेसु संलग्गो, सो णमोत्थु सासण-विराहगो। अत्थाह जिण सासणबहि-परे होदि एरिसो समणो उहय-सुहाणं पुण्णरूवेण मुच्चेदि। अओ भो साधग! किं तुमं णियेणं णिय वंचणं करसि। जम्हि समये जो कत्तव्वकालो, तस्स समये तं कत्तव्वं करणेव धम्मो। सामइए सज्झाओ णो सोहेदि, जस्स संवेदणसील-खेत्ते विणोदं, हासं। तच्च-चरिचार तच्चचरिचा, वंदणे वंदणा, थुइए थुदी, पडिक्कमणे पइक्कमणं, पच्चक्खाणे पचक्खाणं, सामाइए सामाइगं, जस्स

पड़े उनका नाम है, आवश्यक। जो श्रमण अपने कर्त्तव्यों का विसर्जन कर यत्र-तत्र के कार्यों में संलग्न रहता है, वह नमोस्तु शासन का विराधक है। यानि जिनशासन से बाह्य, परे है और ऐसा श्रमण उभय सुखों से पूर्ण वंचित हो जाता है। अतः भोसाधक! क्यों तू निज के माध्यम से निज की वंचना कर रहा है। जिस समय जिस कर्त्तव्य का काल है, उस समय उस कर्त्तव्य को करना ही धर्म है। सामायिक के समय स्वाध्याय शोभा को, उसी प्रकार प्राप्त नहीं करता, जिस प्रकार गंभीरता के माहौल में अट्टहास। तत्त्वचर्चा के समय तत्त्वचर्चा, वंदना के समय वंदना, स्तुति के समय स्तुति, प्रतिक्रमण के समय प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान के समयं प्रत्याख्यान, सामायिक के काल में सामायिक, क्योंकि यथाकाल-यथास्थान पर ही कार्य की कीमत होती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहा काले जहाट्ठाणे कज्जं सोहेदि। राय-सहाएव णरणाहमत्थगे रायमुक्कुडो सोहेदि। ण्हावणे ण्हावणगिहे मुक्कुडं णो सोहेदि। एवं साहग-किरिया णिय समये च्चिय सोहेदि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

है। राजसिंहासन पर ही राजा के मस्तिष्क पर राज-मुकुट शोभायमान होता है। स्नान के समय स्नानगृह में मुकुट नहीं लगाया जाता है। उसी प्रकार साधक की क्रिया अपने समय पर ही शोभती है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सग-संगणं-सामइगो

भो णाणि! अप्पेण अप्पस्स चरिचा एव जहत्थ चरिचा, जेण मज्झेणं अप्प-चरिचा होदि। इणं अप्प-चरिचा अरिचा एव सामइओ। इदं कालं पमादे-आलस्से-णिद्दासु तंदासु मा खयहि, जओ इणमेव एगं अणोहो, अणुवमो अपुव्वो कालो जम्हि अप्पेण संभासणं होदि व णिएण णियस्स मेलणं-होज्जदि। अओ इदं जाण। 'सम' समाण-भावो, ण रागो, ण दोसो। इमस्स विवरीदं वीदराग-पहुणा-समं जांद व पाणिणं पई-समभावं, सब्भावं, मेत्तिभावं व समये एगीभावो होदव्वं। अप्पेणे अप्पणो लिणत्तमेव व णीए-लिणत्तमेव सामइओ। अण्णेणं मोणं व णियवट्टाए णाम

स्वयं से मिलो (सामायिक)

भो ज्ञानी! स्व से स्व की चर्चा करना ही वास्तविक चर्चा है, जिसके माध्यम से आत्म-अर्चा होती है। इसी आत्म-अर्चा एवं चर्चा के काल का नाम ही सामायिक है। इस काल को प्रमाद, आलस्य, निद्रा, तंद्रा में मत खो देना, क्योंकि यही एक अनोखा, अनुपम-अद्वितीय काल है, जिसमें स्वयं से मुलाकात होती है यानि निज से निज की बात होती है। अतः इसे समझो। "सम" यानि "समान" भाव का होना न राग न द्वेष। अर्थात् इनसे परे वीतराग प्रभू जैसे बन जाना या सभी प्राणियों के प्रति समभाव, सद्भाव, मैत्री-भाव रखना अथवा 'समय' में एकीभाव का हो जाना। आत्मा में आत्मा का समावेश कर लेना व अपने में मिला लेना। लगा देना ही सामायिक है/

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामइओ। जोई जाव सव्वाओ आजंपदि। ताव णिय पहुणा णिय किदाणं चरिचं करेदि हं कहं करणिय सुक्किदाणं अकरणिय कसायं-पमादं अण्णाणवस अकिदाणं किदं तेसु किदसु उल्लसियो अण्णेंसि तेसिं दुक्किदाणं उप्पेरिओ तेसिं दुक्किदाणं समणुमण्णणामि। तं समये तुमं विसारिओ, विवागे किं होसि? जीवो कम्मं कुणंतो कम्मफलं जदि सुमरेदि णं कया वि दुक्किदाणं ण कुणेज्जा। किरियं-पच्छा विवागे सुमरेदि सोरगुलं कुणंतो, मत्थगं धुणेदि, णयणणिरं मुच्चेदि। इणं अंसुणं पच्छतावाणं भूमिगाणाम-सामइओ। सयं-अवराहं गवेसित्ता उदवेलिदो सयलणेत्तो, अवराहाओ कंपियो, डरंतो व सयमे संकप्पिदो, अहुणा दुक्किदाणं

दुनियां से मौन लेकर निज से चर्चा करने का नाम सामायिक है। योगी जब सबसे मौन ले लेता है उस समय अपने प्रभु से अपने जीवन के कृत्यों की चर्चा करता है कि मैने कितने करने योग्य सुकृत्य एवं न करने योग्य कषाय, प्रमाद, अज्ञानता वश अकृत्यों को किया और उन कृत्यों में आनंद मनाया और दूसरों को भी उन्हीं दुष्कृत्यों के प्रति प्रेरित किया एवं अन्य के दुष्कृत्यों को देखकर अनुमोदना की। उस समय तू भूल गया कि इनका विपाक-परिणाम क्या होगा? जीव को कर्म करते समय कर्म के फलों की याद, यदि आ जाये, तो वह कभी भी दुष्कृत्यों में अपना हाथ नहीं डाल सकता। लेकिन याद बाद में आती है जब कृत्य का फल भोगने को मिलता है और फलोदय में चीखता-चिल्लाता है, सिर धुनता, नेत्रों से गंगा-यमुना जैसी धारा छोड़ता है। आंसुओं की इसी पश्चाताप की भूमिका का नाम है- सामायिक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ण करिस्सामि।

भो अप्पण! सामइए चिट्ठित्ता, णेत्ताणं अस्सुइं पस्सिऊण सयमेव करुणावंतेव सच्च-करुणावंतो होदि। इमेव करुणा-समदं उप्पज्जेहिदि। समदाए जागरणेव णिय सुद्धीए पयासगा। णिय चित्तं विसुद्ध-रक्ख अत्थाद विसय-कसायाहिंतो विरमेहि, इणमेव चित्तविसुज्झी व इदमेव होंति समदाए जागरणं। इणा समदा एवं सुसामइओ। समियाए धम्मो समाइगो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

स्वयं के अपराध खोजकर विह्वल हो उठना, अश्रुपूरित हो उठना, अपराधों से कांप जाना, डर जाना और स्वयं में संकल्पित हो जाना कि अब ऐसे कुकृत्य नहीं करूँगा।

भो आत्मन्! सामायिक में बैठकर, आंखों के आंसुओं को देखकर स्वयं पर करुणा करने वाला ही सच्चा करुणाशील-करुणावंत कहलाता है। यही करुणा-समता को जन्म देगी। समता का जागरण ही निज की पवित्रता का उद्योतक है। अतः अपने चित्त की पवित्रता है और यहीं से होती है, समता की जागृति। इसी समता का नाम परम सामायिक है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वंदेज्ज कंदणं हरेज्ज

भो णाणि! तुमं करहि वंदणं जदि तुमं णो वंछसि संसार बंधणत्तो संवरं। जओ बंधणेव हणेदि कंदणं। जो ण कुव्वदिजिणंदं-वंदणं जस्स जीवणे सया होदि वंदणा तस्स वि ण होदि कयावि वंदणा। जदि वंछेहि णिय वंदणा, तुमं पुव्वं कुणहि जिणवंदणं। भो साहग! वंदणं वि तुह एगो आवस्सगो। कुणहि मा मुच्चहि जओ इमा जीवणोत्थाणत्थं सुपगिरिआ। एरिसं वंदणं जस्स पुण णो करेहि। सा चिय वंदणा, जस्स कम्माणं ण बंधणं व अप्पपहुस्स होदि वंदणा। अओ एरिसा वंदणा जओ ण बंधणं, व

करो वंदना हरो क्रन्दना

भो ज्ञानी! कर तू वन्दना, यदि नहीं चाहता है तू संसार के बन्धनों से बंधना। क्योंकि वन्दना ही हरती है, क्रन्दना। जो नहीं कर पाता श्री जिनेन्द्र की वंदना, उसके जीवन में अहर्निश बनी रहती क्रन्दना और उसकी भी नहीं होगी कभी वंदना। हाँ यदि चाहता है स्व की वंदना तो पहले कर वीर प्रभु की वंदना। भो साधक! वंदना भी तेरी एक आवश्यक क्रिया है। इसे छोड़ मत देना क्योंकि यह क्रिया जीवनोत्थान-आत्मोत्कर्ष की परम-प्रक्रिया है। ऐसी वन्दना करना, जिससे पुनः न करनी पड़े। सच्ची वंदना वही है, जिससे कर्मों का बन्ध नहीं होता और आत्मा प्रभु का दर्शन बंद नहीं होता। अतः वंदना ऐसी करो जिससे बन्ध न हो, और आत्मावलोकन बंद न हो। वंदना को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होदि णियदंसणं। वंदणाए आगमे दोवियप्पं वण्णिदं-णिच्छय-ववहारा। जो जाणदि ववहारवंदणं तस्स होदि णिच्छयवंदणा। ववहारेणं विणा असंभवा णिच्छय वंदणा। एग तित्थयरस्स गुणाणं-सुमरणं, एग-तित्थयरस्स पणामं वंदना। आलस्स-पमाआ मुच्चित्ता णिद्ददोस-भत्ति पुव्वं गुणकित्तणं, ता एवं वंदणा बंधणं रुंद्धदि। लोगरंजणलिणा-वंदणा बंधस्स हेदू चिद ण संवर-णिज्जरा-मोक्खाणं अओ वंदणं अणालस्स भावेण करेहि तहेव ववहार-वंदणा फलेदि। ववहार-वंदणा एव णिच्चय वंदणाए हेदू। ववहार वंदणेणं विणा णिच्छय वंदणा किं होस्सदि? जो जीवणे ववहार

आगम में दो धाराओं में वर्णित किया है निश्चय एवं व्यवहार। जो व्यवहार वंदना सीख लेता है, उसी के निश्चय वंदना है। बिना व्यवहार वंदना के निश्चय वंदना संभव नहीं। एक तीर्थंकर के गुणों का स्मरण करना, एक तीर्थेश की प्रधानता से नमस्कार करना वंदना है। आलस्य, प्रमाद को छोड़कर निर्दोष भक्ति पूर्वक जो गुण कीर्तन किया जाता है वही वंदना वास्तविक रूप से बन्धन से बचा सकती है। किन्तु लोकरंजन के रस से रंगकर की गई वन्दना बन्ध का ही कारण होगी, संवर-निर्जरा-मोक्ष की नहीं। अतः वन्दना को निरालस्स भाव से करो, तभी व्यवहार वंदना फलितार्थ होगी। व्यवहार वन्दना ही, निश्चय वंदना की साधक है। यानि व्यवहार वन्दना जब तक प्रस्फुटित नहीं होगी तब तक निश्चय वंदना कैसे हो सकती है? जिसके जीवन में व्यवहार वंदना ही नहीं चल रही, वह निश्चय वंदना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वंदणा वि णो कुणेदि सो णिच्चय वंदणं किं कुणदि? ववहारेणं तित्थयरदेवाणं वंदणा होदि, णिच्चयेण णिय-विशुज्झप्पस्स, व परमसुज्झ णिच्छयेण वंदगवंदणीया ण को वि किण्णु इमा वत्था लिणपरमसाधगो णिव्वियप्प-गुतीजुत्तो, परमजोइस्सेव होदि। हे आद! तं पडि णियदिट्ठिरक्ख, सो एव तुज्झ उक्किट्ठ लक्खो-परमोक्किट्ठ लक्खो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

क्या करेगा? व्यवहार से तीर्थंकर जिन देव की वंदना की जाती है, निश्चय से निजशुद्धात्मा की एवं परमशुद्ध निश्चय .... से न कोई बन्धक है और न कोई वन्दनीय। लेकिन यह दशा लीन परम साधक, निर्विकल्प गुप्ति में गुप्त, परम योगी की ही होती है। अतः हे आत्मन्! उसी की ओर अपनी दृष्टि रख, वही तेरा चरम लक्ष्य-चरमोत्कर्ष बिन्दु है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुगो णो थुदो होज्जा

भो णाणि! थुच्चस्स थुई चिय ठवणं थुइ जेसुं थुदि फलं संपज्जिदा, एरिसा चउविस-जिणेस्सराणं ठवणो ठवणं जिणिंद-हविउं जिण भत्तो होदु। थुच्च-पुव्वं थुदो अणिवारिय होयव्वं थुच्चेव थुच्चो होदि। जिणिंद-ठवणमेव णियठवणं करावेदि। जो जिणठवणं ण किदो तस्स णियठवणं पि ण होदि। थुच्चो भत्तहोयव्वं, जओ भत्तीए विणा थुदि तारिसा, जस्स वेरग्गेणं विणा संजमो, जीवेण विणा देहं, णेहेण विणा महिलाएणं रोदणं, अधुवाए सज्जा। गुरुआणए हीण-सिस्सो। जहेव इणं ण सोहेदि तहेव भत्तीए

तोता नहीं स्तोता बनो

भो ज्ञानी! स्तुत्य की स्तुति करना ही स्तवन (स्तव) है या जिन्होने स्तवन के फल को प्राप्त कर लिया है ऐसे चौबीस जिनेशों का स्तवन करना स्तव (स्तुति) है। जिन बनना है तो पहले जिनभक्त बनो। क्योंकि स्तुत्य बनने के पूर्व स्तोता बनना अनिवार्य है, स्तोता ही स्तुत्य बनता है। जिनेन्द्र का स्तवन ही निज-स्तवन कराता है। जिसने जिन स्तवन नहीं किया, उसका निज-स्तवन नहीं हो सकता है। स्तोता भक्त होना चाहिए, क्योंकि बिना भक्ति के स्तुति वैसी ही है, जैसे कि बिना वैराग्य के संयम, बिना आत्मा के शरीर, स्नेह से रहित महिलाओं का रोना, विधवा का श्रृंगार एवं गुरु आज्ञा रहित शिष्य। जैसे ये शोभा को प्राप्त नहीं होते हैं, वैसे ही भक्ति विहीन स्तुति शोभायमान नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विणा थुदी सोहेदि। थुई अत्थाद णिम्मल-सद्धा-भत्तीए विहीण-थुदी। एरिसो थुंइवंतो णो सच्चो-थुच्चो सो सुवओसारिच्छो। सुगभावत्तो कम्मणिज्जरा असंभवा। मेत्त थुदीए ण कम्म-खयं होदि, कम्मखयस्स हेदू णिम्मल-सद्धा। सा सयं थुदी जम्हि थुच्चो थुदिलिणो, थुच्चं व थुच्चो एगमेगं होदि जम्हि कयावि भेयं णो पेक्खदि अत्थं तल्लिणत्तं, जस्स थुच्चस्स कणे-कणे थुच्चं दिक्खेदु। चउविस-तित्थयराणं थुई, असंसखेज्ज-गुणी णिज्जरा करावेदि, परण्णु होयव्वं सम्मं। हे जोगेस! ठवणं वि तुज्झ एगावस्सगो तुमं उच्छाहे कुण सउल्लासा थुई च्चिय कम्मखयस्स

होती। कोरी स्तुति यानि निर्मल श्रद्धा-भक्ति हीन स्तुति। ऐसी स्तुति करने वाला सच्चा स्तोता नहीं वह तो तोतावत् है। तोता बनने से कर्म निर्जरा संभव नहीं। स्तुति मात्र से कर्म क्षय का कारण है निर्मल श्रद्धा सच्ची स्तुति वह जिसमें स्तोता-स्तुति मय हो जाय, स्तुत्य एवं स्तोता में एकत्वपना प्रकट हो जाय, जिसमें कोई भेद न दिखे, यानि ऐसी तन्मयता हो, जिससे स्तोता के रोम-रोम में स्तुत्य झलकने लग जाय। चौबीस तीर्थेशों की स्तुति करना असंख्यात गुणी निर्जरा को प्राप्त करना है, किन्तु वास्तविक होनी चाहिए। हे योगी! स्तवन भी तेरी एक आवश्यक क्रिया है तू इसे उत्साहित होकर कर। उत्साह से युक्त की गयी स्तुति ही कर्म निर्जरा में हेतु है। सम्यग्दृष्टि के द्वारा की गयी स्तुति परम्परा से मुक्ति का कारण है जबकि मिथ्यादृष्टि की संसार या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेदू। सम्मादिट्ठिस्स किदा थुई परंपरेण मोक्खस्स हेदू व मिच्छाइट्ठिस्स भवपुण्णाणं वा कारणं अत्थि। जओ मिच्छादिट्ठिस्स दिट्ठि परमत्थसुण्णा लोगिगा होदि। अओ णिम्मलदिट्ठीए सच्चो-थुच्चो होदु, ण सुगा व सोदा हो। जस्स सुगं सुसमरावेदि तस्सेव वुच्चदि। अंतरेण परिणदी सुण्णा, अभावभासणा, मण-मयूरो णो णच्चदि तु थुदी किं? थुइकाले मणउल्लासिदो व रोम-रोम रोमंचिओ। होदि सा खलु सच्च-थुदी। आगमे थुदीए छब्भेयं वण्णिदा-णाम-ठवण-दव्व-खेत्त-काल-भावा चउविंस-तित्थयराणं णिम्मलं एगसहस्स अट्ठ-णामेहिंतो आराहणाए णाम

मात्र पुण्यबंध का कारण है। क्योंकि मिथ्यादृष्टि की संसार या मात्र पुण्यबंध का कारण है। क्योंकि मिथ्यादृष्टि की दृष्टि परमार्थ शून्य-मात्र लौकिक होती है। अतः निर्मल दृष्टि की दृष्टि परमार्थ शून्य-मात्र लौकिक होती है अतः निर्मल दृष्टि रखकर सच्चे स्तोता बनो, तोता या सोता नहीं। तोता को जैसे रटा दिया वैसा ही बोलना प्रारंभ कर देता है। अंतरंग परिणति से शून्य होकर, भावभासना ही नहीं, मन मयूर नाच ही नहीं रहा तो स्तुति कैसी? स्तुति करते समय हृदय आनन्दित हो उठना अर्थात् रोम-रोम पुलकित हो जाना ही सच्ची स्तुति है। आगम में स्तव छः प्रकार का कहा है- नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। चतुर्विंशति तीर्थंकरों के पवित्र एक-हजार आठ नामों से आराधना करना नाम स्तव है। चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाओं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठवणं। चउविंस-तित्थयराणं पडिमा ठाविउं थुइं थावणा-ठवणं/तित्थयराणं गत्तवण्णभेयाणं व वण्णंतो थुइं दव्वठवणं। तित्थयराणं णिव्वाण भूमीए, केलासगिरी आइ, समवसरण भूमीआइ खेत्ताणं ठवणं खेत्तठवणं। तित्थयराणं पंचकल्लाणाणं जस्स काले जादं तस्सिंकाले भत्तिपाढं आइ किरिआ कालठवणं। भावठवणं सत्थे दुभेयं वण्णिदाः- आगम-भावठवणं, णोआगम-भावठवणं च। चउविंस-तित्थयराणं ठवण-वण्णमाणो पाभिदणाणी व तदविसयोव-ओगजुत्तं सा भावठवणा भण्णिदा आगमे। चउविंस-जिणवराणं ठवणेणं परिणद-परिणामं

की स्थापना कर स्तुति करना स्थापना स्तव है। तीर्थंकरों की शरीर व वर्ण भेदों का वर्णन करते हुए स्तुति करना द्रव्य स्तव है। तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि, कैलाशगिरि आदि व समवशरण भूमि आदि क्षेत्रों का स्तवन करना क्षेत्र स्तव है। तीर्थंकर भगवन्तों के पंचकल्याणक जिस काल मे हुए हो उस काल में भक्ति पाठ आदि करना काल स्तवन है। भावस्तव आगम में दो प्रकार का कहा है- आगम भावस्तव, नो-आगम भावस्तव। चौबीस तीर्थंकरों के स्तव का वर्णन करने वाले प्राभृत के जो ज्ञाता हैं एवं तद् विषयक उपयोग से युक्त हैं उन्हें आगम भावस्तव कहते हैं। चतुर्विंशति तीर्थंकरों के स्तवन से परिणत हुए परिणाम को नोआगम भावस्तव कहते हैं।

भो ज्ञानी! स्व की स्तुति चाहता है तो पहले पंचपरमेष्ठी का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णोआगम-भावठवणं भण्णंते।

भो णाणि! जदि णियथुदिं वंछसि दु पुव्वं परमेट्ठिस्स ठवणं कुण। पहुथुई पुणो-पुणो कुणंतेव णियठवणं होस्सदि। णिच्चय-णयेणं तुमेव थुच्चं-थुच्चो वा। ववहारेणं चउविंस-तित्थयराणं होंति, थुदी, णिच्चयेणं विसुद्धआदस्स परम णिच्छयेण णो को विथुच्चं-थुच्चो वा।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

स्तवन कर। प्रभु-स्तुनि करते करते ही निज-स्तवन हो जायेगा। निश्चय से तू ही स्तोता है और तू ही स्तुत्य। व्यवहार से चौबीस, तीर्थंकरों की स्तुति होती है, निश्चय से निज-शुद्धात्मा की और परमशुद्ध निश्चय नय से न को स्तोता है और न स्तुत्य की।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिय-दप्पणं सच्छकरणत्थं कला-पडिक्कमणं

हे णाणपुंज-आद! दोसोप्पादणं णवि तुज्झ सरूवो, तुमं णिद्दोसो चेयणसरूवो भगवदअप्पण। किं विआरी-परिणदीए परिणदो चेयणसरूवं गुहावेसि? णिय-अप्पदप्पणं समलं मा कुण। राग-दोस-कालिमाए णियदप्पणो धूमिलं, अओ तं समलत्तं पडिक्कमण-णिरत्तो धोहि। तहेव तुज्झ भगवदादा तुह संपज्जेदि। कोहादि वियारी भावेसुं कयावि तुज्झ परिणदी होदि ताव णियदोसाणं पडिक्कमणं-कुण वत्थुदो राग-दोसजुंत्ताणं आदाणं पडिक्कमणं अमय-धडो। तुमं णिच्चय-पडिक्कमणं मा संपज्जेसि, तहेव ववहार-पडिक्कमणं मा मुच्चेहि, अण्णहा पडेज्जसि

निज दर्पण को स्वच्छ करने की कला प्रतिक्रमण

हे ज्ञान पुंजात्मन्! दोष उत्पन्न करना तेरा स्वरूप नहीं है, तू निर्दोष चेतन स्वरूप भगवान् आत्मा है। क्यों विकारी परिणति से परिणत होकर चेतन स्वरूप को आवृत कर रहा है? निज आत्म-दर्पण को गंदा मत बना। राग-द्वेष की कालिमा से निज-दर्पण धूमिल है, अतः उस धूमिलता को प्रतिक्रमण रूपी नीर से धो। तभी तेरी भगवान स्वरूपी आत्मातुझे प्राप्त होगी। क्रोधादि विकारी भावों में कदाचित तेरी परिणति बन गयी हो, तो तू अपने दोषों का प्रतिक्रमण कर लेना। वस्तुतः, राग-द्वेष युक्त आत्मा को प्रतिक्रमण अमृत कुंभ है। जब तक तू निश्चय प्रतिक्रमण को प्राप्त न हो जाए, तब तक व्यवहार प्रतिक्रमण मत छोड़ देना, नहीं तो तू डूब जाएगा संसारार्णव में, वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri.

संसाराण्णवे। सो अण्णाणी कहेदि अहं णिच्चय पडिक्कमणं कुणेमि, ववहार पडिक्कमादो सुण्णो। एरिसो साहगो उहय-पडिक्कमादो विमुहो होदि, जओ ववहारेणं विणा णिच्छयो वि ण होदि णिच्छय-पडिक्कमणे जाव पवेसेदि, ताव ववहारो सयमेव मुच्चेज्जा। णिच्चय कहमाणाणं णिच्चय पडिक्कमणं ण होंति अविदु ववहार-पडिक्कमणं भावपुव्वं कुणंतो, तस्स मज्झेण जो विसुज्झ-परिणामो होदि, तेण विसुज्झ-परिणामेण एकग्गदाए अप्पलिणदा होदि तहेव णिच्छय पडिक्कमणं उब्भवदि। जत्थ पडिक्कमण-अपडिक्कमण-भावेव अभावो होदि, तत्थ होइ णिच्छय पडिक्कमणस्स भूमिगा। णिच्छय पडिक्कमणं वीदराग-

---

साधक प्रतिक्रमण से शून्य होकर। ऐसा साधक व्यवहार और निश्चय दोनों प्रतिक्रमण से परांगमुख हो जाता है, क्योंकि व्यवहार को छोड़कर निश्चय नहीं होता, बल्कि निश्चय प्रतिक्रमण में जब प्रवेश हो जाता है, व्यवहार स्वयमेव छूट जाता है। निश्चय कहने वालों को निश्चय प्रतिक्रमण नहीं होता, अपितु जो व्यवहार प्रतिक्रमण को भाव पूर्वक करता है, उसके माध्यम से जो विशुद्ध परिणाम होते हैं, और उन विशुद्ध परिणामों से जो एकाग्रता जाग्रत होकर आत्मलीनता बनती है, उसी से निश्चय प्रतिक्रमण की भूमिका। निश्चय प्रतिक्रमण वीतराग चारित्र के अविनाभावी होता है, बिना वीतराग चारित्र के निश्चय प्रतिक्रमण संभव नहीं। लेकिन ध्यान रखना, केवल पाठ करना प्रतिक्रमण नहीं है कि पुस्तक उठाकर तीनों कालों में पाठ कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरित्तेणं सह होदि वीदराग-चरित्तेणं विणा णिच्छय पडिक्कमण-असंभवो झाएहि! मेत्त पाडं अपडिक्कमणं, पुत्थगेण ति-कालम्हि पडेसि, पडिक्कमणं जादं। ण, सुमरणं, पाढं सुणणं मेत्तं अपडिक्कमणं, तं, अंतस-भावाओ होदि। दोसा पडि जुगुच्छा उप्पज्जियव्वं व पुण चुक्कं ण होहि एवं भूमिगाए णाम खु पडिक्कमणं। पडिक्कमणं अण्णाणत्तं-पमादाओ उप्पज्जिय-दोसाणं होदि। अदीद-वत्तमाणे रागदोसेहिं वयेसु अइक्कमो, वदिक्कमो, अइयारो, अणायारो जाद-दोसं पडिक्कमण-सरिदाए अवगाहणं अइ-अणिवारिअं'' पडिक्कमणं तं मेत्तं जास वद-दूसणं पच्छालंते, आदसच्छं होदि'' इमा कीला णो जाणं, तुमं बुद्धिपुव्वं

लिया हो गया प्रतिक्रमण। नहीं, रट लेना, पढ़ लेना, सुन लेना मात्र प्रतिक्रमण नहीं है। वह तो आंतरिक भावों से होता है। दोषों के प्रति ग्लानि उत्पन्न होना चाहिए। एवं पुनः गलती न हो इस प्रकार की भूमिका का नाम ही वास्तविक प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण अज्ञानता-प्रमाद से उत्पन्न हुए दोषों का होता है। अतीत एवं वर्तमान में राग-द्वेषादि से व्रतों में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार दोष उत्पन्न होने पर प्रतिक्रमण की सरिता में डुबकी लगाना परम अनिवार्य है। ''प्रतिक्रमण वह मंत्र है- जिससे व्रत के दूषण धुलते हैं एवं आत्मा स्वच्छ होती है।'' लेकिन इस खेल मत समझ लेना कि आप जानकर गलती करते जायें और कहें कि मैंने प्रतिक्रमण कर लिया अथवा गलती पर गलती करते जाएं। जानकारी भी है कि यह क्रिया साधु पद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोसाणं करंते व कहेसि अहं पडिक्कमिदो अहवा चुक्कं पच्छा चुक्कं करंतो। णाणं पि, इमा किरिआ साहुत्त-विरुज्झं, पुणरवि तारिसिं चुक्कं कुणंतो व कहेदि को-वत्ता ण आगमे पडिक्कमण-विहाणं पडिक्कमणं करिस्यामि। इणं ण सच्चं पडिक्कमणं अविदु आगमादो आप्पदो मायाछलं। पडिक्कमणेण सह पच्चक्खा णस्स वि विहाणं अत्थि।

हे विण्णआद! "पच्चक्खाणपुव्वं किदं पडिक्कमणेव सच्चं पडिक्कमणं।" पडिक्कमणस्स पच्छा चागो आवस्यगो, जहेव आगमे पडिक्कमणं वण्णिदं तहेव कायव्वं/इमो हासो व मणमाणी णा जाण, अण्हा दिडकम्मादो बंधेस्ससि। कत्तोवि जेट्ठो पहावणा

के योग्य नहीं है, फिर भी वैसी गलती करें और कहें कि कोई बात नहीं आगममें प्रतिक्रमण का विधान है, अतः प्रतिक्रमण कर लूंगा। यह सच्चा प्रतिक्रमण नहीं अपितु एक प्रकार का आगम के साथ एवं स्वयं के साथ छल है। क्योंकि प्रतिक्रमण के साथ प्रत्याख्यान का भी विधान है।

हे विज्ञात्मन्! "प्रत्याख्यान् पूर्वक किया गया प्रतिक्रमण ही वास्तविक प्रतिक्रमण है।" प्रतिक्रमण के उपरांत त्याग होना अनिवार्य है। जैसा आगम में प्रतिक्रमण का वर्णन है, वैसा ही करना चाहिए। इसे मजाक या मनमानी नहीं बनाना, अन्यथा जटिल कर्म-बंध होगा। चाहे कितना भी बड़ा प्रभावना का कार्य क्यों न हो, अन्य प्रभावना जब होगी तब होगी लेकिन स्वयं की क्रिया को छोड़ दिया तो आपने निज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कज्जो होदि, अण्ण-पहावणा जाव होदि ताव होदि, परं णिय-किरियं मुच्चित्ता तुमं णिय अप्पपहावणं दु पुव्वं किदं। मग्ग-पहावणं णिसेहं ण करामि, किण्णु अप्प-पहावणं चयित्ता मग्गपहावणाए पओजणं किं? अप्पपहावणाए सह मग्गपहावणा एव सुपहावणा। अपुण्णं व दण्डगं चयित्ता पडिक्कमणं ण संमं, एरिसं सेच्छाचरणं एव अत्थि। अम्हाणं चरिया मूलाचारेण हो दव्वा, णवि अम्हणुसारेणं मूलायारो। अहं सयमेव मूलायारो इमो ण सत्थे। वत्तमाणे कस्सवि मूलाचारो ण कहेइ, मूलायाराणुगद चरियापालणं कह-सक्केदि, मूलायाराणुसारेण अम्हाण चरिया जाएज्ज, जओ सयमेव मूलायारो तित्थयरभगवेदवाहु हुंति मूलायार-गंथकत्ता वि सयं मूलायारो णो।

अप्रभावना तो पहले ही कर ली। मार्ग-प्रभावना का निषेध नहीं कर रहा हूँ किंतु आत्म-प्रभावना को छोड़कर मार्ग प्रभावना का क्या औचित्य? आत्म-प्रभावना के साथ की गयी मार्ग-प्रभावना ही सच्ची प्रभावना है। अधूरा या दण्डक छोड़कर प्रतिक्रमण करना भी उचित नहीं है, ऐसा करना मनमानी नहीं तो और क्या? हमारी चर्या मूलाचार के अनुसार होनि चाहिए, न कि हमारे अनुसार मूलाचार। अथवा यह भी आगम से घटित नहीं होता कि मैं स्वयं में मूलाचार हूँ। वर्तमान में किसी को भी मूलाचार नहीं कहा जा सकता, मूलाचार जैसी चर्या का पालन कहा जा सकता है वह मूलाचार के अनुसार हमारी चर्या हो सकती है, क्योंकि स्वयं में मूलाचार तीर्थंकर भगवान ही होते हैं। मूलाचार ग्रंथ के सृजक भी स्वयं मूलाचार नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलायारस्स अत्थो मूल + अ + आयारिय = मूलायारो मूलायारकत्ता, वीरभगवं। वत्तमाणस्स वीर-वायाए खु आयारंगोवएसो जदो। हे जिणकप्पी-मुणि चरियं किंचि मूलायारो मण्णेज्जा, किण्णु वत्तमाण-साहगादो मज्झ पत्थणा, ते णिय चरियं सयं मूलायारो ण भणेहि, अण्णहा पइ साहगाणं अबंधो मूलायारो होज्जदि। पुण तित्थेस-वीर-वायाए किं होसि? तुमं सच्चं वि णो अंगीकोज्जा, जओ तुमं सयमेव मूलायारो अहवा तुज्झ मूलायारो णिखेक्खो, अओ तुमं जो रोचेदि सो सव्वो मूलायचारो होज्जदि। एग्गो उम्मगयारी साहगो वि णिय मूलायारं कहेज्जदि पुण तास असच्चमग्गं पि माणियव्वं। अओ कुंदकुंद आइरियस्स मूलायारो

मूलाचार का तात्पर्य मूल + अ + आचार्य = मूलाचार यानि मूल आचार के कर्त्ता, जो कि वीर भगवान हैं। वर्तमान के वीर की वाणी में ही आचारांग का उपदेश हुआ था। हाँ जिनकल्पी मुनि की चर्या को कदाचित् मूलाचार स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु वर्तमान साधकों से मेरी प्रार्थना है कि वे अपनी चर्या को स्वयं मूलाचार न कहें, नहीं तो प्रत्येक साधक का स्वतंत्र मूलाचार हो जाएगा। फिर तीर्थेश वीर की वाणी का क्या होगा? फिर आपको सत्य भी नहीं स्वीकारा जा सकता, क्योंकि आप स्वयं मूलाचार हैं अथवा आपका मूलाचार स्वतंत्र है तो फिर आपको जैसा अच्छा लगता है वह सब मूलाचार हो जाएगा। एक उन्मार्गी मृगाचारी साधक भी अपना मूलाचार कहेगा फिर उसके असत्य मार्ग को भी स्वीकारना होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अण्ण-आइरियस्स आयारसारो, चारित्त सारो,पहुदि-गंथेव पमाणिदो, जा किदी अस्सपरंपराए संपज्जिदा। तुमए सह णवि पच्चक्खणाणं व अम्हवि ण पच्चक्ख-णाणी- पुण तुमं कस्स मूलायारो कहामि? ते साहगाणं पि मोणं ण गहिदव्वं, जेण भत्तगणेहिं मूलायारो भणमाणा। ते साधगाणं मोणं चयित्ता तस्स भंजणं कादव्वं व अंध-भत्ताणि बुज्झावेदव्वं, अहं मूलायारो णो। मूलायाराणुक्कमेण चरियाए उज्जमामि। जओ मूलायारो तित्थयर भगवदो जिणकप्पी उवेक्खा-संजमी एव होदि। एरिसो-कहणाओ णिय संमाणेव बुड्ढदि व अस्सरक्खा होस्सदि अण्णहा अम्हाण मोणेण अस्सणासेव होज्जदि, जओ वत्तमाण सामत्थाणुसारेणेव

अतः कुंदकुंदाचार्य का मूलाचार या अन्य आचार्य का आचारसार, चारित्रसार आदि ग्रंथ ही प्रमाणित हैं या जो कृति आर्ष परंपरा से सृजित है। आपके पास प्रत्यक्ष ज्ञान है नहीं, और न ही हम प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं, तो फिर आपको कैसे मूलाचार कहूँ? उन साधकों को भी मौन नहीं रहना चाहिए, जिनके भक्तगणों द्वारा मूलाचार कहा जा रहा है। उन्हें मौन तोड़कर उसका खंडन करना चाहिए एवं अंधभक्तों को समझना चाहिए कि मैं मूलाचार नहीं हूँ। मूलाचार के अनुसार चलने का प्रयास कर रहा हूँ। क्योंकि मूलाचार तो तीर्थंकर भगवान-जिनकल्पी उपेक्षा संयमी ही है। ऐसा कहने से स्वयं का गौरव ही बढ़ेगा एवं आर्ष की रक्षा होगी, अन्यथा हमारे मौन से आर्ष घात ही होगा, क्योंकि वर्तमान संहनन के अनुसार ही चर्या का पालन संभव हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरियापालणं संभवं होदि। संपडिए सामत्थाणुयारेण थिविरकप्पी अवहिदसंजमीए पडिक्कमणं दण्डकेण सहेव कादव्वं। पडिक्कमणं अंतसेण होदि। पहू पाये णियदो-णिय दोसाणं पगडणं अहं सदोसो। कहणं को वि सहज-कज्जो ण। धण्णा ते णिग्गंथ-दिगंवर-समणा, जे दिणे बेहुत्तं णो अंविदु तिहुत्तं णिय दोसाणं पडिक्कमंते। कओ णिम्मल परिणामो होहिंति तस्स जीवस्स, जं सम्मरूवेण दियंबरत्तं गहियं। जिणचरिया सेच्छाचार-णिरोहणी। दियंबर-परंपराए कस्सवि ण। पमादट्ठाणं। जई जीवणे अट्ठवीस-मूलगुणाणं णिद्दोस-पालणं होयव्वं। जदि पमादेण को दोसो होदि ताव तुरियं पडिक्कमणं पच्चक्खाणं कुव्वेंति।

सकता है। सम्प्रति में शक्ति अनुसार स्थविर कल्प अपहृत संयमी को प्रतिक्रमण दण्डक सहित ही करना चाहिए। प्रतिक्रमण अंदर से किया जाता है। परमात्मा के चरणों में अपने दोषों को प्रकट करना कि मैं दोषी हूँ। निज दोषों को प्रकट करना कोई सहज कार्य नहीं है। धन्य है वे निर्ग्रंथ-दिगम्बर-श्रमण, जो दिन में एकबार, दो बार नहीं अपितु तीन बार अपने दोषों का प्रतिक्रमाण करते हैं। कितने निर्मल परिणाम होंगे उस जीव के, जिसने सम्यक् मायने में अर्थात् सही अर्थों में दिगम्बरत्व स्वीकारा है। जिनचर्या-स्वेच्छाचार की विरोधक है। दिगम्बर आम्नाय में किसी में किसी भी प्रकार की सिथिलता को स्थान नहीं। यतियों के जीवन में 28 मूलगुणों का निर्दोष पालन होना चाहिए। यदि प्रमादवश कोई दोष उत्पन्न होता है तो प्रतिक्रमण,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहगा, णिम्मल-भावेहि णिय-दोसाणं पहू व सगुरू पाये पच्चक्खे परोक्खे व, ससक्खिपुव्वं व पंचमरमेट्ठि- सच्छिपुव्वं णिवेदंते। इणमेव साहुत्तं व एरिसं साहुत्तं वीदराग-समणेहिं सहेव दिक्खंते। ते जाव णिय-तप्परा हुंति ताव पड़ि दोसाणं आलोयणा, णिददं-गरिहं कुव्वंति। हे पहु! हं पावी, दुरप्पणो, जडधिया, मायावीणा, लोही। रागदोस-मलीमसेण मणसा दुक्कंमणा जे भवा, हे तिल्लोगाधिवई जिणिंद! तुम्हाण पादमूले, णद्दिदा-गारहापुव्वं पच्चकखामि। सया सदपथे वट्टिस्सामि। हे जिणिंद! तुमं मज्झ अंतसे एरिसं सामत्थं देहि, पुण कस्स वि कुमग्गे ण गच्छामु। हे णाह! तुमं पसादेणेव अहं णिम्मलो भवामि। मज्झ चुक्काइं सहाविगं

प्रत्याख्यान करते हैं।

साधक निर्मल भाव से अपने दोषों को प्रभु या गुरु के चरणों में प्रत्यक्ष-परोक्ष, स्वसाक्षी या पंचपरमेष्ठी-साक्षी, पूर्वक निवेदन करते हैं। यही सज्जनता है और ऐसा साधुता, वीतरागता श्रमणों के पास ही दिखती है। वे जब स्वयं में डूबते हैं तो एक-एक दोषों की आलोचना, निंदा, गर्हा करते हैं कि हे प्रभु! मैं पापी, दुरात्मा, जड़बुद्धि, मायावी लोभी हूँ, राग-द्वेष से मलीन मन से मेरे द्वारा जो दुष्कर्म निर्मित हुए है, हे त्रैलेक्याधिपते जिनेन्द्र! आपके श्री पाद मूल में निंदा गर्हा पूर्वक छोड़ता हूँ। हमेशा सत् पथ पर वर्तन करूँगा। हे जिनेन्द्र! आप मेरे अन्तस् में ऐसी क्षमता भर दें कि, पुनः किसी कुमार्ग में गमन न करूँ। हे नाथ! आपके प्रसाद से ही मैं पवित्र हो सकता हूँ। मुझसे गल्तियाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हदमत्थावत्थाए। पहु! मज्झ णाणत्तो चुक्काइं लुक्कंति, ण तुज्झ णिम्मले विसदे केवलणाणे। हे विहु! जदि मए चुक्काइं ण होंति, तो हं संसारी मूड्ढो, अण्णाणी, छदमत्थो किं भवामि? पुण अहं तुह पाएसु णिय चुक्काणं पदंसणं किं दिण्णं? हे जगदिस! हं तुमेव सरणगाही, एगहुत्तं खमावस्सं कुणसु। एवं णिय दोसाणं, सव्व विविकदीणं णिवेदित्ता णिय-वयेसु पुण उवट्ठीदो होंते। ते तवोधणेव पडिक्कमण-फलं पत्तेंति। किण्णु जो ण णियलिणो, अत्थाह जे णिय दोसेव ण दिक्खदि संसारस्स रागरंगे वा णियरागरंजिदो ण ते। एरिसो साहगो अकत्तव्वं-कहेदि। जस्स णो समायस्स चिंता व णेव देस-रट्ठस्स, सो खलु सच्चो साहगो, जो

होना स्वाभाविक हैं छद्मस्थ अवस्था में। प्रभु! मेरे ज्ञान में गल्तियाँ छुप सकती है, लेकिन आपके निर्मल विशद् केवलज्ञान में नहीं। हे विभु! यदि मेरे से गल्तियाँ न होती तो फिर मैं संसारी, मूढ़, अल्पज्ञ छद्मस्थ क्यों कहलाता? फिर मैं आपके श्री चरणों में अपनी भूलों का विज्ञापन क्यों देता? हे जगदीश! मैं आपकी ही शरणागत हूँ, एक बार क्षमा अवश्य कर देना। इस प्रकार निज दोषों का, सारी विकृतियों का निवेदन कर अपने व्रतों में पुनः उपस्थित हो जाते हैं, वे तपोधन ही प्रतिक्रमण के फल को पाते हैं। किंतु जो अपने आप में लीन नहीं हैं अर्थात् जिन्हें अपने दोष ही नहीं दिखते एवं दुनिया के रागरंग में या स्वराग में रंगे हैं वे नहीं। ऐसे साधक कर्तव्यविहीन कहलाते हैं। जिनको न समाज की चिंता है और न ही देश-राष्ट्र की, सच्चा साधक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिय दोसाणं पलाइत्ता चुक्काइं छुड्डावंतो व गुणाणं गहिदूण सुट्ठ-सज्जणाओ परमोत्तमस्स भावण रक्खेदि। जओ साहगस्स इणमेव वरलक्खो त्थि?

"जयदु णमोत्थु सासणं"

वही है, जो अपने दोषों को देख एक-एक गल्तियों को छोड़ता जाता है और सद्गुणों को प्राप्त कर सज्जनोत्तम से परमोत्तम बनने की परम भावना रखता है। क्योंकि साधक का यही श्रेष्ठ लक्ष्य होता है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्पोक्कस्स-आयामो पच्चक्खाणं

पण्णप्पण! पडिक्कमणं पच्छा पच्चक्खाणकवच-गहणं अदि-आवस्सगो अओ आवस्सग-घम्मस्स अग्गे चरणम्हि "पच्चक्खाणं" भण्णिदं। पच्चक्खाणेणं विणा अवसेस कत्तव्वं अपुण्णं। पच्चक्खाणं मुंचणं। किण्णु कस्स? गुणाणं-अवगुणाणं वा। अच्छाइणं-बुराइणं वा? चिंत। वागो गुणाणं ण, अवगुणाणं, दोसाणं, चुक्कं, दोसाणं होंति, दोसाणं चागो पच्चक्खाणं, पुव्व किददोसाणं पडिक्कमणं, व अपुव्वकिदं दोसाओ सुरक्खत्थं पच्चक्खाणं सोवाणगमणं अइ-अणिवारिअं। इणं महद कत्तव्वं। मणवयणकायेण व किद-कारिद-अणुमोयणाए अत्थं णव

आत्मोर्ष काआयामः प्रत्याख्यान

हे विज्ञात्मन्! प्रतिक्रमण के पश्चात प्रत्याख्यान का कवच पहिनना अति आवश्यक है। इसीलिए आवश्यक धर्म के अगले चरण में "प्रत्याख्यान" को कहा है, क्योंकि प्रत्याख्यान बिना शेष कर्त्तव्य अधूरे हैं। प्रत्याख्यान का तात्पर्य-त्याग। लेकिन किसका? गुणों का या अवगुणों का। अच्छाईयों का या बुराईयों का? तो ध्यान रखना, त्याग गुणों का नहीं, अवगुणों का, बुराईयों, गल्तियों का, दोषों का किया जाता है, अर्थात् दोषों का त्याग करना प्रत्याख्यान कहलाता है, यानि पूर्वकृत दोषों का प्रतिक्रमण कर, आगत दोषों से बचने हेतु प्रत्याख्यान की सीढ़ी पर (कदम-रखना) परम-अनिवार्य है। यह एक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है। मन, वचन काय और कृत कारित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोडिओ किदाणं दोसाणं चागेव सच्चचागो। कयावि संजद-अंतसे असंजमभावो पवेसेदि, दु सच्चसाहगाणं तुरियं पडिक्कमण-पुव्वं पच्चक्खियव्वं। जइ कोवि असंजमरूप-वयणाणं उवओगो-जदो, सो झट्टेव चागणीयं। व तणूए वि कोकिरिया अपहावगा, असंजमिदा होदि, जं पि, मुच्चणीयं। सं खु णाणं सच्चणाणं जम्हि अवगुणाणं पच्चक्खाणस्स भूमिगा होदि।आस-परंपराए पच्चक्खाणं सडावस्सगे मण्णिदं, सज्झायतवे गहिदो। जहेव साहगं पइक्खणे पहू-णामसुमरणीयं तहेव पच्चक्खाणं कायव्वं।

हे साहगो! जस्स खणे तुं एगट्ठाणं मुच्चित्ता दुअट्ठाणे चिट्ठंते तव पुव्वट्ठण-चागो अणिवरिओ। तुह भावो जं पदत्थ-

---

अनुमोदना से अर्थात् नव कोटि से किया गया दोषों का परित्याग ही सच्चा त्याग कहलाता है। कदाचित् साधक के अंदर असंयम रूप भाव प्रस्फुटित हो जाता है, तो सच्चे साधक को तत्काल प्रतिक्रमण पूर्वक प्रत्याख्यान कर लेना चाहिए। यदि कोई असंयम रूप वचनों का उपयोग हो गया हो तो शीघ्र ही उन वचनों को त्याग देना चाहिए। या शरीर से कोई क्रिया अप्रभावक, असंयमित हो, तो उसे भी शीघ्र छोड़ देना चाहिए। वही ज्ञान सच्चा ज्ञान कहलाता है, जिसके माध्यम से अवगुणों के प्रत्याख्यान की भूमिका अदा हो। आर्ष परंपरा में प्रत्याख्यान को षट् आवश्यक में स्वीकारा है, जबकि स्वाध्याय को तपों में ग्रहण किया है। जैसे- साधक को प्रतिक्षण प्रभु का नाम पाठ करते रहना चाहिए, उसी प्रकार से प्रतिपल प्रत्याख्यान करना चाहिए।

हे साधक! जिस क्षण तू एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थन पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गहणत्थं पुण-पुण हुंति णं णाणि! तं पदत्थं चागहि, जं अईव पिअं, त मेव तुमं सव्व पुव्वे चागेहि। जस्स तुमं ण सेवेसि, ण पत्तेसि, तं वत्थुं वि पच्चक्खाणीयं। जम्हि जीवघादं, अभच्छं, अणुवसेव्वं आइ संभवदि दु क़रूणावंता साहगा, इंदिय-लुद्धणासत्थं अहिंसा धम्मरक्खणत्थं चागेव सेयसो, जओ पच्चक्खाणेव अप्पोक्कस्स-अप्पोट्ठाणस्स उक्किट्ठाणो, जो भवाण्णवत्तो तिरावेहि परम-सहायगो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

बैठता है तो पूर्व स्थान का परित्याग करना अनिवार्य है, तेरे भाव जिस पदार्थ के ग्रहण करने बार-बार हो रहे हैं तो भो ज्ञानी! उस पदार्थ का त्याग कर दे; जो ज्यादा प्रिय हो, उसे ही तू सबसे पहले त्याग कर। एवं जिसका सेवन न तू करता है और न तुझे वो पदार्थ मिल ही सकता है ऐसे पदार्थ का भी प्रत्याख्यान होना चाहिए। जिसमें जीव विघात, अभक्ष्य, अनुपसेव्य आदि की संभावना हो, तो दयालु साधकों को इंद्रिय लोलुपता को नष्ट करने के लिए एवं अहिंसा धर्म की रक्षा हेतु त्याग कर देना श्रेयस्कर है, क्योंकि प्रत्याख्यान ही आत्मोत्कर्ष, आत्मोत्थान का चरमोत्कर्ष बिन्दु है, जो भव सिंधु से तिरा देने में परम सहायक है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काउस्सगो त्थि उवाहिचागो

भो णाणघणअप्पणो! काउस्सगो तुज्झ उण्णदीए पुव्व-भूमिगा। आउस्सगाहावे तुज्झ विआसो असंभवो, जओ काउस्सगेणं विणा साधगो भारंवंतो होदि जस्स पडणसहावो, व पडहि भवण्णवे। अओ काउस्सगो तरणत्थं इणमेव णामो वोसग्गो। णवर णवबारं णमोक्कारपाढं काउस्सग्गो-सिद्धीए भण्णिदो-(जो जिणिंदवाया दिव्व-जुणीए, गुरु-परंपराए संपज्जिदा काउस्सग्गविही।) सरीरत्तो ममत्तचागो अत्थं देहंपि उस्सग्गो काउस्सग्गो। अणुवं मग्गो। "कायोत्सर्गादिकरणं व्युत्सर्ग"

कायोत्सर्ग यानि उपाधि की तिलांजलि

भो ज्ञानघनात्मन्! कायोत्सर्ग की भूमिका तेरी निजोन्नति की आद्य भूमिका है। कायोत्सर्ग के अभाव में तेरा विकास संभव नहीं, क्योंकि कायोत्सर्ग के बिना साधक वजनदार होता जाएगा, जिससे पतित होना स्वाभाविक है, और डूब जाएगा भव सिंधु में। अतः कायोत्सर्ग उभरने का अनुपम मार्ग है। "कायोत्सर्गादि करणं व्युतसर्गः" आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी ने महान ग्रंथराज सर्वार्थसिद्धि में बतलाया है (जो कि जिनेन्द्र दवे की दिव्य ध्वनि से, गुरु परंपरा से प्राप्त हुयी कायोत्सर्ग की विधि) शरीरादि से ममत्व का त्याग यानि कि शरीर का भी उत्सर्ग करना कायोत्सर्ग है। इसी का नाम व्युत्सर्ग है। मात्र नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ लेना कायोत्सर्ग नहीं है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आइरिय पुज्जवादेण सव्वत्थ अविदु पाडेण सह देहं पडि रागबोही वि चागणीया। वोसग्गो आइरिएहिं बाहुकोडिए रक्खिदा। वोस्सग्गतवं पि अत्थि, आवस्सग्गेसु कत्तव्वेसु अंति-कत्तव्वंपि व पायच्छिद-भेयेसु एगं भेयंपि। वोस्सग्गस्स उक्किट्ठयालो बारसमासो (एग-वरिसो) व जहण्ण अंतरमुहुत्तं व मज्झमेण अणेगविहं कालं जाणिदव्वं। तच्चत्थ-सूत्ते वोस्सग्गस्स दो भेयं किदं- बहिरब्भंतरं वा उवाहि चागो अत्थं अप्पादो भिण्ण-पदात्थाइं बहिउवाही भण्णिदा। जहा अण्णं, धण्णं, सिस्स-सिस्साओहा व अब्भंतर उवाहीए तं पडि रागं, कोहाइ वियारं, इमस्स चागेव

अपितु पढ़ने के साथ-साथ देह के प्रति राग बुद्धि का त्याग होना चाहिए। "व्युत्सर्ग" को आचार्यों ने अनेक कोटियों में रखा है। व्युत्सर्ग तप भी है, षटावश्यक कर्तव्यों में अन्तिम कर्त्तव्य भी था और प्रायश्चित के भेदों में एक भेद भी। व्युत्कर्ष का उत्कृष्ट काल 12 माह (1 वर्ष) एवं जघन्य अंतर्मुहूर्त व मध्यम अनेक प्रकार का काल समझना चाहिए। तत्वार्थ सूत्र जी में व्युत्सर्ग के दो भेद किए हैं- बाह्य और अभ्यंतर उपाधि का त्याग यानि आत्मा से भिन्न पदार्थों को बाहय उपधि का त्याग यानि आत्मा से भिन्न पदार्थों को बाह्य उपधि कहा है, जैसे अन्न, धान्यादि, शिष्य शिष्याओं का समूह और अभ्यंतर उपाधि में उनके प्रति राग, क्रोधादि विकार, इनका त्याग ही सच्चा व्युत्सर्ग-कायोत्सर्ग है।" आत्मीय संकल्प त्यागो व्युत्सर्गः" ममकार रूप संकल्प विकल्प का त्याग ही व्युत्सर्ग तप है। यदि आँखों को बंदकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सच्चवोस्यग्गो-काउस्सग्गो। "आत्मीय संकल्प त्यागो व्युत्सर्गाः" ममगाररूवो संकप्प-लियप्पचागेव विउस्सग्गो। जइ अच्छाइं मुद्दिदाउं उडिठदो चिरकाले झाणं कुणंतो व अंतसे उवविसंतो, माणसिग संकप्प-वियप्पेसु जीवंतो ताव तुज्झ इदो ण सच्चविउस्सग्गो। अंदर-बाहिरेहिं उट्ठिदो सव्वसंकप्प-वियप्पेहि विरामगहिउं णिय अप्प विशुद्धीए हेदू काउस्सग्गमेव जदत्थ-कत्तव्वो। अओ भो जोइ! कउस्सग्ग-मग्गे धावेहि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

खड़े होकर घंटो ध्यान करते हो और अंदर से बैठे हो, मानसिक संकल्प-विकल्पों में जी रहे हो, तो तेरा यह सच्चा व्युत्सर्ग नहीं। अंदर-बाहर से खड़े होकर सभी प्रकार के संकल्प विकल्पों से विराम लेकर निजात्म-विशुद्धि हेतु कायोत्सर्ग करना ही वास्तविक कर्तव्य है। अतः हे योगी! कायोत्सर्ग की पटरी पर दौड़ लगा।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सज्झाओ जीवणस्स चरम-णिही

हे हंसप्पण! कुण सज्झायं। णिय-अज्झणेव जीवणस्स सुसारो, जइ तेणं सह सज्झाओ तव सव्वं। सज्झाएव जीवणस्स अंतिमा-णिही। इमा णिही-अभावे साहुस्स णं कोवि मूल्लं। साहुणा सह ण धणस्स मुल्लं जइ होदि सो ण दो वराडस्स वि व सावगेण सह धण्णं णो सो ण दोवराडस्स। साहू-समीवे धणस्स ण महत्तं, सज्झायधणस्स महत्तं होदि। सव्वस्स तुज्झ सह ण-अज्झणो, इणमेव पुज्जकरावेदि। परमत्थ दिट्ठीए व ववहार दिट्ठीए पेक्ख। णयरजणाइं तुज्झ-परिचए इणं ण पुच्छेदि, महाराय! तुह कित्तिआ

स्वाध्याय जीवन की परमोत्कृष्ट निधि

हे हंसात्मन्! कर तू स्वाध्याय। स्व का अध्ययन करना ही जीवन का परम-सार है। यदि तेरे पास स्वाध्याय है, तो सब-कुछ है। स्वाध्याय ही जीवन की आंतरिक निधि है। इस निधि के अभाव में साधु की कोई कीमत नहीं। साधु के पास धन की कीमत नहीं है। यदि है तो वह दो कौड़ी का नहीं और श्रावक के पास धन नहीं तो वह दो कौड़ी का नहीं। साधु के पास धन की महत्ता नहीं, स्वाध्याय रूपी धन की महत्ता होती है। सर्वस्व तेरा गहन अध्ययन है, यही पूज्य बनाता है। क्योंकि चाहे परमार्थ दृष्टि से देख या चाहे लौकिक दृष्टि से। जानमानस तेरे परिचय में ये नहीं पूछना चाहता है कि महाराज श्री! आपके कितने भाई हैं कितनी बहिनें हैं, आप कैसे थे? आपका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंधू-बहिणी वा तुहं कस्स आसि? तुज्झ परिवारो उच्च-मज्झ जहण्ण व कस्स सेणिए आसि अहं। जदि पुच्छदि ताव सो अण्णाणी, बोहिविहिणो, साहू सयमेव इणं सव्वं भासेदि सो साहगो णो सच्च साहगो। जओ पुव्वबोहिं अहुणा णो, देहं दु साहू जादो मणसाहू णो जादो। देहमणं तवाहावेह साहूरूवमेव सच्चो साहगस्स विसेयत्तं। सो चिय तस्स परिचायगो। बोहीवंतो सावगो इणमेव पुच्छेदि

हे मुणिवर! किं गंथ-पढण-पाढणं वायणं, अणुचिंतणं वा कुणंतो? तुमं कस्स कस्स पारायणं जादं, किं किं व होस्ससि? जइ

परिवार सम्पन्न है या नहीं, साधु स्वयं बोलता है तो भी वह सच्चा साधक नहीं है। क्योंकि पूर्व-स्मृति अभी तक नहीं गयी, यानि शरीर तो साधु बन गया लेकिन अभी मन साधु नहीं बना, मन अभी असाधु रूप ही है। तन-मन दोनों साधु रूप होना ही, सच्चे साधक की विशेषता है। वह उसका परिचायक है। समझदार श्रावक यही पूछता है कि हे गुरुदेव! किस ग्रंथराज का पठन-पाठन वाचन, चिंतवन चल रहा है? किस-किस का परायण हो चुका हे, एवं क्या-क्या और आगे चलना है। यदि आगम ग्रंथों की आवश्यकता है तो मैं शक्तिशः उपलब्ध कराऊँगा। ये समीचीन चर्चायें श्रावक-साधक के बीच होनी चाहिए क्योंकि श्रावक का साधन के प्रति यही सच्चा दायित्व एवं वात्सल्य है। देश में क्या हो रहा है। कौन सी पार्टी विजय को प्राप्त हुई। भो ज्ञानी! तुझे क्या लेना देना। न तुझे किसी से कुछ लेना है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगमगंथाणं वंछा होदि तु हं सत्तीणुसारेणंदामि। इमा सम्मचरिचा सावगसाहू मज्झे होयव्वं। सावग-साहुं पडि इणमेव सच्च-दायित्तं-वच्छल्लं वा। देसे किं भवंतो, को दलं जयगहियं भो णाणि! तुज्झ किं पयोजण। तुज्झ अप्पहिदं होयव्वं अण्णेण किंचि वि पयोजणं णो। णियप्प ठिदं साइत्तं बहु-णाणधणं अज्जए जत्तो हि मे परिचयो होदव्वो पुण्णो गारवत्तो ण दु णिय-परिचये तुह लज्जेहिं, अहवा अणावस्सग- परिचयं देसि, "मज़्झ पढणत्थं अहिलासा असि णं। ण णिमित्तं गुरुं वि ण पढावेहि साहणं पि णो किदं। असार-परिचयं दाउण तुमं गुरुमहाराय वि। णिएण सह किदो हं व मज्झ गुरुस्स

न कुछ देना, अपने आप में निमग्न रहना है। स्व में निमगन रहना ही साधक का परम कर्तव्य है एवं यही है, सच्ची साधुता। ज्ञान धन का इतना अर्जन कर लो, जिससे पूछने वाले को गौरव से अपना परिचय दे सको, नहीं तो स्व-परिचय देने में तुझे शर्म आयेगी अथवा जिस परिचय को देने की आवश्यकता नहीं थी, उस परिचय को देना शुरू कर देगा, कि "मेरी पढ़ने की तीव्र आकांक्षा थी, पर ऐसे निमित्त नहीं मिले। गुरु महाराज ने पढ़ाया नहीं और साधना भी नहीं जुटाये। यानि व्यर्थ का परिचय देकर तूने गुरु महाराज को अपने साथ में कर लिया कि मैं ही नहीं बल्कि हमारे गुरुदेव भी हमारी श्रेणी में हैं। कम से कम गुरुदेव को तू अपनी श्रेणी में मत लो। ज्ञानाभ्यास गुरु के निमित्त से एवं स्व-पुरुषार्थ से ही होता हे। स्व-पुरुषार्थ तेरे को जाग्रत करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एगाए सेणीए अत्थि। गुरुं तुमं णिय सेणीए मा संगहेसि। णाणब्भासं गुरुणिमित्ते व सउज्जमेणेव होदि सउज्जमं तुमेव जग्गिदव्वं। सये ण जग्गिदी गुरुमत्थे दोसं "णच्चणं विणा अंगण-तिरियो" जधा सुत्ती सिद्धए।

सयं आलस्स-पमादेहि अज्झयणं ण किदं व गुरुं दोसदिण्णं एसो महाचुक्को। णाणिस्स काम-कोहरूव-भावो विसतुल्लो। कामी-कोही जणा सरस्सइं किं अराहएज्जा। अहं भावोवि णाणं विणासेदि। जइ सु-णाणवंच्छा दु इणं विआरी-भावा चायव्वं। णाणं हु विणय-संपदा तं साहगं हु णाणं होदि जो अहंभावं ण

चाहिए। स्वयं में उत्सुकता न हो और गुरु पर दोष रखना ये "नाच न आवे आंगन टेढ़ा" जैसी कहावत सिद्ध हुई।

स्वयं आलस्य-प्रमाद के कारण अध्ययन न करो और गुरु को दोषी ठहराओ, ये तो महाभूल है। ज्ञानी के लिए काम-क्रोध रूप भाव जहर है। कामी-क्रोधी पुरुष सरस्वती की आराधना नहीं कर सकता है। अहंभाव भी ज्ञान का विनाश करा देता है। यदि सच्चा ज्ञानी बनना है, तो इन विकारी भावों का परित्याग करना होगा, क्योंकि ज्ञान विनयशील की संपत्ति है। उस साधक के पास ही ज्ञान सुरक्षित रह सकता है, जो अहं नहीं करता। क्योंकि बादल मेघों से आच्छादित हों तो, वे भी नीचे आ जाते हैं। वृक्ष फलित होते ही झुक जाते हैं। इसीप्रकार विवेकी, ज्ञानी अपने आप में नम्र स्वभावी होता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुणदि। जधा णहं मेहेहिं आव ण्णिदं तं, तेवि णिच्चं आणिओ। फलमाणा तरुणो णम्मिभूदा होंति तधा विवेगाणाणी किं सयमेव णम्मसहावी हुंति ते वि साहु पुरिसाणं पलाइत्ता णमंते। एत्थ आरंभेदि सज्झाओ। णम्मत्तं सज्झायस्स पमुह-भूमिगा।

अओ सहागो! णम्मो हविऊण णिय-जीवणस्स अज्झायं आरंभेहि। अवगाहेज्ज णिए। सज्झायो एहा तुम्हे।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

वे भी साधु पुरुषों को देखकर झुक जाते हैं। और यहीं से प्रारंभ होता है-स्वाध्याय। क्योंकि नम्रतास्वाध्याय की पृष्ठ भूमिका है।

अत: हे साधक! नम्र होकर निज जीवन का अध्याय प्रारंभ कर। स्व में डुबकी लगा। यही तेरा वास्तविक स्वाध्याय है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगमो त्थि आगमं

भंते! चदु-अणंतं तं पत्तुं पंचम गदिं च पत्तुं आइरिय भगवदे हिं पंचविह-सज्झायं परमागमे पवेइदं। वायणा-पिच्छणा-अणुवेक्खा-अम्मणयो, धम्मोवएसो पंचविह-सज्झायत्तो पंच-पावा हिंतो विरहिदा, पंच परमेट्ठिस्स आराहणाए पंचमगदि लहेसु। इणं वदिरित्तो अण्णो कोविं णो मग्गो, जत्तो तुमं पंचमकाले णियप्पं पावादो संरक्खेज्जदे पंचविहो सज्झाओ चित्तणिरोहस्स सुट्ठुवाओ। जस्स पुव्वभेयो त्थि वासणा। वायणाए लक्खणं गंथसव्वत्थ-सिद्धीए आइरि-पूज्जपादेणं भणिदं "णिद्दोस गंथस्थुहयप्पदाणं वायणा"। गंथ- वायणाए समये सद्दे

आगम को आगम ही रहने दो

हे ब्रम्हमन् ! चतुष्टय स्वरूप, अनंत चतुष्टय की प्राप्ति के लिए एवं पंचम गति प्राप्ति हेतु आचार्य भगवंतों ने पांच प्रकार के स्वाध्याय की आगम में चर्चा की है। वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश इन पंच प्रकार के स्वध्याय के माध्यम से ही पांचों पापों से छूट कर, पंच परमेष्ठी की आराधना करके पंचम गति को प्राप्त कर सकता है। इनके अलावा अन्य कोई ऐसा मार्ग नहीं है, जिससे तू इस पंचम काल (कलिकाल) में अपने आपकी पापों से रक्षा कर पाये। पंच स्वाध्याय मन को नियंत्रित करने का सुगम उपाय है। जिसका प्रथम भेद वाचना बतलाया है। वाचना के स्वरूप की चर्चा करते हुए महान ग्रंथ सर्वार्थसिद्धि में पूज्यपादाचार्य कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वयागरणे, विसग्गे, अणुस्सारे, पुण्णविरामे चिंतणं-परमावस्सगो, वायणा-णिम्मलोच्चारण-पुव्वं होयव्वं।

झुणी वि महुर-गंभीर-ओजपुव्वपंजल-होयव्वा सोदाणं णिरक्खेत्ता खु "वायणा" सहाए होदव्वा। जदि सोदाणं चितेण रोचेज्जा ताव एत्थ-तत्थ पेक्खहि सयेहि वा, तत्तो जाएहिदि। णाणावरण-कम्मास्सवो। आगमस्स पवयण-यारस्स दोण्हवि अवमाणं जाएज्जा। इमस्सिं किंचि हेदू वाचगो। आम, गंथवायणा सरल-सुबोह-बहुमुही-सेलीए होदव्वा जत्तो सोदारं अंतसे अपुव्व-अपुव्व णाणेच्छा पज्जिस्सन्ते। वच्चत्थस्स सुद्धि अणिवारियो। जाव अम्ह वच्चत्थं कुणमो, तस्स पुव्वं णियट्ठाणे अवस्स पडणीयं।

"निरवद्य ग्रन्थार्योभय प्रदानं वाचना"

अर्थात् ग्रंथ, अर्थ और दोनों का निर्दोष प्रदान करना वाचना है। ग्रंथ वाचना के समय शब्द, व्याकरण विसर्ग, अनुस्वार, पूर्णविराम, अल्पविराम आदि पर ध्यान रखना परमावश्यक है, वाचना शुद्धोच्चारण पूर्वक होना चाहिए।

आवाज मधुर, गंभीर, ओजपूर्ण होनी चाहिए। श्रोताओं को देखकर ही "वाचना" सभा में होना चाहिए। यदि श्रोताओं का मन नहीं लगता तो वह या तो यहाँ वहाँ देखेगा, जिसके कारण उस को ज्ञानावरण कर्म का आस्रव होगा एवं आगम व वक्ता दोनों की अवहेलना होगी। इसमें कारण, कथंचित वाचक बन सकता है। सामूहिक ग्रंथ वाचना सरल, सुगम एवं बहुयामी शैली में होनी चाहिए, जिससे श्रोताओं के अन्दर नयी-नयी जिज्ञासायें उत्पन्न होती रहें। वाच्यार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कायवि अत्थं ण जाएज्ज, ताव सद्दकोसेण पलोयिदव्वं, वा विण्णाणीए णाणिदव्वं। व सच्छंद-चिंतणेणं कयावि गंथत्थं मा कादव्वं। अत्थं सत्थाणुसारेणं होदव्वं ण आगम-विवरीदं, विवरीदत्थं कुणमाणो सपरसत्तू वि। वायणा सपरहिदस्स होदि। णं जस्स गंथस्स अत्थो णो अत्थएज्जा सो हिदत्थं कधं होज्जदे? सत्थे विय-वयणं संगहणं-हीण त्तो उम्मग्ग-हेदू। कुंद-कुंद-वयणं मदी सुद-णाण बलादो, गणधरासणे चिट्ठिदूण। जो सच्छंदं बोल्लदि, सो हवेदि मिच्छाइट्ठी॥ भो णाणि! तुज्झ बोहीए अत्थं ण आगच्छंतो, ताव मा करेसु, वा पुण भणहि इमस्स वक्खाणं पेक्खित्ता करिस्सामि, इमस्स कयाविणो दोसो। किण्णु माण-सम्माण-खादी

शुद्ध होना अनिवार्य है। जब भी वाच्यार्थ करें, उसके पूर्व स्वस्थान पर अवश्य पढ़ लेना चाहिए या विशेष ज्ञानी से पूछ लेना चाहिए, पर स्वतंत्र विचार धारा से कभी भी ग्रन्थार्थ नहीं जोड़ना चाहिए। अर्थ आगमानुकूल ही होना चाहिए, आगम के विपरीत नहीं, क्योंकि विपरीतार्थ करने वाला स्व-परधाती है। वाचाना स्व पर कल्याणार्थ किया जाता है, किन्तु जिस ग्रंथ के अर्थ का अनर्थ निकाला जा रहा हो वह कल्याणार्थ कैसे हो सकता है? आगम में एक बात को भी कम करने वाला एवं एक को भी जोड़ने वाला दोनों उन्मार्गी है।

कुन्द-कुन्द भगवान् की भाषा में मतिश्रुत के बल से आगम की गद्दी पर बैठकर जो स्वच्छंद बोलता है वह मिथ्यादृष्टि है। भो ज्ञानी! तेरी समझ में अर्थ नहीं आ रहा है, तो मना कर दे, या फिर कह दे कि इस विषय का विवेचन देखकर करेंगे, इसमें कुछ नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूया-लाहो-पइट्ठत्थं आगम-विवरीदत्थं जई तुमं जणसहाए मज्झे किदं, कया वि णो किंचि जाएज्ज पच्छा विण्णाणेसुं मज्झे तुमं गच्छेज्जहि। तावं उत्तरं किं देस्ससि? चिंतेज्ज। वत्तमाणे वि अवमाणं। को वि विस्सासो वि णो कुणेज्जा खेत्ते-खेत्ते णिंदापत्तं होज्जा व असमाहिं, कुगइं आइ-दुग्गदिं गइं पडेज्जा। अदो-करुणं कुण आगमं पडि आगमेज्ज, णो णियत्थं विवरीदत्थं कुण।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

बिगड़ता। लेकिन मान-सम्मान, ख्याति, पूजा, लाभ-प्रतिष्ठा के उद्देश्य से आगम-विरुद्ध अर्थ यदि आपने जनसमुदाय के मध्य रख दिया, कदाचित हो सकता उस समय कुछ न हो, किन्तु जब कोई विद्वान के बीच तुम पहुँच गये, तो फिर क्या उत्तर दे सकोगे? ध्यान रखना वर्तमान में भी अपमान होगा और कोई विश्वास भी नहीं करेगा। जगह-जगह निंदा का पात्र होना पड़ेगा एवं असमाधि, कुगति आदि दुर्गति के गर्त में गिरना पड़ेगा। इसलिए स्व-पर दया करके आगम को आगम ही रहने देना, उसमें कांट-छांट या विपरीतार्थ करने की कोशिस मत करना।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णो संका, जिण्णासा

विसुद्धप्पण! जीवणम्हि जिण्णासा सहाविगो व जिण्णासा होंदव्वा, जत्तो, जिण्णासाए पण्णासत्तिं बढ़ावेदि। जहेव जिण्णासाणं जम्मो णो तहेव आगमे महारहो पि असंभवो। अवरो त्थि जिण्णासाए विणा अणुहवणाणं ण जग्गेई। जिण्णासा आगमं पडि रूचीए अहिव्वत्ती। जाव तुमं सज्झायस्स पुव्वभेयं संपज्जित्ता, तस्सोवरंदं बीअं सज्झायम्हि पवेसिदव्वो, जओ, जत्तो आवस्सग-पुव्व भेयं तत्तो आवस्सगं बे भेयंपि। णिच्छणं पण्हं च जिण्णासा-समाहाणए भावणा।

शंका नहीं जिज्ञासा

हे विशुद्धात्मन्! जीवन में जिज्ञासायें होना स्वाभाविक है और जिज्ञासा होनी भी चाहिए, क्योंकि जिज्ञासा का उत्पन्न प्रज्ञा शक्ति को वृद्धिंगत करना है। जब तक जिज्ञासाओं का जन्म नहीं होगा, तब तक आगम निपुणता संभव नहीं है और दूसरी बात यह है कि बिना जिज्ञासा के अनुभव ज्ञान जागृत नहीं हो पाता। जिज्ञासा-आगम के प्रति ललक की अभिव्यक्ति है। जब तू प्रथम स्वाध्याय के भेद को प्राप्त कर ले, तदुपरांत द्वितीय स्वाध्याय में प्रवेश करना चाहिए, क्योंकि जितना आवश्यक प्रथम भेद है उतना ही आवश्यक द्वितीय भेद। पूच्छना यानि प्रश्न करना, जिज्ञासा समाधान की भावना होना।

पृच्छना का अर्थ है प्रश्न करना, किन्तु वक्ता की परीक्षा हेतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिच्छणा-अत्थो पण्हं। वत्ता-परिखणत्थं अवरो त्थि णिम्मोद्देसो णो। ताणि पण्हाणि सज्झायंगाणि णो। पिच्छण-सज्झायं-समए णाण-सत्तिं परमावसगं च। णाणेणं विणा पण्हस्स णो जायंते हत्थ-पदापि णाणीसु णाय तक्क, सिद्धांत-अज्झप्प पण्हं होदव्वं। हत्थ-पायरहिदं पण्हं, णाणीणं समयं णिप्फल किदं।

पण्हं तु जिण्णासा विणयं जुत्तं होदव्वं। "पिच्छणा" सिस्सो होऊण होदि, गुरु होऊण णो। एत्थ गुरुणो चरिचा ण कुणेमि, गुरुवि सिस्स-अज्झणत्थं पण्हाणि पुच्छंते, सा दिट्ठी भिण्णा-वि।

जाव तुमं णाणीहिं पण्हं करेसि (णाणीणं अत्थं-आइरियो-

अथवा दूसरों को नीचा दिखाने के उद्देश्य से नहीं। क्योंकि ऐसे प्रश्न स्वध्याय की कोटि में नहीं आ सकते। पृच्छना स्वाध्याय के पूर्व, अपनी योग्यता, क्षमता को देख लेना परमावश्यक है। बिना ज्ञान के प्रश्नों में हाथ-पैर नहीं होते। ज्ञानियों में न्याय, तर्क, सिद्धांत, आध्यात्म के प्रश्न होने चाहिए। बिना हाथ-पैर के प्रश्न करना ज्ञानियों के समय को व्यर्थ में नष्ट करना है।

प्रश्न जिज्ञासा परक एवं विनय युक्त होना चाहिए। "पृच्छना" शिष्य बनकर होती है, गुरु बनकर नहीं। यहाँ गुरु से चरचा नहीं कर रहा हूँ, यद्यपि गुरु भी शिष्य अध्यनार्थ प्रश्न पूछते हैं, पर वह दृष्टि अलग है।

जब तुम ज्ञानियों से प्रश्न करो (ज्ञानियों से तात्पर्य आचार्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उवज्झाओ, साहू सामण्ण-पेक्ख-पण्णवंतो पंडियो) ताव विणयायार पुव्वं करेसि, जिण्णासाए विणयो होदि, जओ संकाए अहं होदि। गुरुदेवत्तो कत्तो पण्हं कादव्वं, इमा सिक्खा परमप्प-पयास-गंथ-सज्झाओ गहणीयं आइरिय-भगवया जोगंदु-देवत्तो पभाकर-भट्टो पण्हं करेदि-हे भगवं! णिच्छय-ववहार मोक्खमग्गो किं अहं इच्छेमि, पहू! संबोहिदो। गुरुत्तो पण्हाण इमा विही महारायो बोल्ल, णिच्छय-मोक्खमग्गो किं? पण्हं दोण्णिं।

एगम्हि, सज्जणत्त-सरलत्त-विवेगो, विणयो, जिण्णासा। अवरे अविणयो, अहंकारो असिट्ठत्तं व अप्पणाणत्तं। पण्ह जोत्तिअं

उपाध्याय, साधु, सामान्य अपेक्षा विद्वान पंडित) तो विनयाचार से करना, क्योंकि जिज्ञासा में विनय होती है, जबकि शंका में अहं झलकता है। गुरुदेव से प्रश्न किस प्रकार करना चाहिए, यह शिक्षा परमात्म-प्रकाश ग्रंथ का स्वाध्याय कर ग्रहण कर लेना चाहिए, कि आचार्य भगवन योगेन्दु देव से प्रभावकर भट्टजी प्रश्न करते हैं कि हे भगवन्! निश्चय मोक्ष मार्ग व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप क्या है, मैं जानना चाहता हूँ प्रभु! समझाने की कृपा करें। गुरुओं से प्रश्न करने की वास्तविक यही पद्धति है। न कि इस प्रकार कि- महाराज बताओ निश्चय मोक्षमार्ग क्या है? प्रश्न दोनों हैं।

एक ओर सज्जनता, सरलता, विवेक, विनय, जिज्ञासा है, जबकि दूसरी ओर अविनय, अहं, अशिष्टता एवं अल्पज्ञता। प्रश्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विणयेण पुच्छिदं, उत्तरो वि तत्तिअं पुढो जायदे। गुरुदेवस्स णाणदाणस्स वंछा वि णो होदि, तं पि तुज्झ विणय मंजरीए, पिच्छणा मंजरी, गुरुदेवरूवी परहुत्तो बलाद-उत्तरं समाहाणं बोल्लावेसि, व गुरुदेव वियरिउं वि चिट्ठंतो, अज्जं पण्हणाणं उत्तरं दामि, तुह अविणिदा सेलीए तेण कण्ठेण उत्तरोपि ण णिसरिज्जदि।

आइरियो भगवंतपुज्जवाद-सामी पिच्छणा-सज्झाय-सरूवं वक्खमाणो भासदे-संसयं उच्छेयत्थं, कुत्थ आगमे संसयो णो जादो, अओ इणं पण्हं होयव्वं णो संका। जओ संकाए मिच्छामग्गं लहेइ। संदेहे सम्मत्तस्स अदिचारो जाव णा जिण्णासा। णिच्छिद

जितनी विनय से पूछा जाता है, उत्तर भी उतना स्पष्ट मिलता है। गुरुदेव की बतलाने की इच्छा भी नहीं होगी, तो भी आपकी विनयरूपी बौर से युक्त पृच्छना रूपी आम्रमंजरी, गुरुदेव रूपी कोयल को बलात-उत्तर समाधान रूप में बुला देगी और यदि गुरुदेव विचार कर भी बैठते हैं, कि आज प्रश्नों का उत्तर दूंगा, लेकिन तेरी अविनय पूर्ण शैली देखकर उनके कण्ठ से उत्तर दूंगा, लेकिन तेरी अविनय पूर्ण शैली देखकर उनके कण्ठ से उत्तर भी नहीं निकलेगा।

आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी पृच्छना स्वाध्याय का स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं, कि संसशय का उच्छेद करने के लिए, कहीं आगम में संशय न हो जाए अतः प्रश्न होना चाहिए, पर शंका नहीं। क्योंकि शंका से मिथ्यात्व मार्ग प्राप्त कर सकता है। एवं शंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बल-पुट्ठत्थं सणाण-दिणत्थं, पण्हं, पिच्छणा णाम-सज्झायो। अओ हे जोइ! इणं पिच्छणासज्झाए तुमं अप्पणाणं दिडेज्ज।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

सम्यक्त्व का अतिचार है, जबकि जिज्ञासा नहीं। निश्चित बल पुष्ट करने के लिए यानी स्वज्ञान दृढ़ करने हेतु प्रश्न करना पृच्छना नाम का स्वाध्याय है। अतः हे योगी! इस पृच्छना नाम का स्वाध्याय से तू आत्मज्ञान दृढ़ कर।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वायणेणं सद्धिं पायणं

हे जोगि! जीवणे ण चम्मचक्खू णवि को वत्ता णाण चक्खुणा रहिदो अंधो व पसु सारिच्छो। अण्णाणीओ सेट्ठो एगेंदियो होदव्वं। जओ अहिग-अवमाणो विडंबणा अण्णाणिस्स वत्तमाणे अत्थि। पदि खेत्तेत्ति सामण्ण-विसेसखेत्तेसु वा धम्म-खेत्ते वि। अहुणा सो समयगओ जाव वेसमेत्तं पेक्खित्ता पाए पडेंति। अहुणा समयो अइविवरीदो कत्तो वि तवस्सी किं णो होदि? णाणं णिम्मल-चरियाए विणा को वि मुल्लो णो साहगो साहगं चिय हिणो मण्णेदि। किं होदि णाण मेत्तेण मोक्खो? इणं सिज्झंतो ण

वाचन के साथ पाचन अनिवार्य

हे योगी! जीवन में चरम चक्षु न हो तो कोई बात नहीं पर ज्ञान चक्षु से शून्य जीवन अन्धे व मृतक तुल्य है। अज्ञानी से श्रेष्ठ एकेन्द्रिय बनकर रहना अच्छा है। क्योंकि पशु से ज्यादा विडम्बना वर्तमान में अल्पज्ञ की है। चाहे जिस क्षेत्र में देखें सामान्य जीवन में या जीवन के विशेष क्षेत्र में, यहाँ तक कि धर्म क्षेत्र में भी। अब वह समय गया, जबकि मात्र भेष को देखकर चरण तले गिरते थे। आज का समय बड़ा विपरीत है। चाहे कितना बड़ा तपस्वी क्यों न हो? ज्ञान व निर्मल-चर्या के बिना कोई कीमत नहीं है। साधक, साधक को हीन मानता है। क्या ज्ञान मात्र से मोक्ष होता है? यह सिद्धांत जैन दर्शन का तो है नहीं। जैन दर्शन में सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की एकता से ही मोक्ष की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिणदंसणस्स। जिणदंसणे सम्मणाण-दंसण-चरित्तेहिं विणा णवि मोक्खो। णाणजसं आगमे कहिदं ण चारियसुण्ण-णाणस्स। चारिय-गहणोवरंत णाणपवाहे पुण्णं संलग्गिदव्वं। सवण-परंपराए उत्थाणं तहेव होदि जाव साहगो रुचीए णाणखेत्ते वि तित्तियं होदि जित्तियं, चरिया-खेत्ते, णिम्माणे व पइट्ठाइ-खेत्तम्हि। णाणी चरियवंतो समण परंपराए महद उबलद्धी। चरियसुण्ण-णाणीणं पहावणा विसेसा णो होंति। सो चिय णिरसणाणस्स चरिचं करेदि। चरियवंतस्स अणुभवादो व संजमादो णिसरिदणाणं। सो भव्वाणं मणधराए पवेसेदि, तस्स अंतसे वेरग्गचरित्तस्स उप्पज्जावेदि। जत्तो

प्राप्ति होगी। ज्ञान की नहीं। हां, चारित्र धारण करने के उपरांत ज्ञानाराधना में पूर्ण संलग्न हो जाना चाहिए। श्रमण संस्कृति का उत्थान भी तभी संभव है। जबकि साधक वर्ग की रुचि ज्ञान के क्षेत्र में भीउतनी ही हो जितनी चारित्र के व अन्य मंदिर निर्माण, प्रतिष्ठा आदि के क्षेत्र में है। चारित्रहीन ज्ञानी का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। वह सूखे ज्ञान की चर्चा करता है। पर चारित्रवान के अनुभव व संयम से जो ज्ञान निःसृत होता है वह भव्यों के हृदय रूपी भूमि में सीधा प्रवेश कर उनके अंदर वैराग्य व चारित्र के अंकुर उत्पन्न करता है जिससे जिन धर्म की अपूर्व प्रभावना होती है। सच्चा चारित्रशील ज्ञानाराधक निज को निर्मल कर दूसरों के चारित्र को भी निर्मल करता है, जबकि ज्ञान व अनुभव शून्य साधक व श्रावक जिन शासन की अवहेलना का कारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिणधम्मस्स अपुव्व पहावणा होदि। सच्चचरियवंतो णाणाराहगो णिय-णिम्मलं करंतो, अण्णं पि णिम्मलं करेदि, णाणाणुभवसुण्णो साहगसावगो वा जिणसासणस्स खलु अप्पहावणाए हेदू। जओ वियारसुण्णो व वियारअसमत्थेण कत्थ किं कहीअकहियव्वं वा? इमस्स पहावं सामण्ण-जणेसु किं होज्ज? णमोत्थु-सासणादो जणेसुं पहावो किं होसि? वियारो अणिवारियो। परण्णु अण्णाणी कसाये सज्झायाहावे जिणससासणस्स अहिदं कुणेदि। आयारसारे वीरणंदीसामिणा उल्लेहिदो- जो साहगो जिणसासणस्स पहावणाए रहिदो अपहावणस्स किंचि वि हेदू होदि,

---

ही बनता है। क्योंकि विचारवान न होने से अर्थात् विचार क्षमता की कमी के कारण कहाँ क्या बोलना है, क्या नहीं? इसका प्रभाव जन-सामान्य पर क्या होगा? नमोस्तु शासन से लोग प्रभावित होंगे या अप्रभावित इतना विवेक रखना अनिवार्य है। पर अज्ञानी कषायवश स्वाध्याय के अभाव में जिनशासन के साथ बड़ा अहित कर देता है। ऐसे अज्ञानी जीव के संदर्भ में आचारसार मं वीरनंदी स्वामी ने उल्लेख किया है- जो साधक जिन-शासन की प्रभावना से रहित होकर अप्रभावन्ना का जरा सा भी कारण बनता है, वह इस वसुधा पर भर स्वरूप है। अतः हे आत्मन्! तू सतत् स्वाध्याय में लीन रह, वाचना पृच्छना करते हुए ज्ञान विकास हेतु व परिणति को दृष्ट, श्रुत, अनुभूत विषय-कषायों से बचाने हेतु, कर्मक्षयार्थ, विशुद्धि स्थान की वृद्धि के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो इमाए धरणीए भारसमो। अप्पण! तुं सददं-सज्झाए-रत्तो, वायणं-पिच्छणं-कुणंतो णाण-वियासं हेदू परिणदीए दिट्ठं, सुदं व अणुभूयं विराय-कसायाणं सुरक्खंतो, कम्मखयत्थं, विसुद्धिट्ठाणस्स वुड्ढत्थं, अणप्पझाणदो सुरक्खत्थं, अणवरद-सज्झाए णिमज्जंतो अवगाहेज्ज। गंथ-आवस्सगं ण गंथेणं विणा वि सज्झाओ होदि, या अण्णं को साहणाए। वायणा-पिच्छणाए परावलंबणं होदि, आलंबणं गहियव्वं किण्णु तिण्ण-सज्झायस्स भेयं अम्हाणं आइरिय-भयवंतेहिं पवेइदा। अण्णधा मुणिरायाणं रत्ती-सज्झाये ण होयव्वो। पयासाहावे गंथवायणं ण संभवे। पयासं

लिए, अपध्यान से बचने के लिए, निरंतर स्वाध्याय में डूबकर गोता लगाओ। आवश्यक होती हो तभी। क्योंकि वाचना, पृच्छना में तो पर की आवश्यता होती है, आलंबन लेना पड़ता है परंतु तृतीय स्वाध्याय का भेद हमारे आचार्य भगवन्तों ने बहुत ही विचार कर रखा है। अन्यथा मुनिराजों का रात्रि का स्वाध्याय नहीं हो पाता। प्रकाश के अभाव में ग्रंथ का वाचन नहीं हो सकता। और स्वयं प्रकाश कर नहीं सकते, दूसरों को संकेत कर नहीं सकते क्योंकि अग्निकाय जीवों की विराधना होगी, अहिंसा महाव्रत में दूषण लगेगा। महाव्रत तो महाव्रत ही है एवं पृच्छना भी संभव नहीं क्योंकि मुनिराज रात्रि में मौन रखते हैं। निर्दोष मौनी लिखकर व अन्य किसी प्रकार से भी संकेत नहीं करते, तो फिर बताइए- पृच्छना भी कैसे संभव हो सकती है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ण करेदि, व अण्णे संगेदं पि ण कुणंति, जत्तो तेउकायिग-जीवणं विराहणा होदि अहिंसा-महव्वदे दूसणं होदि। महव्वदो महव्वदेव व पिच्छणा विं असंभावो, जओ मुणिराया रतीए मोणं गहेंति। णिम्मल मोणं लिहित्ता व अण्णपयारेण वि संकेतं ण कुणेंति, बोल्लसि पिच्छणावि कस्स होदि? अओ अणुवेक्खा सज्झाओ रक्खिदा। अणुवेक्खा सज्झाओ साहगस्स झाणत्थं परमावस्सगो। अणुवेक्खाए विणा झाणं असंभवो, जओ वियारंतेव चित्त थिरं होदि थरचित्तेव झाणं।

आइरिय-भगवया पुज्जवादसामिणा सव्वत्थसिद्धीए

इसलिए अनुप्रेक्षा स्वाध्यांय रखा। अनुप्रेक्षा स्वाध्याय, साधक को ध्यान के लिए परम आवश्यक है। बिना अनुप्रेक्षा के ध्यान संभव नहीं हो सकता, क्योंकि चिंतवन करते करते ही चित्त स्थिर होता है एवं चित्त की स्थिरता का नाम ही ध्यान है।

आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी जी ने सर्वार्थ सिद्धि ग्रंथ में अनुप्रेक्षा की परिभाषा करते हुए लिखा है–

"अधिकतार्थस्य मनसवाभ्यासोऽनुप्रेक्षा"

अर्थात् जाने हुए अर्थ का मन में अभ्यास करना अनुप्रेक्षा है। अनुप्रेक्षा स्वाध्याय से ज्ञान दृढ़ होता है, स्मरण शक्ति वृद्धिगत होती है, एवं ज्ञात विषय विस्मृत नहीं होता। किंतु जो पढ़कर छोड़ देते हैं यानि कि मात्र वाचन करके छोड़ दिया जाता है, उनका ज्ञान अपाच्च रूप हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणुवेक्खा-विसये लिहिदो-

"अधिकार्थस्य मनसाभ्यासोऽनुप्रेक्षा"।

अणुवेक्खा सज्झाओ णाण पुट्ठं होदि, बड्ढेदि सुमरणं। णाणं-विसयो णो विस्सरणं। पढंता वि चत्तेज्जा ते वंचिदूण चत्तेंति, तं णाणं अपचणं। जधा-धेणू-महिसाई भोयणं भुंजेंति दिणे, रत्तीए रोंधणं पि कुणेंति। जइ रोंधणं ण कुणेंति तदा भोयणं णो पचेहिदि जधा ते असत्था होस्संति। जहेव भोयणस्स पायणं खु, तहेव वायणा-सज्झाअं पच्छा अणुवेक्खापायणं आवस्सगो। अणुवेक्खा-सज्झाओ रोंधणं इमेव वायणपायणं होदि। सिलोग-

---

जाता है। जैसे- गाय, भैंस, आदि तिर्यंच आहार ग्रहण करते हैं, दिन में, किंतु रात्रि में रोंथन (जुगाली) भी करते हैं। यदि रोंथन नहीं करेंगे, तो वह पचेगा नहीं। जिससे वे बीमार पड़ जायेंगे। जैसे-भोजन का पाचन होना आवश्यक है, वैसे ही वाचना स्वाध्याय के पश्चात् अनुप्रेक्षा रूपी पाचन परमावश्यक है। अनुप्रेक्षा स्वाध्याय रोंथन है इससे ही वाचन का पाचन होता है। श्लोक, गाथा या सूत्र आदि को आहार बनाकर बहुत सारा चिंतवन किया जा सकता है। चिंतन की निर्मलता से ही चित्त निर्मल होता है, एवं चित्त की पवित्रता व निर्मलता से ही चारित्र निर्मल होता है। अतः विवेकी साधक श्रावक दोनों को ही अनुप्रेक्षा स्वाध्याय उपादेयभूत है। यही चित्त की चंचलता को रोकने का अनुपम उपाय है। हे चैतन्य! व्यर्थ के अपध्यान की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाहा, सूत्ताइं आहारित्ता बहुचिंतणं जाएज्ज। चिंदणस्स णिम्मलत्तमेव चित्तणिम्मलो होदि व चित्तणिम्मलत्तं व पवित्ततमे व चारित्तं णिम्मलो होदि। अओ विवेगी सावग-साहगो दोण्णेव अणुवेक्खा सज्झाअं उवादेयो इणमेव चित्तचंचल वित्तिं रोहणाय अणुवंउवाओ। हे चेयण असारं दुज्झाणस्स पेक्खा तुमं सयं सये लयत्थ णियचिंतणं अणुवेक्खं सज्झाओ णं चिंतणेव चित्तं पवित्तं कुणेदि चित्तणिम्मलत्तं एवं चारित्त णिम्मलं।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

अपेक्षा तू स्व को स्व में लगाने हेतु स्व चिंतवन रूप अनुप्रेक्षा स्वाध्याय को प्राप्त करते रहना। क्योंकि चिंतवन ही चित्त को पवित्र करता है एवं चित्त की पवित्रता ही चारित्र को पवित्र बनाती है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अम्मणयं सददं णाणब्भसणं

हे णाणाणंद सहावी आद! तुज्झ सरूवो णाणमयो। णियसरूवं णो विसरावेहि। सरूवस्स भाणं कुण, अवगाहेहि णिय णाणपवाहे। पुव्वम्हि आगमणाणे अवगाहणं अईआवस्सगो। सरूवस्स अणुभवं कुणावेदि, तं आगमणाणं। आगमणाण-सुण्णो जम्मांघेण वि जेट्ठो, आगमणाणरित्तो गंधविहिणो पुप्फ व्व आगमणाणेणं विणा णियदंसणं असंभवो। ण हि दव्वाणं दंसणं चम्म-चक्खुणा होदि। आगमणाणं अंतरंग- दव्वदस्सगो होदि। आगम चक्खूदो अंधो ण होज्जदि, अण्णहा जीवणं असारं होज्जदि। वत्तमाणे जत्तो सामत्थ होदि ततो सुदणाणज्जणं कुण। णाणे

आम्नाय यानि सतत् ज्ञानाभ्यास

हे ज्ञानान्द स्वरूपी आत्मन्! तेरा स्वरूप ज्ञानमय है। अपने स्वरूप को मत भूल जाना। स्वरूप के रूप का भान कर और डूब जा निज ज्ञान की धारा में। लेकिन पहले आगम ज्ञान में डूबना अति-आवश्यक है। क्योंकि स्वरूप के रूप का भान कराने वाला यदि कोई है तो वह है आगम ज्ञान। आगम ज्ञान से शून्य जीवन जन्मान्ध से भी बढ़कर है, व आगम-ज्ञान से रिक्त जीवन सुगंध विहीन पुष्प की तरह है। बिना आगम ज्ञान के निज- दर्शन संभव नहीं। बाह्य द्रव्यों का दर्शक चर्म चक्षु होता है। लेकिन आगम-ज्ञान अंतरंग द्रव्य का दर्शक होता है। आगम चक्षु से अंधा बनकर मत रहना, नहीं तो जीवन व्यर्थ हो जायेगा। वर्तमान में जितना तेरा पुरुषार्थ चले उतना श्रुतज्ञान का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कयावि तित्तो मा होहि व सुदणाणं पडि अणुच्छाहो मा होहि। तुज्झ एगएव वावारो, एगेव तुज्झ धणं। जहेव वणिज्ज-कज्जं पयोजण तहेव णाणीए णाणं गहेहि व अण्णाणिं पदेहि। जई ववसायां किय-विक्कणं णो कुव्वेज्ज़ तत्तो धणहीणो दरिद्दो होहिदि तुज्झ णाण कोसो अपुव्वेव आसि। इमत्तो जह-जह दाणं दिण्णां, तह-तह बड्डेहि। णघट्टंते।

उत्तं च-सरस्सइ-सुणाणं च वड्ढेदि वय-कारणे।
विलिहिद-सुपासाणे रे हव्व रेचदे अवि॥

जदि कोवि लोहवित्तीए ण देई, ताव णाणउठारो उव समंते। हे णाणि! जत्थ सच्चणाणस्स आगमाणुसारेण वट्टाओ संपज्जहि

आर्जन करता जा। ज्ञान में कभी तृप्त मत हो जाना एवं श्रुत-ज्ञानार्जन के प्रति उदास मत हो जाना तेरा एक ही व्यापार है, एक ही तेरा धन है। जिस प्रकार व्यापारी का कार्य लेना-देना रहता है, उसी प्रकार तू ज्ञानी से ज्ञान ले लेना एवं अज्ञानी को ज्ञान दे देना। यदि व्यापारी लेना बंद कर दे और देता ही जाये तो उसका कोष तो खाली हो सकता है, पर तेरा ज्ञान कोष अपूर्व ही है। इसमें से ज्यों-ज्यों दान दिया जाता है, वैसे-वैसे वृद्धि को प्राप्त करता है। घटता नहीं। क्योंकि कहा भी है-

"सरस्वती के भण्डार की बड़ी अपूरब बात"
ज्यों-ज्यों खर्चे त्यो-त्यों बाढ़े बिन खर्चे घट जाय।

यदि कोई लोभ-वृत्ति से देना बंद कर देता है, तो ज्ञान-कोष समाप्त होने लगता है। हे ज्ञानी! यहाँ ज्ञान की सच्ची आगमानुकूल बातें मिले उन्हें शीघ्र आदर सहित ग्रहण क़र लेना ही बुद्धिमानी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्स झट्ट-समादरेण गहणेव बोहिमंत्तं। एगग्गदाए सुट्ठूवाओ-सयं णाणज्जणस्स हेदू आगमगंथेसु चुक्कावेज्जा तुज्झ चित्तवाणरो कत्थ वि ण भग्गेदि।

आगमणाणेणं सह एक्कठाणं उवविसित्ता असेस जयस्स जत्ता। व सुदब्भासेव सुदकेवली गणहर-परमेट्ठी ठाणं पज्जित्ता सणहुं केवलि पदं पदेज्जदे। अओ चेयण्ण! तुं सया णाणाब्भासणं कुण। पुणो-पुणो सुदस्स उधोसेहि तच्चणाणं कंठे धारेज्ज तं समाहि-साहणस्स उवयरणं मुण।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

मन की एकाग्रता का सुगम उपाय है- अपने को ज्ञानार्जन हेतु आगम-ग्रंथों में खो देना। तेरा मन-मर्कट कहीं नहीं दौड़ पाएगा।

आगम ज्ञान से एक स्थान पर बैठकर त्रिलोक की यात्रा की जा सकती है। एवं श्रुताभ्यास
ही श्रुत-केवली गणधर परमेष्ठी पद को प्रदान कराकर, सर्वज्ञ केवली पद पर स्थित करा देता है। अतः हे चैतन्य! तू सतत्-ज्ञानाभ्यास कर। पुनः पुनः श्रुत का धोपकर तत्त्वज्ञान कण्ठ में विराजमान कर, समाधि साधना का साधन है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धम्मोवएसो जम्हि अप्पवएसो

मुमुछु! जीवो पडि समये पडिपले णिय-उवओग-विसुद्धकरणत्थं णिम्मल-उज्जमं करेदि। वत्तमाणे हिणसतीए विसेसज्झाणं, सुक्कझाणं ण होदि, धम्मज्झाणं होदि तं वि किंची समयं। चित्तवित्ती अइव चपला तं जयत्थं अईव सुट्ठु उवाओ सज्झाओ। जावे समये जं चित्तं जत्थ-तत्थ भमेदि सं सु चित्तं सज्जायतो थिरं होदि। अओ णिच्छल भावेण सज्झायं कादव्वं

जिण्णासा होदि किं सज्झाओ? किं कादव्वं?

"अत्थि अप्पमत्त-दसा सज्झायस्स" (स.सि.)

धर्मोपदेश वही है जिसमें निहित है आत्मोपदेश

हे मुमुचछु! जीव प्रतिक्षण प्रतिपल अपने उपयोग को पवित्र रखने पवित्र पुरुषार्थ करता है। वर्तमान में हीन शक्ति के करण विशेष ध्यान यानि शुक्ल ध्यान नहीं होता है, धर्म ध्यान होता है वह भी अल्प समय के लिये। चित्त की वृत्ति अत्यंत चंचल है। कैसे उसे वश किया जाय उसके लिये बहुत सुंदर माध्यम है स्वाध्याय। जाप्य करने में जो मन यहाँ-वहाँ घूमता है वही मन स्वाध्याय में स्थिर हो जाता है। अतः निश्छल भाव से स्वाध्याय करते रहना चाहिये।

जिज्ञासा होती स्वाध्याय कहते किसे हैं? क्यों किया जाता है? "ज्ञान भावनालस्यत्यागः स्वाध्यायः" (सर्वार्थसिद्धि) आलस्य का त्यागकर ज्ञान की आराधना करना स्वाध्याय तप है।9,20346

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"परतत्ती णिरवेक्खो दुट्ठ वियप्पाण णासण समत्थो।
तच्च विणिच्छय हेदू सज्झाओ ज्झाण सिद्धयरो॥"

का.अ. 461

"स्वाध्यायः सुष्ठु पूर्वापरविरोधेन अध्ययनं पठनं पाठनं अध्यायः।

सुट्ठुः अध्यायः स्वाध्यायः सुष्ठु सोभनाः आध्यायः स्वाध्यायो वा॥"

स्वस्मैःस्वात्मने हितः अध्यायः स्वाध्यायः स्वाध्यायो वा सम्यग्युक्तोऽनुष्ठेयः इति स्वाध्यायो वा॥ का.अनु. टीका-4611

"परतत्ती णिरवेक्खो दुट्ठ वियप्पाण णासण समत्थो।
तच्च विणिच्छय हेदू सज्झाओ ज्झाण सिद्धयरो॥"

(461) का.अ.

अर्थात् स्वाध्याय तप परनिन्दा से निरपेक्ष होता है। दुष्ट विकल्पों को नष्ट करने में समर्थ होता है तथा तत्त्व के निश्चय करने में कारण है और ध्यान की सिद्धि करने वाला है।

स्वाध्यायः सुष्ठु पूर्वापरविरोधेन अध्ययनं पठनं पाठनम् आध्यायः।

सुष्ठुः आध्यायः स्वाध्याय, सुष्ठु शोभनाः आध्यायः स्वाध्यायो वा॥

स्वस्मै स्वात्मने हितः अध्यायचः स्वाध्यायो वा सम्यग्युक्तोऽनुष्ठे इति स्वाध्यायो वा। का.अनु.टीका-461

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुट्ठु रिदीए पुव्वापरेहिं विरोह रहिदं अज्झअणं सज्झाओ वा 'सव' अत्थं अप्पहिदाय अज्झअणो सज्झाओ।

सम्मरूवेणा सविणयादो कालायाराइं अट्ठंगाणं वियारिउं अज्झअणं सज्झाओ, वायणा, पिच्छणा, अणुवेक्खा, अम्मणया-धम्मोवएसो, इमा पंचभेय सज्झायस्स कहिदा। इणं चउण्हं पुव्वम्हि भणिदं। इणं धम्मोवएस-सज्झायं कहिदव्वं। कस्स वि संसारिग-पयोजणादो णिरवेक्खो उम्मग्गणासेदुं, संदेहपरिहारत्थं, अपुव्व-अत्थ-पयासत्थं तहा अप्पकल्लाणत्थं, जं धम्ममस्स वक्खाणं करेदि, तं धम्मोवएसो कहेदि। धम्मोवएस-पुव्वं धम्मसम्मस्स णाणं

सुट्ठु रीति से पूर्वापर विरोध रहित अध्ययन करने को स्वाध्याय कहते हैं अथवा 'स्व' अर्थात् आत्मा के हित के लिये अध्ययन करने को स्वाध्याय कहते हैं।

समीचीन रूप से विनय पूर्वक कालाचार आदि आठ अंगों का विचार करके अध्ययन करना स्वाध्याय है। वाचना, पृछना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश ये पाँच भेद स्वाध्याय के कहे गये हैं। उनमें चार की चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। यहाँ धर्मोपदेश स्वाध्याय कथनीय है।

किसी भी प्रत्यक्ष या परोक्ष सांसारिक प्रयोजन की अपेक्षा न करके उन्मार्ग को नष्ट करने के लिये, संदेह दूर करने के लिये, अपूर्व अर्थ को प्रकट करने के लिये तथा आत्म कल्याण के लिये जो धर्म का व्याख्यान किया जाता है उसे धर्मोपदेश कहते हैं। धर्मज्ञान के बिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवस्सगो। धम्मणाणेणं विणा धम्मोवएसो णो होदि। उवएसत्थं चउ-अणु-जोगाणं घण-अज्झणं कादव्वं। आगमणाणी, पवीणवत्ता, णिब्भया, णिल्लोही व णिच्छलो वत्ती एव धम्मोवएसेणं सहं संभालेदि। उवएसगम्हि महुर-वयणेण सह महुर जीवणो वि आवस्सगो। चरियवंतो-अणुसासणपियो सहं णिय-मण्णवंतो, सपरहिदाणं भासंतो हि सच्चवत्ता, धम्मोवएसगो। आवस्सगो णो धम्मोवएसत्थो, महसहा, सुरजंत्तं व उच्चठाणं-विसेसो। अरे बधु! कल्लाणो व एसो एग-जणं च पि दायव्वं।

देक्ख! सीह पज्जाए भगवं-महावीर-सामिस्स एगजीवं

धर्मोपदेश नहीं हो सकता। उपदिष्टा को चारों अनुयोगों का गहन अध्ययन करना चाहिए। आगमविद्, कुशल वक्ता, निर्भीक, निर्लोभी एवं निश्छल व्यक्ति ही धर्मोपदेश देकर धर्मसभा को संभाल सकता है। उपदेशक के अंदर वाणी मधुरता के साथ जीवन माधुर्य होना आवश्यक है। चारित्रवान, अनुशासनप्रिय सभा को अपना स्वीकारने वाला, स्वपर हित से बोलने वाला ही सच्चा वक्ता है, धर्मोपदेशक है। आवश्यक नहीं कि बहुत बड़ी सभा, मंच व माइक हो, तभी उपदेश हो। अरे! भाई कल्याण का उपदेश तो एक व्यक्ति को भी दिया जा सकता है।

देखो, सिंह की पर्याय में भगवान महावीर स्वामी के एक जीव को उपदेश देने वाले युगल मुनिराज थे। अंतरंग में प्रमोद भाव एवं वैराग्य शक्ति का संचार जिस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उवएसगा जुगल मुणिराया। अंतरंगे पमोदभावो वेरग्गसत्तीए पवाह जस्सिं पवयणे होदि सोच्चिय सच्चो-धम्मोवएसो। मणोरंजणं ण णियरंजणं जम्हि होदि तच्चणाणस्स सुवासं पसरेइ जाए वायाए सो उवएसो भव्वाणं भविदव्वत्तं पयासणे णिमित्तं। साहगो उवएसो सपरमुही हविऊण दिण्णो। पुव्वम्हि सहिदे पेक्खदि पच्छा परे। उक्तं च- पढमं आदहिदं करणीयं जई सामत्थो परहिदं पि कादव्वं परहिद-अवेक्खा अप्पहिदं पढमं कादव्वं। तम्हा आदहिदं सुट्ठू पयारेण कादव्वं।

इणं सारो-परोवएसेण सह सलक्खं गहिऊण चलियव्वं।

प्रवचन से हो वही यथार्थ में धर्मोपदेश है। मनोरंजन नहीं, आत्मरंजन जिसमें निहित है, तत्वज्ञान की सुगंध छा रही है, जिस वाणी में वह उपदेश भव्यों की भवितव्यता प्रकट कराने में निमित्त भूत होता है।

साधक उपदेश स्व पर मुखी होकर ही देता है। प्रथम स्वहित पर दृष्टि रखता है पश्चात् दूसरे पर। जैसा कि कहा भी है-

आदहिदं कादव्वं जई सक्कइ पर हिदं च कादव्वं।
आद हिदं पर हिदादो आदहिदं सुट्ठु कादव्वं॥

प्रथम आत्महित करना चाहिये यदि शक्य हो तो परहित भी करना चाहिये। परहित की अपेक्षा आत्महित करना प्रथम कर्त्तव्य है। इसलिये आत्महित भली-भांति करना चाहिये। तात्पर्य, पर उपदेश के साथ स्वलक्षण रखकर ही चलना चाहिये। पाँच प्रकार के स्वाध्याय के क्या प्रयोजन हैं? इस बात को पूज्यपाद स्वामी ने स्पष्ट किया है-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंच विह सज्झायस्स पयोजणं किं? इमं वयणं पूज्जवाद सामिणा णिम्मलं किदं पण्णाए अदिसअत्थं, अज्झवसायं पसस्सतत्थं, परम संवेगत्थं, तव-वुड्ढत्थं अदियारेसु विसुज्झत्थं सज्झाओ करणीयं। सं.सि-9/25

आइरिय सुभचंद सामिणा णिद्दिट्ठो-सज्झाअत्तो णाणं बुड्ढेदि, सुह परिणामो होदि, संसारे वेरग्गे होदि। धम्मे ठिदिकरणं, अदिचारेसु विसुज्झीए, संसय-विणासो मिच्छावाइस्स भयो ण होदि। एवं पंच सज्झाअं कायव्वं।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

"प्रज्ञातिशयः प्रशस्ताध्यवसायः परम संवेगस्तपोवृद्धि-रतिचार विशुद्धिरित्येव माद्यर्थः" सं.सि.-9/25

प्रज्ञा में अतिशय लाने के लिये, अध्यवसाय को प्रशस्त करने के लिये, परम संवेग के लिये, तप में वृद्धि करने के लिए, अतिचारों में विशुद्धि लाने आदि के लिए स्वाध्याय किया जाता है। आचार्य शुभचंद्र स्वामी ने कहा स्वाध्याय करने से ज्ञान की वृद्धि होती है, शुभ परिणाम होते हैं, संसार के वैराग्य होता है। धर्म में स्थिति होती है, अतिचारों में शुद्धि होती है, संशय का विनाश होता है और मिथ्यावादियों का भय नहीं रहता। इस प्रकार पाँचो स्वाध्याय करना अनिवार्य है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खमा वीरस्स भूसणं

हे जोइ! धम्मो एगेव होदि। वत्थु सहावो। "वत्थु-सहावो धम्मो" सो धम्मो त्थि दहविहो। एगविहं धम्मं जाणामि तत्तो वि दहविहं धम्मं वक्खाणं सुणेहि।, जे आद-णिय गुणा ते, धम्म धम्मिगेहिं सहेव होंति। जत्थ-धम्मिगो तत्थेव धम्मो। दह धम्मेसु पढमभेयो "उत्तम-खमा" जस्स वक्खाणं दियम्बराचारियेहिं किदा- "कालुस्साणुप्पत्ति खमा" खमा जीवणस्स अमिदं। खमा सीललोए पुज्जो। खमा आदमित्तो। अम्ह आदरिऊ कोहो। कोहावेसे माणवो णिय माणवत्तं मुच्चेदि। कोही परिणदी मदपाई सारिच्छा।

वीरों की संपदा क्षमा

हे योगी! धर्म तो एक ही होता है। वह है, वस्तु का स्वभाव। "वत्थु सहावो धम्मो" जो वस्तु का स्वभाव है, वह धर्म है। उस धर्म को दस प्रकार से जानते हें यानि कि एक प्रकार स हम धर्म को नहीं समझ सकते, इसीलिए दस भेदों के धर्म की मीमांसा कर समझाया, जो कि आत्मा के निजगुण है, क्योंकि धर्म-धर्मात्मा के पास ही होता है। जहाँ धर्मात्मा होंगे वहीं धर्म होगा। दस धर्मों में प्रथम भेद है "उत्तम क्षमा" जिसकी मीमांसा दिगम्बराचार्यों द्वारा बहुत सरल सहज भाषा में की है- "कालुष्यानुत्पत्ति क्षमा" अर्थात् कालुष्यता की उत्पत्ति न होना ही क्षमा है। क्षमा हमारे जीवन का अमृत है। क्षमा शील जगत में पूज्य होता है। क्षमा आत्मा का परम मित्र है। यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहा- महापाविस्स नेत्राइं रत्तांइं होंति, तणू-कंपेदि, विवेगो ण होदि, करणीयाकरणीय किं? इणं वियार रहिदो जीवो होदि। साएव ठिदी कोहि जणंस्स। कोहवसेण णिय बंधु-सहाए वि सत्तुत्तं गहेदि। जाव कसाया उवसमंते ताव पच्छादावेण ढज्झेदि। कोहो णाण सिराओ खीणं करेदि, कोही मेहं खिणदि, कोहिस्स बोही विणट्ठा होज्जदि। कोहिस्स जीवण-विसात्तो होदि। जओ कोहविसात्तो। जइ भोजणे कोवि कोहं कुणेदि, सो भोयणं विससरिच्छं परिणमेइ। कोहे सरीरतत्तो विवरीदं परिणमंते, रत्तं विसात्तो होज्जदि, जो णरजीवणे बाहं उप्पज्जंते। अत्थो रसस्सावी-गंथिआणं विक्किदा

आत्मा का कोई 'अर' है, तो वह है- क्रोध। क्रोध के आवेश में मानव अपनी मानवता को खो देता हैं। क्रोधी की परिणति शराबी तुल्य होती है। जैसे- महापापी के नेत्र लाल हो जाते हैं, शरीर कांपता है, विवेक खो जाता है, क्या करणीय है? क्या अकरणीय है? इन सब विचारों से रहित हो जाता है। वही स्थिति क्रोधी व्यक्ति की होती है। क्रोधावेश में स्वबंधु व मित्रों से भी शत्रुता कर लेता है। जब कषायावेश शांत हो जाता है, तब पश्चाताप की भट्टी में झुलसता रहता है। क्रोध ज्ञान तंतुओं को क्षीण करता है, क्रोधी व्यक्ति के जीवन में जहर घुल जाता है। क्योंकि क्रोध जहरीला है। यदि भोजन के समय कोई क्रोध करता है, तो वह भोजन जहर तुल्य हो जाता है। क्योंकि क्रोध की उत्पत्ति में शरीर के तंत्र विपरीत कार्य करने लगते हैं। रक्त कण विषैले हो जाते हैं, जो मानव जीवन को खतरे में डाल देते हैं। यानि रस्स्रावी ग्रंथियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुणेंति, जत्तो गंथिततं णिक्कम्मा होज्जदि, जत्तो जेविग-सत्ती खीणा होदि मत्थो असंतुलिदो होज्जदि। सव्व सुरक्खा संतुलणत्थं खमा, सहणसीलदाए परमा-वस्सगो, जओ सव्वं विक्किदाणं णियंतण सत्ती खमत्तं एगत्तं मित्ततं सबंसधुत्तं तत्थेव जत्थ कोहाणलो ण जग्गेदि। कोहो सा अग्गी जम्हि सव्व-गुणाणं दड्ढावेज्जदि। जोइ! कोहं ण खमामिअं गहेसु जओ सुहाणं खाणी खमाधम्मेव। णवरी अकोहोप्पत्ती खमा ण। खमा अत्थं कालुस्सत्ता भावो। अंतसे कलुसिदभावो ण होयव्वो, खमाधम्मस्स पढमं पायदाणं व इणं कहेइ, तेण सह पढमं सोवाणं, ताव अंत पत्तिउं, तुमं

को विकृत कर देते हैं, जिससे ग्रंथि तंत्र निष्क्रिय हो जाते हैं, जिस कारण से जैविक शक्ति कमजोर पड़ जाती है, मस्तिष्क तंत्र असंतुलित हो जाते हैं। इन सबकी सुरक्षा एवं संतुलन के लिए क्षमा सहनशीलता की परम आवश्यकता होती है, क्योंकि इन सब विकृतियों को कंट्रोल करने की अनुपम शक्ति क्षामाशीलता है। एकता मित्रता, सबन्धुता तभी तक है। जब तक क्रोधानल नहीं भड़कती। क्रोध वह आग है, जिससे सब गुण खाक हो जाते हैं। अत: हे योगी! क्रोध नहीं क्षमामृत का पान कर, क्योंकि सुखों की खान क्षमा-धर्म ही है। क्रोध का न आ़ना मात्र क्षमा नहीं है। क्षमा का तात्पर्य है- कालुष्यता का अभाव। अंतरंग में कलुषित भाव भी नहीं होना, क्षमा धर्म का प्रथम सोपान है और यह संकेत देता है कि तेरे पास प्रथम सोपान है, तो अंतिम को प्राप्त करके तू मोक्ष मंजिल को तय कर सकता है अन्यथा नहीं। क्रोध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्खठाणं पत्तेहि णा अण्णहा। कोहो ण तुज्झ सहावो। कोही "अप्पाणं हणदि अप्पेणे।" जदि कोवि तुज्झ रक्खगो, ताव खमाजुत्तो तुज्झ अप्पेव सरणो जहत्थे उत्तम खमा रयणत्तय जुत्तस्स एव होदि। इणमत्थो इदं ण सामण्ण जणासु कोहो कादव्वो, खमं ण गहिदव्वं णो, तेवि खमाधम्मं गहिदव्वं। वियारेहि। खमा णिब्बलाणं धम्मो जाणेदि सो महासडदो। खमा धम्मो णिब्बलाणं ण, महावीराणं होदि। खमा गहणत्थं तुम्हं णियसत्तीए सह देहसत्ती वि वंछणीयं। णीदिगारेहिं उत्तं च-

"खमा वीरस्स भूसणं।"

देहसत्ती ण तुज्झ समीवे व तुमं भणिदं अमुगस्स खमा

करना तेरा स्वभाव नहीं है। जो क्रोध करता है, कोई रक्षा करने वाला है, तो क्षमा से युक्त तेरी आत्मा ही शरण रक्षक है। वास्तव में उत्तम-क्षमा रत्नत्रयधारी के ही होती है पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सामान्य लोगों को क्रोध करना चाहिए, यानि क्षमा धारण नहीं करना चाहिए। नहीं, उन्हें भी क्षमा धर्म पालन करना चाहिए। ध्यान रखो! क्षमा निर्बलों का धर्म समझना महामूर्खता है। क्षमा धर्म, निर्बलों का नहीं वीरों का है। क्षमा धारण करने के लिए आपको आत्मशक्ति के साथ शारीरिक शक्ति चाहिए। नीतिकारों ने कहा भी है-

"क्षमा वीरस्य भूषणम्।"

क्षमा वीरों का आभूषण है, कायरों का नहीं। शारीरिक बल आपके पास नहीं था और आपने यह कह दिया कि अमुक के लिए क्षमा कर दिया, तो यह क्षमा नहीं कहलाएगी। क्षमा तो वहाँ है जहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिण्णा। तदो इणं खमा ण। खमा ताव तत्थ जत्थ पराभव-सामत्थेण सह तुमं, व कोहो उप्पत्ती कारणं पि! पुणरवि कोहं ण कुणसि। णीदिं कुरल-कव्वे भणिदं-

तवं च कुव्वमाणं च सह-भुक्खं रिसी महा।
खमं पच्छा हवे लोए, माण-सम्माण-सम्मगं॥

इदमासयं-पडिपलं पडिखणं अम्हाणं खमेण सह णिग्गसामो। को अम्हाणं रिउमित्तो वा? एग्गे दिणे इणं भवादो सव्वं चयेज्जा, ताव पुण किं ण सव्वेण सह खमा धम्मस्स ववहारं करित्ता, इद भवे जसं व पर भवे सग्गं मोक्खं पत्तेमो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

पराभव करने की शक्ति भी आपके पास है, और क्रोध के कारण की उपस्थिति है, फिर भी क्रोध नहीं करना।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी ने महान नीति ग्रंथ कुरल-काव्य में क्षमा धर्म की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है-

"तप करते जो भूख सहे, वे ऋणि उच्च महान्।
क्षमाशील के बाद ही, पर उनका सम्मान।"

तात्पर्य यह है- हर पल हर क्षण हमारा क्षमा के साथ ही निकाले। कौन हमारा शत्रु कौन मित्र? एक दिन इस संसार से सभी को बिदा होना है, तो फिर क्यों न सभी के साथ क्षमा धर्म का व्यवहार करके इस भव में यश, पर भव में स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करें।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रावणो त्थि माणं

मणिसी आद! माणव-मणो माणस्स वहु विसाल-विच्छो, जस्सिं साहाओ अइविसत्तो जेण मद पवणं णिस्सरदि। जेण वाउपहावेण अप्पातिव्वं सोसेदि। माणं, माणवं दावणो करेदि। जस्स हेउस्स माणं माणव-अंतसादु उवसमेदि तं-माणो माणंपिच्छा माणवो माणवत्तं मुच्चेदि। माणं अहंभावो। माणी णिओ पुज्जाणं बहुमाणं ण कुणेदि। अहंभावी पुज्जाणं पि अवमाणं कुणंते, अहंभावो वत्तिं कठोरं कुणेदि। मुणेहि! अहंभावो तस्स एव होदि, पणासं समीवं, जओ अहंभावो पडण-सहावी, पदीवो उवसमंते,

---

रावण का रूप है- मान

हे मनीषी आत्मन्! मानव का मन, मान का बहुत बड़ा वृक्ष है। जिसकी शाखाएँ अतिविषाक्त हैं। जिससे मद रूप वायु प्रवाहित होती है। जिस वायु के प्रभाव से आत्मा का तीव्र शोषण हो रहा है। मान, मानव को दानव बना देता है। जिसके कारण मानव के अंदर से मानवता मर जाती है। वह है- मान। मान के पीछे मानव मानवता खो देता है। मान यानि अहंकार। मान में व्यक्ति अपने से पूज्यों का बहुमान खो बैठता है। अहंकारी व्यक्ति पूज्यों का भी अनादर करने लगता है, अहंकार व्यक्ति को कठोर बनाता है। ध्यान रखना! अहंकार उसी व्यक्ति को आता है, जिसका कि विनाश निकट होता है, क्योंकि अहंकार पतनकारी है, जब दीपक बुझने लगता है, तब उसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्स जोईवि बड्ढंति। एवं अहं भावीए दसा। जहेव जोई बुज्झेदि तहेव अहंजोई, जीवणे ण सह गच्छंति।

अहंभावो अहोगमण-सहावि त्थि अहो-लोगगमणस्स सुइदो। अहं-संजुत्तो मरणेच्छं करेदि णमणं णो। अहंभावजुत्तो सीसं छिदावेदि ण णमावेदि। सो सुक्ख बंसव्व होदि, जो टुट्टेदि, णमेदि णो, तिणं णमेदि अओ णिय अत्थित्तं पत्तेदि। एसो त्थि उत्तम मद्दवसरूवो, जीवणे णम्मत्तं अहंभावो णो। मद्दधम्मो इणमेव उवएसेदि- हे मणु! जइ तुमं णिय सच्च सम्माणस्स वंछेसि, ताव अण्णेसिं सम्माणं दाएज्ज माद्दवधम्मो विणयगहणं पडि इंगिएदि।

ज्योति भी बड़ी हो जाती है। इसी प्रकार अहंकारी की दशा होती है। जैसे कि ज्योति बुझ जाती है, वैसे ही अहं की ज्योति, जीवन के साथ चली जाती है। अहंकार अधोगामी है अर्थात् अधोलोक यात्रा की सूचना देने वाला है। अहंकारी मरना पसंद करता है, किन्तु झुकना नहीं। अहंकारी सिर कटा सकता है, सिर झुका नहीं सकता। वह तो सूखे बांस की तरह होता है, जो टूटना उखड़ना पसंद कर लेता है, पर झुकना नहीं, घास झुकती है इसलिए वह अपने अस्तित्व को कायम रखती है। उत्तम मार्दव का अर्थ यही है, कि जीवन में नम्रता का होना यानि अहंकार भाव न होना। मार्दव धर्म यही शिक्षा देता है कि हे मानव! तुझे यदि अपना वास्तविक सम्मान चाहिए, तो दूसरों का भी सम्मान करना सीख। मार्दव धर्म विनयी बनने की ओर इंगित करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जओ पुज्ज-पुरिसाणं विणयेव मोक्ख-दारो। जाणज्ज भो तुमं, दियम्बराइरिएहिं मेत्त-णमणं विणयो णो भणिदो-विणयस्स अत्थो-मिदुभावो, जीवणे मिदुत्तस्स आगमणं, मिदुत्तस्स अत्थं-विणम्मत्तं, सिट्ठायारं, मेत्तो ण, इणं पुण्ण णाणं ण। "मिदु भावो त्थि मद्दवं" जस्स चित्तो मिदू णत्थि तस्स जदि मत्थगंपि णमेदि सप्पयोजणे सिट्ठायारस्स। कयावि विणये वि माणं अत्थि। मिदुत्त-अंतरगुणो। अंतरस्स पडिभासो बाहिरं पि दिक्खेदि जो बाहरिं दिक्खेदि सो मुदु परिणामेव अत्थि एरिसो ण णिच्छदो। जणा सुट्ठु भणेज्ज इणं लक्खणं वि विणयो भासेज्जदि। अंतसे अमिदुत्तं बाहिरे

है, क्योंकि पूज्य महापुरुषों की विनय ही मोक्ष का द्वार है। किन्तु ध्यान रखना दिगम्बराचार्यों ने मात्र झुकने को ही विनय नहीं कहा। विनय का तात्पर्य मृदोर्भाव अर्थात् जीवन में मृदुता का आगमन, मृदुता का अर्थ- विनम्रता, शिष्टाचार मात्र नहीं, यह अपूर्ण समझ है। "मृदोर्भावो मार्दवम्" अर्थात् कठोरता का पूर्णतया विरेचन और क्रूरता को पूर्ण विराम। जिसका हृदय मृदु नहीं यदि उसका सिर भी झुकता है तो स्वार्थ के पीछे, शिष्टाचार के नाते। कभी-कभी विनय में भी मान छुपा रहता है। मृदुता अंदर का गुण है। अंतरंग की झलक बाहर भी दिखती है किंतु जो बाहर दिख रहा है वह मृदु परिणाम ही हैं, ऐसा नियत नहीं है। लोग अच्छा कहे इस उद्देश्य को लेकर भी विनय झलक सकती है। अंदर से अकड़पन रहे और बाहर से विनय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिदुत्तं जाएज्ज ण इणं मिदुत्तं। अंतसेण सह बाहिरंपि णम्मवित्ती खु मिदुत्तं, अंतरंगे ण अमिदुत्तं।

उक्तं च- णमे णमे हु अंतो त्थि, बहुणम्मी वि दुज्जणो।
छल-कवडि पण्णम्मे, चित्तल-थेर-धाणुसो॥

णम्मे जादे पस्सदे विसालो अंतरो त्थि, इणं णिय सहावस्सिदो। जधा चिरलो णमिऊण अग्गे उच्छलेदि। चोरो वि णमिऊण चिय लहु-छिद्देण अंतसे पवेसेदि, धणु-णम्मेणहु सर-संधाणं कुणदि। एवं मायाई होदि। सो अदि णमिऊण सम्माणं देदि। एरिसं मिदुत्तं, विणम्मत्तं ण मद्दवधम्मो। अओ आइरिएण मिदुत्तं

दृष्टि गोचर हो- यह मृदुता नहीं। अंदर के साथ बाह्य में नम्रवृत्ति होना ही मृदुता है, अंतरंग की कठोरता नहीं क्योंकि कहा भी है-

"नमन-नमन में फेर है, अधिक नमे नादान।
दगाबाज दूना नमे, चीता चोर कमान॥"

अर्थात् नम्रता होने और दिखने में बड़ा अंतर है। यह अपने स्वभाव पर भी निर्भर करता है। जैसे-चीता झुककर ही आगे छलांग लगाता है। चोर झुककर ही छोटी सी खिड़की से अंदर प्रवेश पाता है। कमान के झुकने पर ही तीर छोड़ा जाता है। इसी प्रकार कपटी होता है। वह आवश्यकता से ज्यादा झुककर अदब करता है। ऐसी मृदुता, विनम्रता मार्दव धर्म नहीं है। इसलिए आचार्यों ने मार्दव (मृदुता) के आगे अलग विशेषण लगाया है, वह है उत्तम।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्गे भिण्ण-विसेसणं किदं सो वि उत्तमो।

विणयो सो मंतो, जम्हा कारणाद आदविज्जं सिक्खमो। विज्जाओ संपत्तेंति विणयेणं विणा सव्वविज्जाओ णिप्फला। अओ हे णाणि! मण-वयण-काया विणयो आवस्सगो। णवर वयणदेहस्स विणयो-विणयो णत्थि। त्ति जोगेण विणयो-विणयो त्थि। तिजोग्गादु मद-अभावो सम्म-विणयो। आइरिय-भगवंतेहिं मदस्स अट्ठभेयं कहिदं-जो भवभमण हेदू-अट्ठदारसारिच्छा।

णाणं पूयं कुलं जादिं, बलं रिद्धि तवं तधा।
रूवं देहमदं मण्णे, हण्णे अप्पहिदं सदा॥

विनय वह मंत्र है, जिसके माध्यम से हम आत्मविद्या सीख सकते हैं। लेकिन विद्यायें तो मिल ही जाती है परंतु विनय के बिना सारी विद्यायें निष्फल हैं। अतः हे ज्ञानी! मन-वचन-काय तीनों में विनय की आवश्यकता है मात्र वचन एवं शरीर की विनय, विनय नहीं है अर्थात् त्रियोग विनय ही सच्ची विनय है। त्रियोग से मद का अभाव वास्तविक विनय है। आचार्य भगवंतों ने मद के आठ भेद कहे हैं, जो कि संसार भ्रमण के अष्ट द्वार तुल्य है। ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, रूप, शरीर का मद ये आठ मानव के लिए पतन के स्रोत हैं। जिन्हें आत्मा को परमात्मा बनाने की आकांक्षा है, उन्हें विनय पान करना आवश्यक है। जो मानव विनय-शील होता है एवं सभी जीवों की रक्षा करता है, वह संपूर्ण लोक में प्रिय होता हे, कभी अपमान का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्पा परमप्पा-इच्छुगा ताणं विणयपाणं आवस्सगं। विणयवंतो णरो, सव्वजीव रक्खगो, सो लोगपियो होदि, कयावि अवमाणं पत्तं ण होदि। जई रामो जाएज्ज विणयं गहेज्ज, रावणो समो जीवणं होहिसि तुमं। रामं सव्वे जपंति, रावणस्स को वि णो। रावणस्स को णाम-इच्छगो को? विणय-रामो माण-रावणो। माणी रावणवंसजो आसि, अओ-विणयी हविऊण णिस्सेयस-सुहं लहेहि, इणमेव माणवत्तेसु सारो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

पात्र नहीं बनता। यदि राम बनता है तो विनयी बनो, नहीं तो रावण जैसा जीवन होगा। राम का सभी जाप करते हैं, रावण का कोई नहीं। और तो क्या रावण का तो कोई नाम भी नहीं लेना चाहता। विनय राम है, मान है रावण का रूप। जो मानी है वह रावण का वंशज है, अतः विनयी बनकर श्रेयस सुख को प्राप्त करो, यही मानवता का सार है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रिउत्तं पहुत्त-जणणी

विण्हूआद! अज्जव धम्मो तुज्झ देसिदे। जीवणे जिइत्तुं साहणं धम्मिग-करिअं करेहि णेसग्गिगं कुण। थिर-चित्तेण करेहि मायाए णो। वियारेहि! अम्ह सच्च-धम्मं करेमि णवि। णवरि णो दंसेज्ज? पदंसणं च्चिय धम्मो ण भणेहि, जओ पदंसणं धम्मो णो, धम्मो सो जम्हि अप्पदंसणं। तुं जत्तो पदंसावेसि तत्तो अप्पदंसण तुमए आसिवणेव। इणं पण्हं सयमेव कुण, ताव अज्जव धम्मं जाणेहि। अज्जवधम्म सीलो पागडि सहावं बोहेदि। सहाविगं दंसेदि। अज्जवो त्थि णिच्छलत्तं किरियाए माया अंसो णो। अप्प धम्म-

---

ऋतुता ही प्रभुता की जनक

हे विज्ञात्मन्! आर्जव धर्म तेरी वास्तविकता की ओर संकेत दे रहा है कि जीवन में जो साधना करो, धार्मिक किया करो, वास्तविक करो, निश्छल वृत्ति से करो बनावटी नहीं। सोचो! वास्तव में क्या हम सच्चे धर्मात्मा हैं या नहीं? कि मात्र दिखावा (बगुला भक्ति) तो नहीं कर रहे? दिखावा मात्र को धर्म मत कह देना क्योंकि दिखावे का नाम या प्रदर्शन का नाम धर्म नहीं। धर्म वह है जिसमें आत्मदर्शन हो। तू जितना प्रदर्शन करता है क्या उतना आत्मदर्शन तेरे पास है या नहीं? यह प्रश्न अपने पास से पूछ, तब कहीं आर्जव धर्म को समझ पाएगा। आर्जव धर्म शील, प्रकृति, स्वभाव का ज्ञान करता है। यानि प्राकृतिक (स्वाभाविकता) की ओर इंगित करता है। आर्जव यानि निश्छलता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहण सेट्ठा व मायाए सह बहुवो वि णिप्फलो। जओ माया परिणामा गिरगिडियं सरिच्छा। जो पडि समये णियरूवं परिवट्टंते तं सच्च णाणंपि णो होदि। जो किरियाए चिंतणे, तं वयणे मायं ण कुणेदि तस्स सच्च-अज्जव-धम्मो होदि। मणवयण-कायेहिं भिण्णत्तं एवं मायायारी। संसारे जइ को वि दुरप्पणो सो मायाई। जस्स मणवयणकाया एगेव सो सच्च-महाप्पणो। जई महप्पणस्स वंछा आसि ताव पुव्वं मायाए विसज्जणं कायव्वं। दियंबराइरिएहिं अज्जवविसये लिहिदं "उजुभावो अज्जवो" को सयलोवक्को वा इंण णाणं तहेव होदि, जाव संण्णिगड-संवासं होदि। जओ

यानि क्रिया में मायाचारी का सत् नहीं होना। अल्प धर्म साधना करना श्रेष्ठ है पर छल कपट सहित बहुत तपस्या व्यर्थ है। क्योंकि वक्र परिणाम गिरगिट के तुल्य होता है, जो कि हर समय अपना रूप बदलता रहता है, सही रूप का ज्ञान ही नहीं हो पाता। जो न कुटिल चिंतवन करता हो, न कुटिल वचन बोलता हो न कोई कुटिल क्रिया करता हो उसको ही सही मायने में आर्जव धर्म होता है। मन में कुछ, वचन से कुछ, और शरीर से कुछ इसी का नाम मायाचारी है। संसार में यदि कोई दुरात्मा है तो वह है- मायाचारी करने वाला। जिसका मन-वचन-काय एक है, वही सच्चा महात्मा है। यदि महात्मा बनना चाहते हो तो वक्रता का विसर्जन करना होगा। दिगम्बराचार्यों ने आर्जव को परिभाषित करते हुए लिखा है, "ऋजो-र्भाव: आर्जव:" सरल परिणाम होना ही आर्जव है। कौन सरल, कौन वक्र, इसका ज्ञान तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिदिगारेहिं भणिदं- "संवासिणो हु संवासिणं जाणेदि" जस्स चित्तंसयलं तेण सह सव्वं जस्स चित्त-कुडिलं तेण सहा ण कयावि। सहजत्तं एवं उण्णदिसोवाणं। धम्मो सयल चित्तेण सह होदि वक्क परिणदिदं समीवे धमस्स गधोपि णो। धम्मे आडम्बरं दंसावेंति, धम्मवेसं गहेदि, धम्मो तेण ण आसण्णे। मायाई तिरिय-आउ-बंधगो। जस्स तिरिय-जोणिए भयं होदि, तेण अप्प-रक्खाए मयाविर्त्तिं पुण्णरूवे मुच्चिदव्वं। सच्चणाणं तहेव होदि, जाव णिय णाणेहिं सुहुमालोयणं होदि। जहेव सयं सच्चादो णो परिचयो तहेव सपरिवट्टणस्स मग्गो विणो बुज्झेदि। अओ सयस्स सुहुमावलोयणं

तभी संभव है जब निकट जाकर निवास करें। क्योंकि नीतिकारों ने कहा है "रहवासी स: विचेष्टितम्" सहवासी ही सहवासी की चेष्टा जान सकता है। जिसका मन सरल है, उसके पास सब कुछ है एवं जिसका मन कुटिल है उसके पास कुछ भी नहीं। सहजता/सरलता ही उन्नति का सोपान है। धर्म सरल हृदयी के पास होता है। वक्र परिणामी के पास धर्म की गंध भी नहीं आ सकती। धर्म के नाम पर आडम्बर तो दिखा सकते हें, धर्म का वेष तो धारण कर सकता है, लेकिन धर्म उसके पास नहीं हो सकता। मायाचारी करने वाला तिर्यंचायु का बंध करता है। जिसे अशुभ योनि में जाने से भय है, उसे आत्म रक्षा हेतु मायाचारी पूर्ण रूपेण त्यागना अनिवार्य है। सच्चाई का ज्ञान तभी होता है, जबकि स्वयं की नग्न आँखों से स्वयं का सूक्ष्मावलोकन होता है। जब तक स्वयं की सच्चाई का परिचय न हो तब तक स्व के परिवर्तन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुणेहि। जस्स थिरो सयलो उण्णदो वरो जदि तस्स, जीवणे भग्गो सेट्ठसमसुण्णदो होज्जदि, तस्सिं अज्जव-धम्मे पाव-भंजणस्स अपुव्वसत्ती। माया वित्ती धुत्तकुडे पवेसावेदि। रिजुत्तं च सहजत्तं सव्वो विकट्ठं, महाणत्तं उच्चट्ठांण पवेसावेदि।

भो भह-परिणामि! णिय-जीवणे अज्जव-धम्मं गहेसु, जओ इमेव उग्घाडेज्जहि तुज्झ मुत्तिदारं। सहजत्तदाए रहिदो कस्स वि कज्ज सिद्धि असंभवो। जह वि सप्पो कुडिलं- चलेदि णियगहे सो अवक्केव पवेसेदि। अवक्केणं विणा पवेसं असंभवो। जधा सप्पो सट्ठाणं णा पत्तेदि एवं एसो जीवो अप्पं सहजत्तं विणा ण लहेदि।

का कोई मार्ग नहीं सूझता। अस्तु, स्वयं का सूक्ष्म अवलोकन करो। जिसका मन दृढ़, सरल, उन्नत एवं श्रेष्ठ हो गया, उसका जीवन एवं भाग्य भी समुन्नत, श्रेष्ठ होगा। आर्जव धर्म में अघ (पाप) को विखंडित करने की अद्वितीय शक्ति है। माया व्यक्ति को धूर्तता के शिखर पर पहुँचाती है, तो ऋजुता उच्चता, महानता के शिखर पर ले जाती है।

भो भोलेमानव! आर्जव धर्म को अपने जीवन मे उतारो, क्योंकि इसी से खुलेगा तेरा मुक्ति का द्वार। सरलता के बिना किसी भी कार्य की सिद्धि संभव नहीं। यद्यपि सर्प वक्र चलता है, पर अपनी वामी में वह सीधा ही प्रवेश करता है। बिना सीधे हुए प्रवेश संभव नहीं। सर्प जैसे स्वस्थान नहीं पहुंच पाता, उसी प्रकार यह जीव निज को सरलता के बिना प्राप्त नहीं कर सकता। अतः मायाचारी को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अओ मायावित्तिं अज्जव-धम्मादो णासेहि। जई सच्चसुहं वंछेसि, जीवणे दु सहजत्तगहणं परमावस्सगो, सरलत्तं एव दिव्वदारो। सहजतणेणं आद-संती। तासुं अक्खय-कोसो। सरलत्तं एव सहजत्तं होदि। अओ सरलत्तणेण सहजत्तं पत्तिउं णिय-जीवणं पावणं कुणेहि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

आर्जव धर्म से नष्ट कर। यदि सच्चा सुख चाहता है, तो जीवन में सरलता का परिवेश धारण करना परम अनिवार्य है, सरलता ही दिव्यता का द्वार है। सरलता में आत्म शांति का अक्षय भंडार समाविष्ट है। सरलता में ही सहजता का मेल है। अतः सरलता से सहजता को प्राप्त कर निज जीवन को पावन बना।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिल्लोहो त्थि विसुद्धप्प-सोवाणं

हे विण्हु-आद! विसुज्झ-भावाणं खु सोचं। मंणवयणकायाणं विसुज्झी हु अप्पिग-विसुज्झीए-लक्खणं। जहेव तिजोग-णिम्मलां ण होंति तहेव ण अप्पणिम्मलत्तं। तम्हि वि जाव तुज्झ वाया णिम्मला ण होदि ताव बाहिरा णिम्मला कया वि सा णो सउच-धम्मे उवओगी। बहिर णिम्मलत्तं मेत्तं अम्हे चिंतिज्ज तम्मिलिणो अंतसस्स णिम्मलत्तए दिट्ठिं ण दिण्णं अंतसे णिम्मलत्तं होसि वि णो? इणं कया चिंतियामि ण कि माए अपवित्तं वि को वत्थु आसि? अम्हाणं बहि दिट्ठी जा आसि। जाव णरस्स अंतसे वत्ता

आत्मिक पवित्रता का सोपान "निर्लोभता"

हे विज्ञात्मन्! पवित्र भावों का होना ही शौच है। "शुचेर्भावः इति शौचम्।" मन, वचन, काय की पवित्रता ही आत्मिक पवित्रता की सूचक है। जब तक त्रियोग की पवित्रता नहीं होगी, तब तक आत्मिक पवित्रता कदापि संभव नहीं। उसमे से भी जब तक तेरी मन वाणी शुद्ध नहीं होगी तब तक बाह्य पवित्रता कितनि भी बने रहे वह शुचिता धर्म में कार्यकारी नहीं। बाह्य पवित्रता तक ही हमने विचारा एवं उसी में निमग्न रहे, अन्तः शुद्धि की ओर झांक कर भी नहीं देखा कि हमारा अंतः करण शुद्ध है या नहीं? ये कभी सोचा ही नहीं कि मुझमें अपवित्र अन्य कोई पदार्थ भी है? हमारी बाह्य दिष्टि जो रही है। जब मानव के अंदर में बात घर कर जाती है कि तू अछूत है, मैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पवेसेदि, तुमं अछुदो सि, अहं पवित्तो, तस्स समये तस्स अंतसे अववित्ततं पवेसेदि। धम्मो को वि जाई-पंथ-संपदायस्स ण होदि, सो जीवमेत्तस्स होदि। धम्मो ण अणेगो सो एगो आसि, सो वत्थु-सहावो होदि। अंतरंगे परिणामे अण्णं पडि दुगुच्छा भावो ण होदव्वो पडि पाणिं-पडि सब्भावणस्स भावो होदव्वो। एसो भावो कस्स वि जाइस्स णाणी-अंतसे सक्केदि, सो चिय धम्मिगो। धम्मिगस्स चअणं बाहिरेण सह तस्स अंतसे वि पेक्खणीयं, अंतसे कियत्तु मिऊ? कम्हि जाइवाओ पंतवाओ दु ण होज्जा। धम्मिगो धम्मु व्व पइजणाणं होदि। साहू पुरिसो सव्व-पाणीणं सुह-चिंतगो होदि,

---

पवित्र हूँ, उसी क्षण उसके अंदर अपवित्रता प्रवेश कर जाती है। धर्म किसी जाति-पंथ, सम्प्रदाय विशेष का नहीं होता है, वह तो प्राणी मात्र का होता है।

धर्म अनेक नहीं होते। वह तो एक है और वह वस्तु का स्वभाव होता है। अंतरंग परिणामो में किसी के प्रति ग्लानि के भाव न होना, प्राणी मात्र के प्रति सद्भावना के भाव होना। और यह भाव किसी भी जाति के प्राणी के अंदर आ सकते हैं, वही धर्मात्मा है। धर्मात्मा की पहचान बाहर से करने के साथ उसके अंदर भी देखने की आवश्यकता है कि अंदर कितना मृदु है, जातिपांति की भावना का भूत सवार तो नहीं है। धर्मात्मा धर्म की भांति जन-जन का होता है। साधु-संत प्राणिमात्र के हितैषी होते हैं, पर देखना ये है कि मात्र चर्चा ही करते हैं कि वास्तव में प्राणियों का हित चाहते हैं। जो पेड़-पौधों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पेक्खियव्वं मेत्त बट्टाए सच्चा-सव्व-सुहेच्छु सिं। जो वणत्तो, पिपिलिया, हत्थी, माणुस्साण पज्जंत सव्व-रक्खाए भावो व ते रक्खंते सो खलु सच्च-धम्मिगो। जाव काम-कोह-आइ-भावस्स अभावो ण होदि, ताव सोअधम्मो ण कुरेदि। जस्स अंतसे बम्ह-भावो सो पवित्तो। "अदो बंभयारी एव णिम्मलो होदि, णवि कामी कोही। उदग-णिहाणेणं णिम्मलत्तं ण आगच्छेंति।

उत्तं च-'जम्मुणा जायदे सुद्दो, किरिया-दिजु भासदे।
सुदेण सोत्तिओ णेयो, बंभचेरेण बंभणो ॥

एवं सुइदस्स वट्टा करंतो णारायण-किण्हो युधिट्ठरे भणिदो- हे

लेकर चींटी, हाथी, मनुष्य आदि की रक्षा की भावना रखते हैं, एवं उनकी रक्षा करते हैं, वास्तव में वही व्यक्ति सच्चा धर्मात्मा है। जब तक काम क्रोधादि विभाव भावों का अभाव नहीं होगा तब तक शौच धर्म प्रकट नहीं हो सकता। जिनके अंदर ब्रम्ह भाव है वे पवित्र हैं।

"ब्रह्मचारिणामेव शुचित्वं न च कामक्रोधादिरतानां जल स्नानादि शौचेऽपि"। अर्थात् ब्रह्मचारी ही पवित्र होता है न कि काम क्रोधादि से युक्त। जल स्नान से पवित्रता नहीं आती है, कहा भी है-

"जन्माना जायते शूद्राः क्रिया द्विज उच्यते।
श्रुतेन श्रोतियो ज्ञेयो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मणः ॥"

अर्थात् जन्म से शूद्र होता है, क्रिया से द्विज कहलाता है, श्रुत (शास्त्रों) से श्रोतिय और ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण जानना चाहिए। इस प्रकार शुचिता की चर्चा करते हुए नारायण श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाण्डुपुत्त! किं अज्जोपायं तुम्मं सुइसत्तं णं जाणेसि? पिवत्तत्तं लहो कहं होइ? उद्गण्हाणेणं देह सच्छं होदि णं णवि पवित्तत्तं। तं पुण उदगेण अप्पा विसुद्धं कहं होदि? अदो उत्तं च गीदाए

"अप्पाणई संजमतोयपुण्णा सच्चावहा-सीलतडा दयुम्मी।
तत्थहिसेगं कुण पंडुपुत्तो, ण वारिणा सुद्धयदि अंतरप्पा॥"

हे मणिसि! णिल्लोह-वित्तीय आदा विसुज्झो होदि। दियम्बराइरिएण सोचधम्मं परिलच्छिउँ कहिओ- "परमत्ता दु लोह-जहणं सउच-धम्मो।" सउच्च-धम्मो परमवीदरागी तपस्सी दियंबराइयरियाणं अण्णे णो संभवेहि, जे इच्छं संधिदूण वेरग्गो

कहा- हे पाण्डुपुत्र! आपने क्या अभी तक शुचित्व को नहीं पहिचाना? पवित्रता कहां से प्राप्त होगी? जलस्नान से शरीर स्वच्छ हो सकता है, पर पवित्र नहीं हो सकता है। फिर उस जड़ जल से आत्मा पवित्र कैसे होगी। अत: गीता में कहा है,

"आत्मानदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहाशीलतटा दयोर्भिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्रं न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा॥"

अर्थात् जल से परिपूर्ण सत्य को धारण करने वाली, शीलरूप तट, और दयामय तरंगों की

धारक आत्मारूपी नदी है। हे पाण्डुपुत्र उसमें स्नान कर! क्योंकि अन्तरात्मा जल से शुद्ध नहीं होती। हे मनीषी! निर्लोभ वृत्ति से आत्मा शुद्ध होगी। दिगम्बराचार्यों ने शौच धर्म को परिभाषित करते हुए कहा- "प्रकर्ष प्राप्त लोभान्निवृत्ति शौचम्।" प्रकर्ष प्राप्त लोभ का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वियारजुत्तो, अप्पसाहणं जस्स परम-लक्खो, चरिया-चरचा जस्स एगा, तहेव समणस्स उत्तम सोच-धम्मो होदि, पुणरवि अम्हाणं पि अब्भासे सउच-धम्मस्स वड्ढमाणस्स आवस्सगो। कोहं सव्वपावाणं पिदू। अहिलाणं दुक्किदाणं बंधू। अओ लोहं चयित्ता अप्पआदं णिम्मलं कुण परमआदं होहि। लोहं चइदूण अप्पं कुण पवित्त।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

त्याग करना शौच धर्म है। वास्तव में उत्तम शौच धर्म परमतपोधन वीतरागी दिगम्बर श्रमणों के ही पूर्णत्या संभव है जिन्होंने इच्छाओं को रोककर वैराग्य रूप विचारों से युक्त होकर, आत्मसाधना ही जिनका परम लक्ष्य बन चुका, चर्या-चर्चा जिसकी एक है, उसी श्रमण के उत्तम शौच धर्म होता है, फिर भी आप सभी के लिए भी अभ्यास रूप से शौच धर्म की ओर अग्रसर रहने की परम आवश्यकता है। क्रोध सभी पापों का बाप है। संपूर्ण दुष्कृत्यों का सखा है। अतः लोभ का त्याग कर अपनी आत्मा को पवित्र कर परमात्मा बनो।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सच्चं खलु पावणं

हे चेयण! सच्चेव जीवणस्स परम कसवट्टिगा, जस्स मज्झेण पाणी-अंतसस्स परिक्खा होदि। परिक्खा-फलं फुरेदि। सच्चं आदस्स आदा। सच्चेण रहिदा सव्व त्ति धम्म-किरिया णिरसेज्ज पाणि! वियारेहि, अहं मिच्छं कहिऊंण अण्णं वंचिदं, किण्णु आगमो कहेदि तुमं अण्णेसिं ण वंचेसि णियं वंचियं। अण्णेसिं वंचणं अप्प-वंचणं। अण्णं छलं अप्प छलं। मोसासच्चो विउलपावाणं जणगो। एग्ग असच्चं आवरट्टुं णरो बहु-असच्चं कहेदि। एरिसा कया वि णो जादा अग्गिं तुल्लाओ ढक्किआ, सा खलु फुरेरसदि। एवं असच्चं कत्तो वि ढक्केदि सा तं पगडेणं

सत्यता ही पवित्रता

हे चेतन! सत्य ही जीवन की परम कसौटी है, जिसके माध्यम से प्राणी के अन्तस् की परीक्षा हो जाती है, एवं शीघ्र परीक्षा परिणाम भी प्रकट हो जाता है। सत्य आत्मा की आत्मा है। सत्य रहित सारी धर्म-क्रियाएं खोखली हैं। हे प्राणी! विचार कर कि मैने झूठ बोलकर दूसरो को धोखा दिया है, पर सिद्धांत कहता है तूने दूसरों को धोखा नहीं, स्वयं के लिए धोखा दिया है। दूसरों को धोखा देना स्वयं के साथ छलावा है। झूठ या असत्य बहुत सारे पापों का जनक है। एक असत्य को छुपाने के लिए व्यक्ति कई असत्य बोलता है। पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि अग्नि को रुई में छिपा लिया जाए, वह तो प्रकट हुए बिना नहीं रह सकता। सत्य को छिपाया नहीं जाता, दिखाया नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विणा ण होदि। सच्चं ण ढक्केज्जं, ण पेच्छावेयव्वं। सो सयमेव जोइ पुंज-दिवायरो। कत्तोवि असच्च मेहं, दिवायरं ढक्केदि परण्णु उज्जोवायं ण भाणुस्स विणासो। एवं असच्चवायी सच्चधम्मे इच्छाणुसारेण कुहेदुस्स प्रहरेदि किण्णु सूज्जस्स ण विणासेदि। सच्चं दुक्खे जोवेदि दु, तं णिय आभं ण मुंचेदि। जयो खु सच्चस्स होदि ण असच्चस्स। पडागो सच्चस्सेव दोलेज्जदि असच्चस्स पडागो ण दो लेज्जदि। सच्च-धम्मो तहेव होदि जाव अम्हाणं वायणे-संजमो होदि। जो जणो अहि-बोल्लदि व अंतसे विसयो ण होदि तांव सो एत्थ-तत्थ बोल्लेदि, जम्मि असच्चस्स अंसो होदि। सच्चस्स ठाणो मुहे ण चित्ते

जाता, वह तो स्वयमेव दिव्य ज्योतिर्मय सूर्य है। कितने ही असत्य रूपी बादल छा जाए, सूर्य को ढक लें, पर आज तक बादलों द्वारा सूर्य का विनाश नहीं हो पाया। इसी प्रकार असत्यवादी सत्यधर्म पर चाहे कितने कुहेतुंओं के बादल तैयार करें, लेकिन सत्य रूपी सूर्य का विनाश नहीं कर सकता। सत्य को कष्ट में जीना पड़े, पर वह अपनी चमक नहीं खो सकता। विजय सत्य की ही होती है, असत्य की कदापि नहीं। पताका सत्य की ही फहरायी जायेगी, असत्य की नहीं। सत्यधर्म तभी संभव है, जबकि हमारी वाणी का संयम होगा। जो व्यक्ति ज्यादा बोलता है तथा जब उसके अंदर बोलने का विषय नहीं रहता, तब वह यहाँ-वहाँ की चर्चा प्रारंभ कर देता है, जिसमें असत्य का पुट मिला होता है। सत्य का स्थान मुख नहीं हृदय है। सत्य हृदय से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आसि। सच्च-मणेण फुरेदि। सच्चम्हि सहजत्तं-होदि। सच्चे अहिमाणस्स को वि ठाणं णवि सच्चस्स गवक्खे पडिसमये उगघाडो होदि। सच्चम्हि भासमाणं आवरणं वा अणाणुसासणीग आवरणस्स ण आवस्सगं, जओ सच्चं ण उत्तरीय भासस्स णाम, तं णरस्स पाणं। माणुसस्स माणुसत्तं एव सच्चं। सच्च-समत्थणस्स अणवस्सगो। सच्चं तु सच्चं, सच्चस्स किं सच्चं होदि। मिसरिया महुरा होदि, णं कोवि ण जाणावेदि महुस्स सादो कस्स होदि? महुरा मिस्साआ सहावो। जिण सत्थो कहेदि गुणस्स ण कोवि गुणं, ण सहावस्स को सहावो, एवं सच्चस्स वि को समत्थगो ण होदि। सच्चस्स इदं णग्गसच्चं।

प्रस्फुटित होता है। सत्य में सहजता होती है। सत्य में दम्भता का कोई स्थान नहीं। सत्य का झरोखा हर समय खुला रहता है। सत्य पर चमकीले या नं. 2 के लेबिल लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि सत्य ऊपरी चमक का नाम नहीं है, वह तो इंसान की जान है। यानि इंसान की इंसानियत का नाम है सत्य। सत्य के लिए समर्थन की आवश्यकता नहीं। सत्य तो सत्य है, सत्य क्या सत्य होगा? मिश्री का स्वाद मीठा होता है, पर कोई बतला सकता है मीठे का स्वाद कैसा होता? मीठा मिश्री का गुण है। जैन सिद्धांत कहता है गुण का कोई गुण नहीं होता, उसी प्रकार सत्य का भी कोई अन्य समर्थक सत्य नहीं होता है। सत्य का यह नगन सत्य है। जिसके जीवन में सत्य के संस्कार पड़ जाते हैं उसे फिर असत्य की आंधी हिला नहीं सकती, वह जीवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जस्सिं जीवणकाले सच्चस्स लगारं लग्गेदि, तस्स असच्चस्स झंझाबादो चला ण पावेदि, सो आजीवणे फलंति व खादिस्स उक्किट्ठट्ठाणं छुवेदि। सच्चधम्मिगं कहुवयण अजिरणत्तो सुरक्खा-आवस्सगो, व तस्स सुरक्खत्थं वंछा वि महुरा सुट्ठवयणाणं चुण्णं गहणीयं। मिउभासिदो सव्वस्स पिओ होदि जओ वक्कसावाया सव्वस्स अच्छाईसुं किर-किरावेइ। किं कोकिला सव्वं पिया णो? वायस्स कक्कसाझणी कस्स पिओ होति? परहुत्तो केण कस्स दिण्णं व काओ केण कस्स लिण्णं, सो किं विक्किदं? सच्चं वदेज्ज चरेज्ज इंदजाल-किण्णं। हे साहग! पर-दुक्खकारी वयणं जदणपुव्वं चइयव्वं। जओ मम्म-

---

भर फलता है एवं यश के सर्वोच्च स्थान को स्पर्श करता है। सत्यधर्मी को कठोर वचन रूप अर्जीण से बचना अनिवार्य है या उसे बचाने के लिए द्राक्षा से भी मधुर सुभाषित वचनों का चूर्ण लेना होगा। मृदुभाषी सबको प्रिय होता है जबकि कर्कश वाणी सबकी आँखों में किरकिराती है। क्या कोयल सबके प्रिय नहीं होती? कौए की कर्कश वाणी किसे सुहाती है? यद्यपि कोयल ने किसी को क्या दिया और कौए ने किसी से क्या लिया, उसने क्या बिगाड़ा? सच है बोली-बोली में छिपी है जादू किरण। हे साधक! पर पीड़ाकारी वचन प्रयत्न पूर्वक छोड़ देना चाहिए। क्योंकि मर्म भेदी वचन बोलना भी हिंसा के कारण है और हिंसा संसार वृद्धि का कारण होती है। दिगम्बराचार्यों ने सत्य धर्म की बहुत ही सुंदर परिभाषा की है जो दूसरे के लिए संताप करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेइं वयणं पि, आरंभस्स हेदू आरंभो भवस्स बुडिढकारो। दियम्बराइरियेहिं सच्च-धम्मस्स अई सुट्ठु परिभासेइ। जं अण्णं तासेदि एरिसं वयणाणं चइदूण सपर-हिदगारीवयणं भासणं सच्चधम्मो। जे वि महाण-पुरिसा जादा ते सव्वे सच्च-अणारंभ आईदो य महाणो जादो। जइ अम्हाणं महाणत्तं सोहेदि, महाणसेणिए आयव्वं, अदस्सोत्तम होयव्वं तो महाण पुरिसाणुसारेण सच्च-अणारंभो धम्मस्स गहित्ता चरियाओ जीवणस्स सफलियव्वं। "सच्चमेव सेट्ठधम्मो" अदेव सेट्ठ धम्मस्स सरणं गहेसु चेदणसारो त्थि सच्चधम्मो॥

"जयदु णमोत्थु सासणं"

हो, ऐसे वचनों का परित्याग कर, स्वपर हितकारक वचन बोलना सत्यधर्म है। जितने भी महापुरुष हुए वे सब सत्य, अहिंसा आदि के माध्यम से ही महान बने। यदि हमको महान बनना है, महानता की श्रेणी में आना है, आदर्शोत्तम बनना है, तो महापुरुषों के अनुसार सत्य-अहिंसा धर्म को धारण कर चर्या द्वारा जीवन में सकार करना होगा। सत्य ही परम धर्म है। अतएव परम धर्म का आश्रय लो यही चैतन्य का परमसार है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संजमो त्थि सव्वत्थ सुंदेरो

हे णाण पुंज! उत्तम-यंजम-धम्मो आदसिज्झिस्स अणुवं मंतं। इमस्स अभावे आदसिज्झी असंभव। संजमो सो सोरहो, जस्स आद सुंदेर खिल्लेदि, संजमो मण-वयण-कायेण असारं पवित्तिं रूद्धत्थं णिअंतगो। जस्स जीवणे संजम-णिअंतगो ण, तस्स मणस्सो जीवं कत्थं पि पडावेदि। संजमो जीव वाहणस्स णिअंतगो। संजमेण रहिदो अत्थो असंजमीद-जीवण पसुव्व जीवणं। संजमेव सव्वसेट्‌ठो आदसुंदेरो व माणवस्स अणोहो अलंकारो। संजम-सुरहीदो, जो सुवासिदो व अण्ण-पाणीणं पि गंधावेदि। संजतस्स

आत्मा का अनुपम सौन्दर्यः संयम

हे ज्ञानस्वरूपी पुञ्ज! उत्तम संयम धर्म, आत्मसिद्धि का अद्‌भुत मंत्र है। इसके अभाव में आत्मसिद्धि संभव नहीं। संयम वह सौरभ है, जिससे आत्म सौंदर्य सुरभित होता है। संयम मन वाणी की अनर्गल प्रवृत्ति को रोकने के लिए कंट्रोलर है। जिसके जीवन में संयम रूपी लगाम नहीं है, उसका मनरूपी घोड़ा जीव को कहीं भी पटक सकता है। संयम जीवन रूपी गाड़ी का ब्रेक है। संयम के बिना अर्थात् असंयमित जीवन पशुत्व का जीवन है। संयम ही सर्वश्रेष्ठ आत्म-सौंदर्य एवं मानव का अनोखा आभूषण है। संयम सुरभि जिसके पास है वह स्वयं में सुभाषित होता ही है, साथ ही अन्य प्राणियों को सुरभित कर देता है। संयमी की वाणी एवं चर्या में एक अनोखा ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाया-चरियाए वा एगोभिण्णेव सुट्ठुत्तं होदि। संजदो बालओ, विद्धो वा परं सो अप्पणो विद्धो होदि, लोग पुज्जो होदि, पर लोगम्हि अणंदसुहाणं भोत्ता होदि। किण्णु सच्चं होयव्वं। संजमो अंतसेण व बहिरेण दो विहेण होदव्वं। जओ भाव-संजमेव सिद्धिदायगो। भाव-संजमेण रहिदो, बाहिंर संजम वेसं लोगे पसंसावेदि अप्प-पसंसं णो करावेदि संजदो एव सच्चो माणवो। मणवयणकायाणं संजमो अणिवारियो होदव्वो। तिण्हं संजदा एवं सच्च संजमो।

हे विण्हु! आदस्स पडो विसयपंकेण मलिणेदि। इणं विसयत्तो सच्छो णो सक्केदि। वासणा-विसयसुह-पंकं णिम्मलत्थं

सौष्ठव होता है। संयमी चाहे बालक हो या वृद्ध पर वह अपने आप में वृद्ध होता है, लोक पूज्य होता है, परलोक में अनंत सुख का भोक्ता होता है। किन्तु हो वास्तविक। संयम अंदर बाहर दोनों प्रकार से होना चाहिए। क्योंकि भाव संयम ही सिद्धि दायक होता है। भाव संयम से रहित बाह्य संयम का भेष लोक प्रशंसा करा सकता है, आत्मा-पंशंसा नहीं करा सकता। संयमित जीवन जीने वाला ही सच्चा मानव है। मन-वचन-काय तीनों संयमित होना अनिवार्य है। तीनों की संयमित्ता ही सच्चा संयम है।

हे विज्ञ! आत्मा की चादर विषय पंक से दूषित हो रही है। ये विषयों से स्वच्छ नहीं की जा सकती है। वासना पंक को प्रक्षालित करने के लिए संयम नीर ही समर्थ है। आत्मा की कालिमा संयम नीर से ही धुलेगी और सही संयम ही जीवन का सुरक्षा कवच है। दुर्ग के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संजमणीरेव समत्थो। आदस्स कलंगो संजम-णीराओ च्चिअ मुच्चेज्जदि व सच्च-संजमेव जीवणस्स सुरक्खिदव्वं। दुग्गेणं विणा जहेव रायस्स णो सुरक्खा होदि, तस्सोवरिं कोडिओ विवदाओ व सत्तुणं पहारो संभवदि, तहेव आदरायस्य सुरक्खा संजम-दुग्गेण संभवो, अण्णहा णाणाविहस्स विआरिभाव-सत्तू अक्कमणं करिंदु, आदमहारायं णिब्बलं करित्ता असंजम-घण-वणखेत्ते पडेहिंति। दुहादो चयस्स सयलो वायो आदसंजमेव। जस्सिं जीवणे संजमो तस्सिं जीवणे संती। संजमे संती गहणं सो खलु करेदि जस्स संजमस्स साहीणत्तं सकल्लाणत्थं गहिदं। अण्णेसिं कहाओ

बिना जिस प्रकार सम्राट की सुरक्षा नहीं होती, उसके ऊपर करोड़ो आपत्तियाँ एवं शत्रुओं का आक्रमण संभव है, उसी प्रकार आत्मा सम्राट की सुरक्षा संयम रूपी दुर्ग से ही संभव है, अन्यथा अनेक प्रकार के विकारी भाव रूपी शत्रु आक्रमण कर इस आत्म सम्राट को निर्बल करके असंयम रूपी घोर अटवी में डाल देंगे। दुःखों से छुटने का सरल उपाय आत्मसंयम ही है। जिसके जीवन में संयम है, उसके जीवन में शांति है। पर संयम में शांति का वरण वही कर पाएगा, जिसने संयम को स्वाधीनता से स्वकल्याण के उद्देश्य से स्वीकारा। दूसरे के कहने से या दूसरों को देखकर किसी विषमता के द्वारा धारण किया गया संयम अशांति एवं दुःख को ही महसूस कराएगा क्योंकि संयम में असंयम की याद सताएगी। परिस्थिति ने संयमी बनाया तू बनना नहीं चाहता था। ऐसा संयम कष्टकारी होता है न कि स्वाधीनभाव सहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अण्णेसिं पासित्ता कओ। विसमत्तं धारिदो, संजमो असंतिं व किलेसं एव अणुभावेदि, जओ संजमे असंजमस्स अहिण्णाणं पावेदि। पइट्ठीदी संजमो गहावेदि तुमं ण इच्छेदि। एरिसो संजमो-कट्ठवओ होदि, ण अबंध-भावेण सह गहिदो संजमो। संजमी जीवणं अबंधजीवणं। अबंधेण सहगहिदा संजमसत्ती अजेया होदि। तं को परत्थं णो कायव्वं। सच्च-संजमग्गे णमिदूण गच्छेज्जदि। अई उस्सग्गं किदं पहू पस्सणाहो संजमें थिरभुआ कमडो परत्थो भविदूण गच्छिदो। गांधीजी चाग संजम-तव-बलेण व भरहं खेत्तं अबंधकरावेदि। जेणं पहावेणं असंजमी विएसीणं देस मुच्चित्ता

धारण किया गया संयम। संयमी (साधु) जीवन स्वाधीन जीवन है। स्वाधीनता के साथ स्वीकार करने पर संयम की शक्ति अजेय होती है। उसे कोई परास्त नहीं कर सकता। सत्य संयम के आगे माथा टेक कर चला करता है। कमठ को भगवान पार्श्वनाथ जी के चरणों में झुककर जाना पड़ा। अति उपसर्ग किया, पर भगवान पार्श्वनाथ संयम में अडिग रहे, कमठ को पराजित होकर लौटना पड़ा। गांधी जी त्याग-संयम सत्य के बल पर ही भारत स्वतंत्र कर पाए जिसके प्रभाव से असंयमी अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना पड़ा। संयम का तात्पर्य पराधीनता नहीं है बल्कि स्व का स्व पर अनुशासन है यानि आत्मानुशासन है। जो आत्मानुशासन की सामर्थ रखता है, वही त्रिलोकीनाथ बनकर, त्रिलोक पूज्य होकर, सारे विश्व पर शासन करने वाला परमात्मा बन जाता है। जसने स्वपर शासन नहीं किया वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गच्छिदा। संजसमत्थो णो पराहीणत्तं, किण्णु णियस्स णिए, अणुसासणं अत्थं अप्पा-णुसासणं। जो अप्पणुसासणे समत्थो, सो च्चिय तिलोगिणाह बणित्ता, लोग पुज्जो हविऊण, अखिल विस्स सासिदो परमप्पा होदि। जो अप्पम्हि सासणं ण किदा सो अण्णेसुं कस्स सासणं कुणदि? जइ कुव्वेदि सो हासपत्तो होदि। जो संजम-जणणी-करजा गहिदा सो णियमेण मोक्ख-महल-पज्जंतं गच्छेज्जा व करजा मुच्चिदा सो णियमेण भमेस्सदि।

मज्जदाए वासो संजमो। मज्जादाबहिं किंवि किदो असंजमो। एवं वित्तीकुणंतो जीवो लोग-समाज-रासटं परिवार-

---

दूसरे के ऊपर शासन कैसे कर सकता है? करता है तो हँसी का पात्र बनता है। जिसने सयंम रूपी माँ की अंगुली थाम ली वह नियम से मोक्ष महल तक पहुँच जाएगा यदि उंगली छूट गई तो नियम से भटक जाएगा।

मर्यादाओं में रहना संयम है। मर्यादा के बाहर किसी प्रकार के कृत्य को करना असंयम है। इस प्रकार की प्रवृत्ति करने वाला जीव लोक, समाज, राष्ट्र, परिवार, बंधु, धर्मात्मा आदि की दृष्टि से गिर जाता है, किन्तु जो स्वपद की मर्यादा में चलता है वह अपने व्यक्तित्व से सारी दुनिया को स्व के प्रति झुका लेता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व ही व्यक़्ति को महान बना देता है। व्यक्ति चाहे गरीब हो या अमीर, चाहे छोटा हो या बड़ा, परंतु व्यक्तित्व का धनी ही सर्वश्रेष्ठ है। मनीषियों ने ज्येष्ठ की पूजा नहीं की श्रेष्ठ की पूजा की है। भारतीय संस्कृति हर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंधु-धम्मप्पणाणं दिट्ठीए पडेदि, जो सपद मज्जादाए चलेदि सो णिय वत्तितंत्तो अखिलं विस्सं अप्पं पडि णमावेदि। मणुजस्स मणुजत्तं उक्किट्ठो कुव्वेदि। जणा इच्छेज्ज धणेण हीण-जुत्तो, सुच्छो-थूलो वा किण्णु मणजत्तं धणेव सेट्ठो आसि। मणिसिणा, जेट्ठपूया णे सेट्ठपूया किदा। भरहीअ-परम्पराए पडिसमये गुणाणं पूजिदं, णो जणाण। रावण-समीवे वेभवं आसि परण्णु असंयमी, अओ लोगणिंदा-पत्तो। रामेण सह ण सुवण्णलंका, तेण सह संजसमो आसि, अओ ते पुज्जीआ, अज्जोवायं आसि। मज्जादाए जीविदो पुरिसोत्तमरामो। अओ राम-महावीरस्स णाम गहिदव्वं। परं

समय गुणों की पूजक रही है, व्यक्ति की नहीं। धन वैभव को भारतीय संस्कृति ने कभी नहीं पूजा। रावण के पास वैभव तो था लेकिन असंयमी था, इसलिए लोक निंदा का पात्र बना। राम के पास भले ही सोने की लंका नहीं थी। पर उनके पास संयम था इसीलिए वह पूज्य थे और आज तक पूज्य हैं। मर्यादा से जीने वाले पुरुषोत्तम राम थे। इसलिए राम महावीर का नामं लिया जाता है किन्तु रावण, कंस, जरासंघ के नाम की माला नहीं फेरी जाती। जो सयंम के साथ जीता है वह सर्ववंध स्वयमेव हो जाता है। माना कि कोई वाहन चालक है वह यदि संयमित नहीं चलता तो किसी न किसी से टकराएगा, मौत के घाट भी जा सकता है। कारण बना असंयम। इसीलिए जैनाचार्यों ने कहा- "प्राणीन्दियेष्वशुभवृत्तेविरंति संयमः"। प्राणी एवं इंद्रियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रावण-कंस-जरासंघणामाणं सग्गं णो चरेज्ज संजम-जीवी सव्ववंदो सयमेव होज्जदि। वाहणचालगो जइ संजमेण सह ण चलेदि तदो केणवि भिडेज्जदि, मुच्चुट्ठाणं पि पासक्केदि। कारणं जादो असंजमो। अओ जिणइरियेहिं वुत्तं-"पाणी व इंदियं पडि असुह वित्ति णिरोहो संजमो।" संजमेण सह एक्क खणं पि जीवणं सेट्ठं अमीयव्वं, किण्णु असंजमेण सह सहस्स कोडियो वि जीवणं ण सेट्ठो। अओ अप्प-परिणदिं संजमी कुव्वेसु। आदं परमादस्स वंछा जदि अत्थि, तो संजम-पहे चलेसु।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

के प्रति अशुभ प्रवृत्ति का निरोध संयम है। संयम के साथ एक क्षण भी जीना श्रेष्ठ है, अमृत तुल्य है, परंतु असंयम के साथ सहस्र कोटि वर्ष भी जीना अच्छा नहीं है। अतः अपनी परिणति संयमी बनाओ। आत्मा को परमात्मा बनाने की इच्छा है तो संयम-पथ पर चलो।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तवत्तो दिप्पेज्जा

रे माणव! मिट्टीए घडस्स जोग्गत्तं सि, किरियं विणा घडं णो घडेदि। खीरे घयो अत्थि परं घयत्थं पुण्ण किरिया कायव्वं। किरियं विणा खीराओ घयस्स लाहो असंभवो, एवं आदम्हि परमआदसत्ती अओ आदाए परमादा सि। पर जास टंकणीए विणा पत्थराओ पडिमा ण उक्किण्णेदि तहेव तवेणं विणा आदा परमादा णो होदि। तव-धम्मविसये दियम्बराइरियेहिं भणिणदं- "कर्मक्षयार्थं तप्यते इति तपः" जे कम्मखयत्थं तविदव्वं सो तवो। जं तवेहि सो भासेहि। जइ सुवण्णपत्थरं ण तवावेदि ताव सुवण्णं पि ण लहेदि सुवण्णपत्थरस्स तावाओ चिचय सुवण्ण लहेहिदिं।

चमकना है तो, तपो

रे मानव ! मिट्टी में घड़ा बनाने की योग्यता है पर बिना क्रिया किए मिट्टी घड़ा नहीं बन सकती। दुग्ध में घृत है लेकिन घृत प्राप्त करने के लिए प्रक्रिया पूरी करनी पड़ेगी। बिना प्रक्रिया के दुग्ध से घृत संभव नहीं। इसी प्रकार आत्मा में परमात्म शक्ति मौजूद है यानि आत्मा में परमात्मा विराजमान है। पर जैसे बिना छैनी के पाषाण से प्रतिमा नहीं निकलती, वैसे ही बिना तप के आत्मा-परमात्मा नहीं बन सकती। तप धर्म की परिभाषा करते हुए दिगम्बराचार्यों ने कहा- "कर्मक्षयार्थ तप्यते इति तपः"। जो कर्म क्षय के लिए तपा जाता है वह तप है। जो तप जाता है, वह चमक जाता है। यदि स्वर्ण-पाषाण को तपाया नहीं जाए तो स्वर्ण प्राप्ति संभव नहीं, स्वर्ण पाषाण को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छा-णिरोहणं जहत्थो-तवो। तवस्सि भेसं गहिदं परण्णु इच्छा तहेव, ताव तवस्सि-भेसमेत्तं तव पयोजणं ण सिज्झेदि, मेत्त जणाइं असमण्णं किदं व सआदस्स अवमाणं असि। मणइंदियाणं दमणं तवस्सीणं अणिवारियं इमस्स दमणं व णिग्गओ तवाहावे णो संभवो। जओ मण-इंदिए णिग्गहत्थं सेट्ठो साहणो तवो। तवाओ चयस्स हेतू तवस्सिणं तवे हिणत्तं। तवस्सी जई आगमानुयारेण तवेदि ताव कयावि ण णियट्ठाणं मुच्चेदि। इमस्स हेदू अहिसत्ति तवो या सत्तिलुवक्कावेइ तवमाणो। ते दोण्ण वि णियट्ठाणं चुआवेदि। जहासत्ती तवाचरिय व्वं, जहा वट्टमाणे साहगाणं कण्णवासणिरोहं आगमे णिद्दिट्ठं। जओ वत्तमाणे चतुत्थकाले जस्स

तपाने से ही स्वर्ण की प्राप्ति होगी।

इच्छ निरोध करना वास्तविक तप है। तपस्वी का वेश धारण कर लिया पर कामनाएं ज्यों की त्यों मौजूद रहीं तो कोरा तपस्वी वेश तप का प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकता, मात्र जनसमुदाय को पागल बनाना है और स्व आत्म-वंचना करना है। मन और इंद्रियों का दमन करना तपस्वी के लिए अनिवार्य है और इनका दमन या निग्रह तप के अभाव से संभव नहीं। क्योंकि मन-इंद्रियों को निग्रह करने वाला साधन यदि कोई है तो वह है तप। तप से च्युत होने का कारण यदि कोई है तो वह है तपस्वियों की तपस्या में कमी तपस्वी यदि आगम विहित विधि से तपश्चरण करता है तो वह कभी भी अपने पद से हट नहीं सकता। पर कारण यह बनता है या तो स्वशक्ति से ज्यादा तपस्या कर लेता है या फिर शक्ति को छिपाता है। ये दोनों ही स्व-पद से च्युत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णो गत्तसत्ती, पुणरवी को साहगो काणणे वसेदि, सो णियसत्तिं अइक्कमणं करित्ता अधिभिण्णं किरियं करेदि। सक्केदि जीवत्तो वि चुक्केज्जदि अओ सिज्झंते वण्णिदो-

"जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणे जीवो पावइ अजरामर ठाणं॥"

जह अग्गीए विणा असणं ण पच्चेदि तहेव तवग्गीए तवेणं विणा कम्मखयो असंभवो, व सच्चसुहगहणं कयावि णो संभवा। विचिंतेहि! तुह सयं चिंतेहि! तवेणं रहिदो अज्जोपायं कयावि मोक्खो सि किं? या अप्पलद्धिं पत्तिअं किं? ण। तवेव अप्प-इडिढस्स मूल-मंतो सम्मतवो होयव्वो। मिट्टआ जाव सणिग्धा

करा सकते हैं। यथा-शक्ति तपश्चरण करना चाहिए। जैसे वर्तमान (कलिकाल) में साधकों के लिए जंगल वास का निषेध आगम में है। क्योंकि वर्तमान में चतुर्थकाल जैसी शारीरिक शक्ति नहीं है फिर भी कोई साधक जंगलवास करता है तो वह अपनी शक्ति से अधिक अलग क्रिया कर रहा है। हो सकता है जीवन से भी हाथ धोना पड़े इसलिए आगम में उल्लेख किया गया है-

"जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्कई तहेव सद्रदहणं।
सद्दहमाणे जीवो पावई अजरामरँ ठाणं॥"

अर्थात् जितनी शक्ति हो उतना तप करो, यदि शक्ति नहीं है तो आप श्रद्धान करो। श्रद्धान करने वाला मानव भी जन्म मरण का नाश करके क्रमशः निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार अग्नि की अनुपस्थिति में भोजन आदि का पकना कठिन है उसी प्रकार तपाग्नि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होदि तहेव पाएण रुंधेदि। जाव सो रुक्खिडो घडे होसि व अग्गीए तवेदि तं सो खलु मांगलिग-कज्जेसु मंगल-कलसो होऊण सोहग्गसारा मायाणं सीसे पधारेदि। खिरं तवेउं या जमउ दहिं होदूण णो मथेहि ताव णवणिदं कस्स लहेदि? जाव णवणिदिं तवेसि तव णिम्मल-घयं होदि। परण्णु घयेण पुणो ण होदि घयं कत्तो वि उद्गेण अंतसे पडावेसि किण्णु सं सयमेव उवरिं आसि खीरं, कस्सवि आणिये ण आवस्सगो। जो सतावेदि तं तवस्सिआद सयमेव उवरिंगमंतो परमादा होदि। जस्स घयस्स पुणो खीरं ण होदि। तहेव सो आद पुणो संसार-दुहाइं पत्तेउं संसारे ण आगच्छेदि।

आयरिएण तवस्स बारिह-भेयं किदं-छट्ठ बाहिरो-अंतसो

मं तपे बिना कर्मक्षय असंभव है एवं सच्चे सुख की प्राप्ति कदापि संभव नहीं। चिंतवन करें! आप स्वयं सोचें। तप के बिना आज तक किसी को मोक्ष हुआ है क्या? या आत्म वैभव प्राप्त हुआ, नहीं। तप ही आत्मिक संपदा का मूल मंत्र-तंत्र है। किंतु तप सम्यक् होना चाहिए। मृत्तिका जब आर्द्र होती है, तब तक ही पैरों से रोंदि जाती है। जब वह सूखकर घड़ा बन जाती है एवं अग्नि में तप जाती है तो

वहीं मांगलिक कार्यों में मंगल कलश बनकर सौभाग्य-शाली माताओं के सिर पर विराजमान हो जाती है। दुग्ध को जब तक तपाकर या जमाकर दही बनाकर नहीं मथोगे तब तक मक्खन की प्राप्ति कैसे होगी? और जब मथकर मक्खन को तपाते हैं तो शुद्ध घी बन जाता है। अब घृत से पुनः दुग्ध नहीं हो सकता। घृत को कितने ही गहरे पानी में डाल दो पर वह स्वतः ऊपर आ जाता है, किसी को लाने की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वा। बाहिरो तवो अत्थो जो बहिरेण दिक्खदि। अंतरंग-तवो अत्थो जो सामण्णदया ण दिक्खेदि।

छह बाहिर तवो-

1. <u>अणसणं</u>- णिरवेक्ख-भावेण संजम-सिज्झं रागोच्छेयं व इंदिय जय लक्खेण असेसं अण्ण-जल चागं अणसणं।

2. <u>अवमोदरियं</u>- संजमं जग्गेदु, पमाय-परिहारत्थं, सज्झाए-झाणस्स व सिज्झत्थं आवस्सगदाए ऊण-असणं गहणं।

3. <u>वित्ति-परिसंखाणं</u>- भग्ग-परिक्खाए व राग-दोसस्स अहावत्थं मुणिरायो विहिं गहिऊण णिग्गसेदि। जहा-जइ दो अहं कलसियाइ गहिऊण मिलेज्जदि त्तं आहारं गहेमि अण्णहा णो।

आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी प्रकार जो सम्यक् तप करता है, उस तपस्वी की आत्मा स्वतः उर्ध्वगामी हो परमात्मा बन जाती है। जैसे घृत पुनः दुग्ध नहीं होता वैसे वह आत्मा पुनः संसार के दुःखों को प्राप्त करने संसार में नहीं आती।

आचार्यों ने तप के बारह भेद किए, 6-बाह्य और 6-अंतरंग। बाह्य का तात्पर्य जो दिखने में आते हैं। अंतरंग तप यानि जो समान्यतः लोगों के दिखने में नहीं आते। छः बाह्य तप हैं-

1. <u>अनशन</u>- बिना किसी अपेक्षा के संयम सिद्धि, राग उच्छेद एवं इन्द्रियों को वश में करने के उद्देश्य पूर्ण अन्नजल का त्याग करना।

2. <u>आवमौदर्य</u>- संयम जाग्रत रखने, प्रमाद के परिहार के लिए, स्वाध्याय एवं ध्यान की सिद्धि के लिए भूख से कम खाना।

3. <u>वृत्ति परिसंख्यान</u>- भाग्य की परीक्षा एवं राग-द्वेष के अभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4. <u>रस परिचागं</u>- इंदिय-जयत्थं व इंदिय-णिग्गहत्थं घयाई सड रसाणं व एगं दो रसाणं चागो।

5. <u>विवित्त-सेज्जासणं</u>- एगांद, इत्थी, पुरिसो, बालओ, सडो, पसू आइरहिदो व णिज्जंदुअ, गेहे, देवालए, धम्मालये, गुहा इच्चादि ठाणेसु अबाह-बम्हचरियं, सज्झाओ व झाण-सिज्झत्थं विवित्त-सज्जासणंतवं कादव्वं।

6. कायकिलेस-तवो- तरुमूल जोगाइ सीद-उसण-बाहाए सहणं, देहे कट्ठं दिण्णा। सुह विसयग-आसत्तिं णिअंतणत्थं साहुणो इणं छठ तवो कादव्वो इणं छह अंतरंग तवत्थं साहणं।

पमाद व अण्णदोसाणं परिहारं <u>पायच्छिदं</u>। पुज्ज पुरिसाणं

के लिए मुनिराज विधि लेकर निकलते हैं जैसे यदि दाता कलश आदि लिए मिलेगा तो आहार ग्रहण करेंगे अन्यथा नहीं।

4. <u>रस परित्याग</u>-इन्द्रियों के दर्प को नष्ट करने हेतु, निद्राविजय के लिए घृतादि 6 रसों का त्याग अथवा एक दो रसो का त्याग करना।

5. <u>विविक्त शय्यासन</u>- एकांत, स्त्री, पुरुष, बालक, नपुंसक, पशु आदि से रहित एवं निर्जन्तुक, घर, मंदिर, धर्मशाला, गुफा इत्यादि स्थानों में निर्वाध ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, ध्यान की सिद्ध के लिए विविक्त शय्यासन तप किया जाता है।

6. <u>कायक्लेश तप</u>- वृक्षमूल योगादि शीत गर्मी की बाधा को सहन करना, शरीर को कष्ट देना। सुख विषय आसक्ति को कम करने के लिए साधुओ को ये छहों तप करना चाहिए। ये छहों अंतरंग तप के लिए साधन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदर-सम्माणं विणय-तवो। साहम्मिसाहूणं सुसेवा वेज्जावच्च-तवो। आलस्स चइदूणं णाणाराहणा सज्झाए-तवो। अहंभाव-माणचागं वोसग्गो चित्त-विच्छेपचागं झाणं। एवं बारह विह तवो कम्मखयस्स हेदू।

अओ हे साहगो! तवेसु जीवणं महाणो होज्जदि। तव सुत्त-चेयणं जग्गावेदि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

प्रमाद एवं अन्य दोषों का परिहार करना प्रायश्चित है। पूज्य पुरुषों का आदर करना विनय तप है। साधर्मी की सेवा करना वैयावृत्ति तप है। आलस्य का त्याग करके ज्ञान की आराधना करना स्वाधाय तप है। अहंकार मान का त्याग करना व्युत्सर्ग है एवं चित्त के विक्षेप का त्याग करना ध्यान तप है। इस प्रकार से बारह तप कर्मक्षय का कारण है।

अतः हे साधक! तप करो, जीवन महान बनेगा। तप सुप्त चेतना को जागृत करने वाला है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धम्मो चाग-महा

हे मणिसी! उत्तम चागधम्मो कहेदि उवसम-भावा-संगहे-ण चागे-हु अत्थि। संगह-असेट्ठो व विसंगहो सुट्ठू। जो जियत्तु संगहेदि सो तियत्तु अप्पादो छुट्टेदि। सवेण जोड्डिउं "चागो" जीवणे अइअवस्सगो। चागो उक्किट्ठस्स मूलमंतो। विसय-कसायाणं चागे मूल चागो। दोसाणं चागो धम्म-सोवाणस्स लाहो। जाव तुह अंतसादो असेस-कुवित्तिया णिग्गेज्जंति ताव तुमं चाग-धम्म महत्तं सयमेव पावेज्जदि। हं चागो दाणं सव्वोक्किट्ठो ण माण संमाणत्थं। तुमं बहुदाणं किण्णं सम्माणत्थं, सो दाणं असम्मं, अविदु

त्याग धर्म महान

हे मनीषि! उत्तम त्याग धर्म संकेत देता है कि शांति जोड़ने में नहीं छोड़ने में है। जोड़ना अच्छा नहीं छोड़ना श्रेष्ठ है। क्योंकि जो जितना जोड़ता है वह उतना स्वयं से छूट जाता है। स्व से जुड़ने के लिए "त्याग" जीवन में अनिवार्य है। क्योंकि त्याग उच्चता का महान मूलमंत्र है। विषय कषायों का त्याग ही वास्तविक त्याग है। बुराइयों का त्याग करना धर्म की सीढ़ी (सोपान) को प्राप्त करना है। जब तुम्हारे अंदर से संपूर्ण कुत्सित प्रवृत्तियाँ निकल जाएंगी तब तुम त्याग धर्म की महत्ता को स्वतः ही हासिल कर लोगे। हां त्याग या दान करना सर्वोच्च है किंतु मान/अभिमान के लिए नहीं। आपने बहुत दान दिया पर मान के लिए, तो वह दान सम्यक् नहीं अपितु अहं-पुष्टि है। एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहं-पुट्ठी आसि। एगो दाणत्थं धणं उप्पज्जेदि वा कहेदि धणं उप्पज्जामि पच्छा दाणं दामि। एवं अहं ण्हामि अओ पंके आलिंपेमि। इमा किरिया अण्णाणत्तं व सो अण्णाणी णो णाणी। तुम्मं समीवे जं तस्स दाणं कादव्वं, दाणत्थं धणं ण उप्पज्जिदव्वं।

"संजदजोग्गं णाणाइदाणं चागो" -संजदजोग्गं अत्थं, साहु संतस्स व धम्मप्पाणं उवओगी वत्थुदाणं चागो। चागस्स वीदरागं परम अणिवारियं। वत्तमाणे दाणं विक्किदरूवं गहिदं। पुव्वे दाणं लुक्कवित्ता दिण्णं परण्णु अहुणा दिक्खावित्ता दिण्णं आवस्सगठाणे दिट्ठी किंचि जावेदि ताओ आणेव ण गच्छेदि,

---

दान करने के लए धन कमाता है या कहता है कि पहले धन कमा लूं फिर दान करूंगा, यह तो ऐसा हुआ कि मुझे स्नान करना है, इसीलिए कीचड़ में लोट रहा हूँ। यह प्रक्रिया अज्ञानता है और वह अज्ञानी है, ज्ञानी नहीं। जो तेरे पास है उसका दान करना चाहिए, दान को उद्देश लेकर धनार्जन नहीं करना चाहिए।

"संयतस्स योग्यं ज्ञानादिदानं त्यागः" पूज्यपाद आ. ने सर्वार्थसिद्धि में कहा है कि संयत के योग्य यानि साधु संतों एवं धर्मात्मओं के योग्य ज्ञानादि के उपकरणों का दान करना त्याग है। त्याग के लिए राग से रहित होना परम अनिवार्य है। संप्रति (वर्तमान) में दान ने कुछ विकृत रूप धारण कर लिया है। पूर्व में धर्मात्मा दान छुपा कर दिया करते थे पर आज छपा कर दिया जाता है। जहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परण्णु असम्म-उवओगत्थं माणेदि। दाण-सदुवओगं हो दव्वं जेण हेदू दिण्णं तेण उवओगं तहेव होदव्वं। जो पउराणिग-सक्किदि-रक्खात्थं पावेदि सो ण णवीणदाए। अज्जं आवस्सगत्तं णव तित्थाणं अहिगं ण अहिग-आवस्सगत्तं पउराणिग-तित्थयराणं सुरक्खस्स अत्थि। दाणेण पुव्विं इदंवि झाण-आवस्सगो किं अवओगित्तं कहं अत्थि। मेत्त-दिट्ठीए इयत्तु णो किं मालाओ किलालेहं कह मिलेदि।

दाणं एच्छिगफलस्स इहाए रहिदं होयव्वं। णिक्काम णिरवेक्ख-भावाओ दिण्हदाणं वड-बीअ व्व बड्ढेदि। आगमे

आवश्यकता है वहाँ पर दृष्टि कम जाती है, उस ओर तो ध्यान ही नहीं जाता किन्तु गलत प्रयोग करने के लिए तैयार हो जाते हैं। दान का सदुपयोग वहीं होना चाहिए। यानि जो प्राचीन संस्कृति की रक्षा के लिए मिलता है, वह नवीनता में नहीं। आज आवश्यकता नवीन तीर्थों की उतनी नहीं है जितनी कि प्राचीन तीर्थों की सुरक्षा की है। दान देने के पहले यह भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि उपयोगिता कहाँ पर है। मात्र दृष्टि में इतना नहीं कि माला पटिया कहाँ प्राप्त होगा।

दान ऐच्छिक फल की अपेक्षा से रहित होना चाहिए। निष्काम निःकांक्षित भाव से दिया गया दान वटबीज की तरह वृद्धि को प्राप्त होता है। आगम में चार प्रकार के दान की चर्चा की गई है। प्रत्येक दाता का कर्त्तव्य है- चतुष्टय की प्राप्ति के लिए चार प्रकार का दान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चउविहदाणस्स कधणं किदं। पडि दाआ-कत्तव्वं-चटुट्ठस्स लाहत्थं चउविहदाणं कादव्वं।

"असण दाणं" उक्किट्ठ-मज्झ-जहण्ण-संजमी-पत्ताणं दायव्वं। जेण संजमी महापुरिसाणं असणदाणं किण्णं, जाण तवं दिण्णं चागं दिण्णं। जओ असणेण रहिद-जीवणं ण होदि। करुणेण सह भुक्खं, णिद्धणं, कारुण्णं, दरिद्दाणं सहजोगं करुणा-दाणं।

"सत्थ दाणं" णाण-दाणं किदं, जओ इणंपि णियएगं भिण्ण-महत्तं रक्खेदि। णाण-उगराणं दिण्णं, आगम-दिण्णं

करते रहना चाहिए।

"आहार दान" उत्तम, मध्यम जघन्य संयमी पात्रों को देना चाहिए। जिसने संयमी, महान आत्माओं के लिए आहार दिया, समझो तप दिया है, त्याग दिया है। क्योंकि आहार के बिना जीवन नहीं चल सकता है। करुणा के साथ भुखे, गरीब, कारुण्यों दरिद्रों को सहयोग करना करुणा दान है।

"शास्त्र दान" यानि ज्ञान दान करना क्योंकि यह भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। ज्ञान के उपकरण भेंट करना, शास्त्र देना, अध्ययन कार्य हेतु व्यवस्था जुटाना, उत्तम, मध्यम, जघन्य, पात्रों के लिए एवं जो छात्र पढ़ना चाहता है, पर आर्थिक कारणों से वंचित है, उसके अध्ययन में बाधा पड़ रही है, और आप समर्थ है, तो ऐसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्झयण-कज्जत्थं ववत्था दिण्णं, तिविहं पत्ताणं वा जो पत्त पाडं पडि इहंते अत्थिग-असमत्थो तस्स अज्झयण अवरोहेदि व तुमं समत्थोंसि तु एरिसा विज्जत्थीणं सहायदं माणव-धम्मो। विज्जालयं पाढसालं णिम्माणत्थं दिण्णदाणं णाण दाणे हु समाविट्ठं। जो सुददाणं करेदि सो केवलणाणं पावेदि सरस्संदि-पुत्तो होदि। अओ इदं परमदाणे धणस्स-सम्मउवओगं कायव्वं।

"अभयदाणं" दुही भयभीदाणं-पाणीणं रक्खणं। पाणि-णाणहरणं ठिदिवि किं णो होदि तं पुण्णं-रक्खेदि, णिब्भयं दिण्णं व उत्तम-मज्झ-जहण्ण-पत्ताणं णिब्भ्य-ठाणे रुक्कावेदि, तं ठाणं

छात्रों की सहायता करना मानव धर्म है। विद्यालय, पाठशाला आदि का निर्माण कराने में दिया गया दान ज्ञान दान के अंदर ही समाविष्ट है। जो श्रुतदान करता है, वह केवलज्ञान को प्राप्त करता है और सरस्वती-पुत्र बन जाता है। अतः इस परम दान में धन का सम्यक् उपयोग करना चाहिए।

"अभयदान" दुःखी क्लांत प्राणियों की रक्षा करना। यदि किसी के प्राण हरण जैसे स्थिति भी क्यों न आ गई हो उसकी पूर्ण रक्षा करना, निर्भय कर देना एवं उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्रों को निर्भयता के स्थान पर ठहरना, उन्हें स्थान देना, प्राणी-मात्र की रक्षा करना अभय-दान है, प्राण दान है। यह अमूल्य दान है।

"औषधि दान" साधु संतों को निर्दोष अहिंसक औषधि देना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिण्णं, पाणी-मेत्त रक्खं अहयदाणं, पाण-दाणं आसि। अमुल्ल-दाणं।

"ओसह-दाणं" साहु-परिसाणं संजम-रक्खत्यं पिरामिस-ओसही-दाणं। धणहीणो, अंगविहिण-आइस्स सहाइ-दव्वं, ओसहालयं खुल्लावेदि, असवत्थाणं आवसत्ताणुसारेण सम्मं रसं, फल-ओसहि आइस्स सहयव्वं इदं मणुस्सत्तं। भगवदो महावीर सामिस्स संदेसो चरितत्थं आवस्सगत्तं सि। सयं सुहेण जीवेहि व अण्णं पि जीवणं जीणेदेहि, ताण अहिंसा-दिट्ठीए सहायव्वं पडि माणव-कत्तव्वं। जस्स दुहाणं-सयं अणुभवेदि तारिसो। अण्णेसिं

संयम रक्षा हेतु। गरीब-अपाहिज आदि के लिए सहयोग करना, औषधालय खुलवाना, मरीजों की आवश्यकतानुसार उचित रस, कल-औषधि आदि के लिए सहयोग करना, यह मानवता है। भगवान महावीर स्वामी के संदेश को चरितार्थ करने की आवश्यकता है। स्वयं सुख से जियें एवं अन्य जीवों को जीने दें, उनके जीने में अहिंसक दृष्टि से सहयोग करना हर मानव का कर्त्तव्य है। जैसा कष्ट स्वयं अनुभव करता है, वैसा दूसरों के कष्टों को स्वयं अनुभव करने की आवश्यकता है।

"त्याग धर्म" सत्वेषु मैत्री का पाठ पढ़ाता है एवं मानव धर्म की शिक्षा देता है। हम परस्पर एक-दूसरे का निष्काम भाव से सहयोग करें। जो जीव इस प्रकार औषध दान देता है, वह निरोगमय शरीर को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुहाणं पि सयं अणुभवस्स आवस्सगत्तं आसि। "चागो धम्मो" सुव्वेसु मेत्ती-पाढं पढावेदि, व माणवधम्मस्स सिक्खा देदि। अम्ह परोप्परो णिरवेक्ख-भावेण सहजोगं करामो। जो एवं ओसहदाणं पदेदि, सो णिरोगी देहपत्तेदि, व कमाणुसारेण सग्गं, मोक्ख-सुहं लहेदि। अओ "कुण पडिजणस्स सेवा, तुज्झ सेवा णियमेण होज्जहि", हे विण्हु! चाग-धम्मगहेसु अप्पकल्लाणं कुण, पडिदाओ पावणदाए इणमेव सुट्ठूवाओ।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

प्राप्त करता है, एवं क्रमश: स्वर्ग, मोक्ष सुख को प्राप्त करता है। अत: "कर जन-जन की सेवा तेरी सेवा नियम से होगी।" हे विज्ञ! त्याग धर्म को अंगीकार कर आत्मा का उत्थान करो, पतित से पावन बनने का यही सुंदर उपाय है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुमिणं एग-भवो

हे चयण्ण! उत्तम-आकिंचण-धम्मो णिय सरूवेण संबंधो इट्ठा-विदं इंगिएदि, हे पाणि! अज्जोपाय-अण्णं स्व-जाणासि अप्पं णो जाणिदो। जहं तुं ण आसि तहं णिय मग्गिज्जंतो सि। कवि अप्प सुहं देहे मग्गेसिं, ताव कयावि भोज्ज-पदत्थेसु या वसणभूसणेसु किण्णु पुणंरवि सुहं ण पावेसि। सच्चं। दहे सुहं कत्थ? जइ भव विषयेसु, इच्छाएसु सुहं, संती सि। ताव जोइणो जोगं धारित्ता आद सरणं को जादि? आद-सुहं सांसारिगेसु पदत्थेसु असंभवो। आदसुहं आदसरणम्हि च्चिय पत्तेदि किं बहि इड्ढि-मंतो अंते णेत्तांबुं बहाविदो ण गच्छिदो? तस्स गणमणपच्छा अण्णेसि

संसार एक स्वप्न

हे चेतन्य! उत्तम आकिंचन धर्म निज स्वरूप से संबंध स्थापित करने की ओर इंगित कर रहा है, कि हे प्राणी! आज तक पर को स्व मानता रहा निज को नहीं पहचाना। जहाँ तू नहीं था, वहाँ पर अपनी खोज कर रहा है। कभी निज सुख की खोज शरीर में की, तो कभी खाद्य पदार्थों में या वस्त्राभूषणों में की लेकिन फिर भी सुखी नहीं बन पाया। सच है। दुःख में सुख कहाँ? यदि संसार के विषय भोगों, कामनाओं में ही सुख शांति थी, तो फिर योगियों ने योग धारण कर आत्म शरण क्यों ली? क्योंकि आत्मसुख भौतिक पदार्थों में संभव नहीं। आत्मसुख आत्मशरण में पहुँचने से ही प्राप्त होगा। क्या बाह्य संपदा वाले अंत में आंसू नहीं गिरे। लेकिन जो आत्मसुसखी होता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णेत्तंबुं ण पडिदो? परण्णु जो अप्प सुही होदि सो गच्छमाणो ण सयं णेत्ताबुं पडावेदि व, ण विप्पजोगे अण्णं को अस्सुपुरिदो होदि, जओ अप्पधम्मिस्स गमणादो मिच्चु महुत्सवो होदि। मिच्चु-महुस्सवो समाधि तहेव जीवणे होदि, जो अकिंचण-सहावी होदि जस्स जीवणे आंकिंचणं धम्मो होदि "वीदरागी जेणाइरिये अंकिंचणं परिभासंते- "ण किंचिवि जेण सह तं आकिंचणं"। संसारे जं दिट्ठा, तं सव्वं बहि पदंसणं, अप्पणो ण किंचिवि। जो देहाइ-पत्तं तेसु वि संसकारचागं आकिंचणं। णाणी इणमेव चिंतेदि यत्थ ण किं, ण तत्थ किंवि। एत्थ-तत्थ ण किं पि। भवे अणुचिंतणेण पेच्छामि, ताव ण किंवि। इदमेव चिंतिऊण णाणी सव्वं चागेदि।

वह जाते समय न स्वयं आँसू बहाता है और न वियोग पर अन्य कोई अश्रुपूरित होते हैं, क्योंकि आत्मधर्मी के जाने पर मृत्युमहोत्सव मनाया जाता है। मृत्युमहोत्सव या समाधि उसी के जीवन में घटती है, जो आकिंचन स्वभावी होगा यानि जिसके जीवन में आकिंचन धर्म साकार हो रहा है। वीतरागी जैनाचार्यों ने "आकिंचन" को परिभाषित करते हुए कहा है कि "न किञ्चना इति अकिंचन"। संसार में जो दिख रहा है, वह सब बाह्य प्रदर्शन है, निज का कुछ भी नहीं है। जो शरीरादि उपात्त है उनमें भी संस्कार का त्याग करना आकिंचन्य है। ज्ञानी जीव यही विचारता है कि न यहाँ पर कुछ है न वहाँ पर कुछ है। यहाँ-वहाँ कुछ भी नहीं। यदि जगत में विचार कर देखता हूँ तो कुछ भी नहीं। यही सोच कर ज्ञानी सब त्याग कर देता है।

आचार्य भगवान कुंद-कुंद स्वामी ने समयसार जी में अज्ञानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अण्णाणी जीवस्स विसये बहु सुट्ठु वत्तं कहिंदा आइरिय कुंद-कुंद सामिणा समयसारे-

"अण्णाण मोहिदमदी, मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो, बहुभावो संजुत्तो॥"28॥

हे आद! तुज्झ सरूवो मेत्त णाण-दंसणं, पुण अण्ण दव्वत्तो तुज्झ संबंधो कह होदि। तुज्झ णिम्मोहो, णिम्ममत्त सहावो। तमम्हि आइंवराणं ठाणं कहं? वीदराग-मग्गे आकिंचणे-धम्मे वसिऊण एव साधीणो सक्केदि। आकिंचण-धम्मं गहिऊण साधीणो होहि, जओ पराहीणं जीवणं णिय आद-विणासो। पुण्णरूवेण आकिंचण-धम्मो समणे च्चिय होदि-

---

जीव के विषय में बहुत ही सुंदर बात कही-

अण्णाण मोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गल दव्वं।
बद्धम्बद्धं च तहा जीवो बहुभावो सजुत्तो॥28॥

अर्थात् अज्ञान से ठगी हुई बुद्धिवाला एवं संसारी प्राणी अपने साथ में मिलकर रहने वाला शरीर और पृथक् गहने, वस्त्राभरण धनधान्यादि पुद्गल द्रव्य को अपना कहता है, नाना प्रकार की रागद्वेषादि रूप कल्पना करता है। यही अज्ञान परिणति है।

हे आत्मन्! तेरा स्वरूप तो मात्र ज्ञान दर्शन है, फिर अन्य द्रव्य का तेरा संबंध कैसे बन सकता है, निर्मोह निर्ममत्व स्वभाव तेरा है। तेरे में आडम्बरों के लिए स्थान कहाँ? वीतरागता का मार्ग आकिंचन धर्म में बहकर ही स्वावलंबी बन, क्योंकि परावलंबी जीवन जीना स्वात्मा की हत्या करना है। वास्तव में पूर्णरूपेण आकिंचन धर्म श्रमण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होऊण य णिस्संगो णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहदं।
णिद्देण दु वहदि अणगारो तस्स आकिंचण्हं॥ (बा.अनु.)

आकिंचणं आद विसुद्धिस्स धम्मो आसि। अओ इमं गहित्ता पावणं णिम्मलं लक्खं लहेसु। आकिंचण-भावो त्थि आद-विसुद्धि-माणवं।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

के ही संभव है।

जो मुनि निःसंग, निष्परिगृह, निर्ग्रंथ होकर स्वपर को दुःख देने वाले सब प्रकार के राग-द्वेष, मोह भावों का निग्रह कर, निर्द्वंदं भाव धारण कर, मूर्च्छा भाव का द्रव्य के साथ त्याग करता है, उसके ही अकिंचन धर्म होता है। आकिंचन आत्मा पवित्रता का धर्म है। अतः इसे धारण कर पावन पवित्र मंजिल प्राप्त करो।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्प रमाए रमेज्जा

हे चेयण! बम्ह-सरूवेव तुज्झ सरूवो तम्हि लीणत्तं एव सुबंभचरियं। सेट्ठो बम्हचरिय-धम्मो बंधसरूवे गमिउं सिक्खं देदि, तुमं सहावसरणं गहेहि व सहावे रमेज्ज, जओ सहावे वासमेव बम्हचरिय। बम्भो अत्थं आदा। अप्पे गमणं च्चिय बम्भचरियं। बम्भचरिय-धम्मो सीले वासिउं उप्परेदि। सीलं सहाविगं पाइअसरूवे वासं।

विज्जरक्खा अप्परक्खा। विज्जरखा च्चिय सेट्ठो। जो णियसत्ती पट्ठो, तत्तो जेट्ठो पावी अण्णो को होदि? विज्ज-विणासो, णिय-सत्तिं णासित्ता, देहसत्तीए कर-पहालणं।

आत्म रमणी में रमो

हे चैतन्य! ब्रम्ह स्वरूप ही तेरा वास्तविक स्वरूप है और उसमें रमण करना ही उत्तम ब्रम्हचर्य है। उत्तम ब्रम्हचर्य धर्म स्वरूप की ओर ले जाने की शिक्षा देता है कि तू स्वभाव का आश्रय ले एवं स्वभाव में रम क्योंकि स्वभाव में रहना ही ब्रम्हचर्य है। ब्रम्हचर्य धर्मशील में रहने की प्रेरणा दे रहा है। शील यानि स्वाभाविक प्राकृतिक स्वरूप में निवास करना।

वीर्य रक्षा आत्मरक्षा है। वीर्य रक्षा ही परम है। जिसने स्वशक्ति का नाश किया है, उससे बड़ा पापी अन्य कौन हो सकता है? वीर्य को नष्ट करना, स्वशक्ति को नष्ट कर, शारीरिक शक्ति से हाथ धोना है। ब्रम्हचर्य धर्म के पालन से शरीर दृढ़ होता है एवं ज्ञान वृद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बम्भचरिय-परिवालणेणं देह-पुट्ठं होदि णाणं बड्ढेदि वि अबम्भसेवणं णरस्स णाण-विवेगं णासेदि। जदो माणवो सव्वं पणासेदि। अवंभं विविह-वाहीणा ठाणं। जत्तो वि भरह-सक्किदीए महा-पुरिसा जादा, ते सव्वेहिं बंभचरिय-धम्मं महच्चं दिण्णं। महाणगंथाणं कत्ता आयरिय-भगवदो बंभसत्तीए चिय णिय णाणं रक्खिदं अबंभो घोर-हिंसा, एगहुत्तं विसय-सेवणेणं णवकोडि जीवहिंसा-वक्खाणं दियंबराइरिएहिं किदा। वियारेहि अबंभसेवणाहिंत्तो कत्तो जीवाणं हणेदि, इंदिय-लुब्भत्तणे। इदं वासणाणामेव पडिफलं "भूणहच्चा"। जणणिंदं-पच्छा पंचिंदिय-मणुजाणं पाणं हणेदि। कत्तो अबंभ पसरेदि। अविवाहिद-मायाहिं पि तं णवउप्पज्जिदा बालगाणं खण्डं-खण्डं-करित्ता कुणेव्व

होती है। अब्रम्ह का सेवन मानव के ज्ञान विवेक को शून्य कर देता है। जिससे मानव सर्वनाश कर लेता है। अब्रम्ह अनेक रोगों का स्थान है। जितने भी भारतीय संस्कृति में महापुरुष हुए उन सभी मनीषियों ने ब्रम्हचर्य धर्म पर बल दिया। महाग्रंथों के सृजक आचार्य भगवंत् ब्रम्हशक्ति से ही अपने ज्ञान को रख सके। अब्रम्ह महाहिंसा है क्योंकि एक बार के काम सेवन से नवकोटि जीवों की हिंसा का उल्लेख निर्ग्रन्थाचार्यों ने किया है। सोचो, कि अब्रम्ह सेवन कितने जीवों का घात करता है, एवं विषय लोलुपता का कारण है। इसी वासना का ही दुष्परिणाम है- "भ्रूणहत्या"। लोकलाज के पीछे पंचेन्द्रिय मनुष्यों की जान ली जा रही है। कितना अब्रम्ह छा गया। कुंआरी माताओं के द्वारा भी नवजात शिशुओं के टुकड़े-टुकड़े करके कचड़े की भांति टोकनी में रखकर फेंक दिया जाता है। क्या आप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुण्डलोम्हि पवेसित्ता खिवेदि किं तुं भगवदो महावीर-राम-किण्ह-बुद्ध-गुरुणाणगाणं उवासगो आसि? जइ असि एरिसो कुकिदेसुं मुणहि, बंभचरियेण जीवेहि सिसुं णिरोहस्स चरिचा रज्जं वि करेदि। परिवार णिओजण-पसारं बहुओ होदि। ते जणाइं मज्झ कहणं, जइ तुज्झ माया उदरे एव तुव हणावेज्जा, किं तुमं अण्णेसिं पाणं गहणस्स पसारेज्ज? पाबंदी रोक्कं, संताणे ण वासणाए लगा। पुण ण करेसि; णर-संहारपसारं । तुह किं जाणेसि जेण गब्भत्थ बालगाणं हणिज्जंति सो रामो, महावीरो, किण्हो, सीया, चंदणबाला जथा होयव्वा, संताणो परमपदस्स जोग्गो होदि। चिंतेज्ज! जे गब्भहणं करेदि व करावेदि ते दोण्णवि अहोगामी णरसंहारगा णिसायरा आसि। एरिसो दुक्किदाणं कम्मसिज्झंतो व

भगवान महावीर, राम, कृष्ण, बुद्ध, गुरुनानक आदि के उपासक हो? यदि हो तो ऐसे कुकृत्य पर ध्यान दो? ब्रम्हचर्य से जियो संतान पर पाबंदी लगाने की चर्चा सरकार भी करती है। परिवार नियोजन का प्रचार बहुताधिक चल रहा है। उन लोगों से मेरा कहना है कि तुम्हारी माँ गर्भ में ही तुम्हारी हत्या करा देती तो क्या तुम दूसरे की जान लेने का प्रचार कर पाते? पाबंदी संतान पर नहीं वासनाओं पर लगाओ। फिर नहीं करना पड़ेगा नरसंहार का प्रचार। तुम्हे क्या मालूम जिन गर्भस्थ शिशुओं की हत्या कर दी जाती है। वे राम, महावीर, कृष्ण, सीता, चंदनबाला जैसी होने वाली संतान परमात्मा पद को पाने वाली हो। ध्यान रखो! जो गर्भपात करता है एवं करवाता है वे दोनों ही अधोगामी नरसंहारक दानव हैं। ऐसे दुष्कृत्यों को कर्मसिद्धांत एवं प्रकृति माफ नहीं कर सकती। ऐसे कुकृत्य प्रकृति को पसंद नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पइअ ण खमेदि। एरिसं कुक्किदं पगदिं णो रोचेदि। अज्ज-सुवे अगालो, भकंपो, अइविट्ठी, अणाविट्ठी जधा वाहिया पेच्छिज्जा। इणं सव्वे ते गब्भत्थ अप्पाणं वेयणा-तडफडाहडं, कराहझुणीए चिय पहावो ताण अहिसावो। पइअ-संदुलणं सुट्ठु करणत्थं विसय-वासणाओ रूद्धेसु, व मिच्छा-पसारं रूद्धेसु, जणाइं बड्ढहिं ताव असणं कुत्थ आगच्छिहिदि। तुह जस्स भोज्जत्थं पज्जेसि तस्स तंपि पावेहिदि। वियारेहि महाभरहकाले मेत्त-भरह-देसे छप्पणा कोहि जदुवाणं वण्णणं मिलेदि। अण्ण समाओवि तस्सिं समय आसि। किं ते भुक्का मरेंति? ण। सत्वे णिय पुण्णं गहिऊण आगच्छंते, को कस्स वि ण भोक्खावेदि। रज्जाहिवदी चिंतेहि णरसंहारं रुद्धेसु, सयं संतिं-पालेहि सामण्ण जणाओ

आज-कल अकाल, भूकंप, अतिवृष्टि, अनावृष्टि जैसी बाधाएँ दिखने में आ रहीं हैं यह सब उन गर्भस्थ आत्माओं की पीड़ा की तड़पन, कराहने की आवाज का ही प्रभाव है। उनका शाप है। यदि प्रकृति के संतुलन को सुधारना है तो वासनाओं को संतुलित करो एवं मिथ्या प्रचार बंद करो जनता बढ़ जाएगी तो फिर खाने को कहाँ से आएगा। तुम्हें जैसे खाने को मिल रहा है वैसे उन्हें भी मिलेगा। विचार करो महाभारत काल में मात्र भरत देश में 56 करोड़ यादवों का उल्लेख मिलता है, अन्य समाज भी उस समय थी। क्या वे भूखे मरते थे? नहीं। सभी अपना भाग्य लेकर आते हैं कोई किसी को नहीं खिलाता। राष्ट्रनेता ध्यान दें नरसंहार बंद करें, स्वयं शांति का पालन करें एवं करायें व्यर्थ की चिंता न करें।

अब्रम्ह दोषों की खान है, गुणों का नाशक पाप का बंधु यानि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करावेसु, अणत्थगं चिंतणं णा करेज्जा।

अबंभ दोसाणं खाणी, गुणाणं णासगं पावबंधू समस्साणं महाकुंभं। कुसीलेइणं लोगे णिंदिदं होदि व परलोगेवि दुग्गदिं पत्तेदि। रावणं कहं सव्वे जाणेंत्ति। णवरि सिया-हरिदा सीलं ण खण्डेदि पुण रावण-अज्जोपाय तं पडिरूवं डज्झावेदि। अहोगदिं पावेदि किण्णु तदो तस्स कोवि णामो विण गणेच्छेदि। सत्तूगिहे भिक्खं-मग्गणं सेट्ठं परण्णु सीलं णासत्ता रज्ज-गहणं असम्मं। णिदिगारेहिं उत्तं-

उलूगं दिणे णो दिस्सदे, कागं णिसाए णो दिस्सदे।
णं विसय-लुद्धेहिं दिवा-सत्तीए णवि दिस्सदे ॥

आपदाओं का संगम है। कुशील व्यक्ति इस लोक में निंदा का पात्र होता ही है एवं परलोक में दुर्गति को प्राप्त करता है। रावण की कथा सभी को मालूम है। मात्र सीता का हरण किया शील भंग नहीं फिर भी रावण का आज तक पुतला जलाया जाता है। नरक गति को प्राप्त हुआ ही किन्तु उसका परिणाम कि उसका नाम भी लेना पसंद नहीं करते। शत्रु के घर भीख मांग लेना श्रेष्ठ है परंतु शील भंग करके साम्राज्य पढ पाना उचित नहीं है। नीतिकारों ने कहा-उल्लू को दिन में नहीं दिखता, काक को रात्रि में नहीं दिखाई देता पर कामी को न दिन में दिखता है, न रात में। ब्रम्हचर्य से च्युत होने के कारण दिगम्बराचार्यों द्वारा इस प्रकार कहे गये हैं- 1) स्त्री संसर्ग 2) सरसाहार 3) सुगंध संस्कार 4) कोमल शय्यासन 5) शरीर मंडन 6)गीत वादिव श्रवण 7) अर्थग्रहण 8) कुशील संसर्ग 9) राजसेवा 10) रात्रि संचरण ये दस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंभचरीयस्स चुअस्स कारणं दियंबराइरियेहिं उत्तं- 1) इत्थी संसग्गं 2) सरसाहारं, 3) गंध लेवणं, 4) मिदु-सयणासणं, 5) देह-मंडणं, 6) गाणं वाइत्त-सवणं, 7) अत्थ गहणं, 8) कुसील संसग्गं, 9) रज्ज सेवं, 10) रत्तीए संचरणं। इणं दह अबंभकारणं। जइ सीलं सुरक्खाणस्स इमेसिं मुच्चहि। कामी वत्तिस्स विवेगो इड्ढी च ण होदि माण-सम्माणं सव्वे पलयं पावेदि, व णिय पज्जाए वि चुक्किदा। अओ जीवण-पाणं बंभचरियं। जो उहयलोगे सुहकरा। इमं गहिऊण चेयणं भोगेहिं, सिव-रमणिं वरेहि आदसुहं पावेसु इदमेव जीवण-सारो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

अब्रम्ह के कारण हैं। जिन्हें शील की रक्षा करना है वे इनसे बचें, दूर रहें। कामी व्यक्ति के न विवेक रहता है न वैभव, मान-सम्मान सब प्रलय को प्राप्त हो जाता है, बल्कि अपने जीवन से भी हाथ धो बैठता है। अतः जीवन प्राण ब्रम्हचर्य है। जो कि उभय लोक को सुख देने वाला है। इसे धारण कर चैतन्य का भोग करो, शिव रमणी का वरण कर आत्मिक आनंद भोगो, यही जीवन का सार है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अद्धुवे धुवलाहो कस्स?

जइ! अधुव-सिज्झत्थं धुवे लक्खं कुण, व धुव्व सिज्झिं पडि जदण-कुण। अधुवे तुम कत्तोवि मग्गेसि णं धुवं ण पत्तोसि। अज्जोपाय जयत्तु वि जदणं किदं तं सव्वं अधुवस्स किदं। तुज्झ दिट्ठी अणिच्चं, अविणासिगं-पदत्थे रत्तो। जो अखण्डो, थिरो, ध्रुव्वो, णिच्चो, सस्सदो, अविणासिगो, टंकोक्किणण-णायगसरूवी, तुज्झ णिय आददव्वं, तम्मि ण पडिदो। जाव तुमं णिय धुव्वत्तं ण पेक्खसि, ताव धुव्वं ण पावेसि। किंचि वियारेहि! णिय चित्तेण विचिंते हि, जत्तो वि दव्वाणि दिक्खेंति ते पज्जायरूवाओ णस्संते।

अध्रुव में ध्रुव की प्राप्ति कैसे

हे यति! ध्रुव सिद्धि के लिए ध्रुव पर लक्ष्य लगा एवं ध्रुव-सिद्धि के प्रति यतन कर। अध्रुव में ध्रुव को तू कितना ही खोजना पर ध्रुव प्राप्त नहीं हो सकता है। अब तक जितना यतन किया वह सारा अध्रुवता का किया। तेरी दृष्टि अनित्यं, विनाशीक पदार्थों में लगी रही। जो अखंड, अचल, ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अविनाशी, टंकोत्कीर्ण, ज्ञायक, स्वरूपी, तेरा निज आत्म-द्रव्य है, उस पर नहीं गई। जब तक तू निज-ध्रुवत्व को नहीं देखेगा, जब तक ध्रुव को नहीं पा सकता। जरा सोंच! अपने चित्त से चिंतवन तो कर, जितने द्रव्य दिख रहे हैं वे पर्याय रूप से नाश को प्राप्त हो रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ण तुमं णिच्चो सि, ण तए णिम्मिदा, गहं, ण जिण पडिमा, ण जिणालयं, ण वत्थं, ण वत्थालयं। विच्छे अच्छो वा, सत्थ-अत्थो वा, पोत्थी, पुराण-आगमो, णिआओ, अज्झप्पं सव्वं-दव्वं, गंथ-गंथालयो व पत्तम्हि लिहियं इणं सव्वे णस्सेहिदि। विचिंतेहि! मज्झ पुव्वं कत्तो लेहगो जादो, होस्सहि अत्थि। पुव्वम्हि अणंत चउविसिया जादा ण अहुणा। देक्ख! पुरातच्चं पत्थरादो णिम्मिदा भवणं पुडवि-चुंबेदि, जं कवि गगणं चुंबणीदा। जं देहं कवि सिहासणे आसि सो खलु अज्जं अणलासणे अत्थि। जद्दवि अहं लिहामि, सो वि विणासं पावेज्जदि। अहं जाणेमि पर इणं णो लेहणं। अहं लेहणी चला-चलादूण णिय-पेक्खामि किं मज्झ दोड-अधुव्वस्स तो णवि। इणा अयिरत्तं णिय अप्पाणं बुज्झावेमि। इणं अणिच्च-भट्टिए

न तू नित्य है, न तेरे द्वारा बनवाये गये भवन, न जिन प्रतिमा, न जिनालय, न वस्त्र, न वस्त्रालय। चाहे वृक्ष हो या अक्ष, चाहे शस्त्र हो या शास्त्र, पोथी पुराण, आगम, न्याय, अध्यात्म सभी द्रव्य, ग्रंथ-ग्रंथालय कागज में लिखे ये सभी नष्ट होंगे। विचार मेरे पहले कितने लेखक हुए, आगे होंगे, वर्तमान में हैं। पूर्व में अनंत चौबीसियाँ हो चुकी, अब नहीं है। देख! पुरातत्व की ओर पाषाण से निर्मित भवन-भूमि का चुम्बन ले रहे हैं, जो कभी आकाश का चुम्बन करते थे। जो देह कभी सिहसन पर थी, वही आज अनलासन पर है। यद्यपि मैं लख रहा हूँ, वह भी विनाश को प्राप्त होगा। मैं जानता हूँ पर यह लिखना नहीं है। मैं तो कलम चला चलाकर अपने को लख रहा हूँ कि कहीं मेरी दौड़ अध्रुव तक ही तो नहीं है। इसीलिए यह अनित्यता स्वात्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिच्चस्स गवेसिगो कत्तो, गवेसिगो झुलसिआ पर णिच्चतं ण पावीदो।

अप्पणो! तुं विचिंतेहि! वत्तमाण-पज्जायं खु देक्ख कवि अहं सिसू आसि, सिसुत्तं खइदा, बालगत्तं णिय पायं रक्खिदं। तुमं बुज्झिया अहुणा अहं बालअं, पर सोवि गच्छिेदो जुवावत्था पवेसित्ता णिय पहावं दिखावेदि, व तुह विसयाइं अंधकिदो। इच्छाओ करण-भावं जग्गवेदि, सयं किंचि कहावेस्स भावं पायसेदि। तुमं मदवंतो होसि, पुण तुज्झ विसय वासणा गहीदा, साहणा-णामंवि चुक्किआ, अहं, मम, सा मज्झ, सो मज्झ, इणं तीण्णेसु तुम्ह जुवावत्थाओ डेरा उट्ठिदा। आगच्छिदा तिव्व वयारा भोआणं, रूव-लावण्णं, आरोग्गं-पहूत्तं, इड्ढीए, रज्जस्स, परं पेक्खंतो-

---

को समझा रहा हूँ। इस अनित्यता की भट्टी में नित्यता की खोज करने वाले कितने, सोनी झुलस गए परन्तु नित्यता को नहीं पा सके।

हे आत्मन्! तू स्वयं में विचार कर! वर्तमान पर्याय को ही देख ले कि कभी मैं शिशु था, शिशुपना समाप्त हुआ, बालकपन में अपना कदम रखा। तूने समझा अब मैं बालक हूं, पर वह भी रवाना हो गया युवावस्था ने आकर अपना रंग दिखाया, और तेरे लिए विषयों ने अंधा बना दिया। कामनाओं ने करने के भाव जागृत कर दिए, अपने आपको कुछ कहलाने के भाव प्रकट करा दिए। तू मस्त हो गया फिर तुझे वासनाओं ने धर दबोचा, साधना का नाम भी पता नहीं रहा, मैं, मेरी, मेरा इन तीन में ही तेरा युवावस्था का डेरा उठ गया। आई थी आंधी भोगों की, रूप-लवण्य, अरोग्य-एश्वर्य, विभूति-साम्राज्य की,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पेक्खंतो उवविसदि। इच्छाओ कामणयो होदि। सव्वा पज्जाओ अग्गिस्स जोइव्व आसि। जुव्वत्तं विद्धावत्थाअ गहिदा, केसोज्जलं जादं, गिवा डुलमाणा। तीओपाए तुज्झ हत्थे आगच्छदि, चउ-णेत्ती जादो व पुणो सिसुत्तं लब्भेदि अत्थो दंतो पडिदो, किण्णु तुज्झ इच्छाओ ण पडिआ। अम्मो! तुज्झ भवस्स वत्तमाण-पज्जाए चयस्स टण-टणी होदि। पुणरवि तुमं ण जग्गेसि। देक्ख! संसारो जल बुल-बुल व्व, विज्जूअभासव्व, इंदधणु व्व, खणभंगुरो। इमस्स छुट्टपुव्वे तुमं इमस्स छड्डित्ता अधुवाओ धुव-आददव्वं पावेहि। इदमेव सच्चं।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

लेकिन देखते-देखते विलय को प्राप्त हो गई। कामनायें, कमान बन गई। सारी पर्यायें अग्नि की लौ के समान हैं। युवापन के लिए वृद्धावस्था ने धर दबोचा, बाल सफेद हो गये, गर्दन हिलाने लगी। तीसरा पैर तेरे हाथ में आ गया, चार नेत्री बन गए, और पुनः शिशुपन को प्राप्त हो गये अर्थात दांत झर गये पर तेरी इच्छायें नहीं झर पायीं बढ़ा आश्चर्य है कि तेरी संसार की वर्तमान पर्याय छूटने की घंटी बज चुकी है फिर भी तू नहीं संभल पा रहा है। देख! संसार जल-बुलबुले-विद्युत की चमक, इन्द्रधनुष सदृश क्षणभंगुर है। अतः इसके छूटने के पूर्व ही तू इसको छोड़कर अध्रुव से बचकर ध्रुव आत्मद्रव्य को प्राप्त कर। यही सत्यता है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असरणे सण-गवेसणं अण्णाणी-कज्जो

हे विसुज्झ-अप्पणो! तुं सरणं गवेसत्थं णिग्गओ किण्णु जत्थ ण सरणं, तत्थ तुज्झ सरणं कहं लहेदि? असरणे सरणं गवेणं सुमुढ़त्तं त्थि। अभावे सहाव-गवेसणा किं ण अण्णात्तं? जं तुमं सरणं णाणेसि तं सव्वं असरणं। सयं सरणत्थी होऊण सरणं गवेसंतो अत्थि। सो सयं असरणो, तुज्झ सरणं कस्स होदि? जे सयं भवपंके पडंतो, सो तुह भवकद्दमादो कस्य णिसरोवेदि? कस्स-कस्स तुमं अण्णाणेण सरणं मण्णिदं। आउ कम्मखयिदा मणि, मत्तं, तंतं, कोवि तुज्झ आउं वड्ढणत्थं असमत्थो। किं तु णिस्सार- वंछाए

अशरण में शरण खोजना अज्ञानी की क्रियायें

हे विशुद्धात्मन्! तू शरण की खोज में निकला है, पर जहाँ शरण है नहीं, वहाँ तुझे शरण कहाँ से प्राप्त होगी? अशरण में शरण खोजना निरीह-मूर्खता है। अभाव में स्वभाव की खोज करना अज्ञानता नहीं है? जिसको तू शरण समझ रहा है। वो सभी अशरण है। जब वह स्वयं शरणार्थी बन शरण खोज रहा है अर्थात् उसकी स्वयं की शरण नहीं है, वह तेरा शरण कैसे हो सकता होगा? जो व्यक्ति स्वयं संसार के पंक में गिर रहा है वह तुझे संसार के कर्दम से कैसे निकाल सकता है? किस-किस को तूने अज्ञानतावश शरण स्वीकार किया था। आयुकर्म के क्षीण होने पर मणि मंत्रो-तंत्र-यंत्र, कोई भी तेरी आयु वृद्धिगत करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। क्यों तू व्यर्थ की आशाओं में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिच्छाइट्ठी देवी देवदारेसु गच्छंतो। रे मुड्ढो! वियारेहि! तुज्झ रक्खा करदो सक्केदि, जओ ते सयं कालगासं होयव्वं, ते सयं विणासिदा। देवाहिवई इंदो, हरी, हरो, बंभो, तित्थयरो वि णिव्वाणं लहिदो। सग्गो, जास गेहं, अणेगदेवो जास अंगरक्खगो, देव-देवीओ अभदो, सो धम्मो व अण्ण इंदा, जाव माला तेज विहिणा होदि ताव तं पि सग्गत्तो पलायणं कायव्वं। पुण तुं कहेसि, तुं कस्स सुरक्खेसि? जस्स रक्खत्थं, दुग्गं, चोद्दस रयणाइं, णाव णिहीणं सामी, सो चक्कपाणी, जं छह खण्डो अवणि-अहिवदी, सो वि ण रक्खेसि, सो वि कालकवलियो होयव्वो। माआ- पिऊ, बंधू सहोदरो

मिथ्यादृष्टि-देवी देवताओं के द्वारे जा रहा है? रे मूढ़, विचार कर! वे तेरी रक्षा कैसे कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें, स्वयं मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है, उनका स्वयं का विनाश हो जाता है। देवों का राजा इन्द्र, हरि-द्वार ब्रम्हा, यहां तक तीर्थंकर भगवान उनका भी निर्वाण हो जाता है। स्वर्ग जिसका निवास्थल है, अनके देव जिसके अंगरक्षक है, देव-देवियों से घिरा हुआ है जो, वह सोधर्म इन्द्र एवं अन्य इन्द्र, जब उनकी माला मुरझा जाती है, तब उनको भी स्वर्ग से पलायण करना पड़ता है। फिर तू ही बता, तू कैसे बच सकता है? जिसकी रक्षा के लिए दुर्ग, चौदह रत्न, नौ निधियों का स्वामी वह चक्रेश जिसने छः खण्ड भूमि को अपने अधिकृत किया, वह भी न बच पाया, उसे भी काल कवलित होना पड़ा। ध्यान रखो! माता-पिता, भाई-बंधु आदि तेरी कोई रक्षा नहीं कर सकते हैं। ये सभी भी काल द्वारा छीन लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वि तुज्झ ण को रक्खावेदि सव्वे वि कालेण हणिस्ससि। ते मच्चूओ ण रक्खावेंति। हं जई को रक्खगो आसि सो पंच परमेट्ठी ववहारेणं, णिच्छयेणं तदसरूव तुज्झ आदा। खलु अप्पेव तुज्झ सरणं। अओ तस्सेव तुं सरणं गहेसि। इमो अस्सओ णिअस्सयं सेयं पडि गच्छावेदि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

जायेंगे। ये मृत्यु से रक्षा नहीं कर सकते। हां यदि कोई रक्षक है तो पंच परमेष्ठी व्यवहार से, निश्चय से तद् स्वरूप तेरी निजात्मा। वास्तव में आत्मा ही तेरी शरण है। अतः उसी की तू शरण ले। यही आश्रय निजाश्रय श्रेय की ओर ले जाएगा।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुज्झ झेओ लक्खो

हे जोइ! तुमं अज्जोपाय कित्तियं कट्ठं सहिदो किं तुमं ण जाणेसि? इदं जीवस्सं पंच परावत्तणे संसारे जम्मं, जरं, मिच्चुं णाणाविहं बाहीओ पावेउं महादुहं सहिंयं। जिणदेवस्स सच्च-धम्मं अण्णाणत्तं कारणेण, मिच्छावसेण णाणागदीसु डोल्लिदो, कुदेवं, कुआगमं, कुगुरुं सरणं मण्णिदो। असेसदव्वस्स इदो जीवो भुज्जिदो। वत्तमाणे को वि दव्वं सेसं ण, जास तुमं णा भुंज्जिदो। हे चेयण्ण! तुमं वमणं भुंजेसि, पडि पोग्गल- वग्गणाओ तुह उवभोगिदो। तिलोगे जत्तोवि पोग्गल-परमाणू अत्थि तं सव्वं

तेरा ध्येय मंजिल

हे योगी! तूने आज तक कितने कष्ट सहन किए हैं, क्या तुझे भान नहीं है? इस जीव ने पंच परार्वतन संसार में जन्म, जरा, मृत्यु नाना प्रकार के रोगों को प्राप्त करके घोर दुःख सहन किए। जिन देव के सत्य धर्म को न समझने के कारण, मिथ्यात्व के वश होकर नाना गतियों में भटका, कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु को शरण मानता रहा। ऐसा कोई द्रव्य शेष नहीं रहा जिसे इस जीव ने न भोगा हो। वर्तमान में कोई द्रव्य शेष नहीं रहा जिसे इस जीव ने न भोगा हो। वर्तमान में कोई द्रव्य नया नहीं है, जिसे तू भोग सके। हे चैतन्य! तू वमन का सेवन कर रहा है, एक-एक पुद्गल वर्गणाओं को तूने अपना भोग बनाया है। तीनों लोक में जितने पुद्गल परमाणु है तेरे द्वारा सभी भोगे गये हैं। भो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उवभोगिदो। वियारेहि, अहुणा किं वंछा अत्थि? जाव सग्गस्स विसयेहिं ण तित्तिओ तंपि वत्तमाण-अप्प-विसयेहिं कस्स तित्तो होसि? अओ तुं तं दूरादो चयेहि।

पइ अंगुल खेत्तत्थं पाणी दव्वपाणाइं णासेदि, बंधु-बंधुणो रिऊ त्थि। धम्मखेत्ते कम्मखेत्ते वा सव्वट्ठाणेसु विवाओ अत्थि। साहूसु वि तित्थविसेसे सरागइट्ठी दिट्ठा। भो णाणि! किं खेत्त पयवत्तणं ण पढेसि, अज्जोपाय कस्स भूमीए पच्छा तुं माणुजत्तं णासेसि, णासिया। किं ण जाणेसि? एरिसो को पयेसंपि तुमं ण छड्डिया जत्तो तुं ण गच्छिदा। कस्स ण। कस्सरूवे पइ खेत्ताओ

ज्ञानी! विचार कर, अब क्या चाहता है? जब स्वर्गों के भोगों से तृप्त नहीं हुआ तो फिर वर्तमान के तुच्छ भोगों से कैसे तृप्त हो सकता हे? इसलिए तू उन्हें दूर से ही छोड़ दे।

एक-एक अंगुल क्षेत्र, भूमि के पीछे प्राणी द्रव्य प्राणों को नष्ट कर रहा है, भाई-भाई का शत्रु बन रहा है। चाहे धर्म-क्षेत्र हो या कर्म-क्षेत्र, सभी स्थानों पर विवाद चल रहा है। संतों में भी तीर्थ विशेष में राग दृष्टि देखने मिल रही है। भो ज्ञानियों! क्या क्षेत्र परा-वर्तन को नहीं पढ़ा, आज तक जिस भूमि के पीछे तू मानवता को समाप्त कर रहा है, करता रहा है। क्या मालूम नहीं? ऐसा कोई प्रदेश तूने नहीं छोड़ा जहाँ तू न गया हो। किसी न किसी रूप में प्रत्येक क्षेत्र से प्रदेश में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाइपदेसे तुमं अणुक्कमेण जादपलयं च लहेसि। अम्मो णाणि! जाव तुमेव खेत्तं पच्छा, सखेत्तं चयेसि। किं सिज्झवदाओ व सिज्झ भूमीए ण अणुरागं? जो तित्थखेत्ताणं भूमीए णामम्हि सणामत्थं अप्प-साहणं णस्सिउं जइ हिंसा-दोसं लहेसि। अत्थं यदि रूवं लहित्ता जइरूव-परिणामो ण किदा णिच्चं पडिदा तं किं जइत्तं ण हणेदि? अओ धम्म-तिथस्स सुरक्खे हि, अप्पतित्थस्स सुरक्खेण सह, पर ण खादिए पच्छा। हे साहु! तुं खेत्ताणं रागं चएहि।

एरिसा का वि घडिगा णो जादा जम्हि तुं जादपलयं ण लहेसि। पइखणे पइदिणे दु जाददिवसं अत्थि व मच्चु विसं पि, अह

तू क्रम से उत्पन्न हुआ एवं मृत्यु को प्राप्त हुआ है। आश्चर्य होता है ज्ञानियो! जब आप ही क्षेत्र के पीछे स्वात्म क्षेत्र को छोड़ रहे हैं। क्या सिद्ध पद एवं सिद्ध भूमि से अनुराग नहीं है? तात्पर्य यति भेष को प्राप्त करके यति रूप परिणाम न करके नीचे आ गए तो क्या यतिपने का घात नहीं हुआ? इसलिए धर्म-तीर्थ की रक्षा करना आत्म तीर्थ की रक्षा के साथ, पर ख्याति के पीछे नहीं। यते! तू क्षेत्रों के राग को छोड़ दे।

ऐसी कोई घटिका नहीं बनी जिसमें तूने जन्म मरण नहीं किया है। प्रतिक्षण प्रतिदिन तेरा जन्म दिवस है एवं मृत्यु दिवस पुण्यतिथि है, अब नया जन्म दिन तू क्या मनायेगा? वर्तमान पर्याय की लोग जयंती मनाते हैं वर्ष में एक बार। अरे मूढ़! वर्ष भर जयंती है, वर्ष भर मरण है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णव जाददिवसं तुह मणावेहिसि किं? संपडी पज्जाए जणाइं जम्मदिवसं मण्णंते बरिसे एगहुत्तं। अरे मुढ! संपुण्ण बरिसम्हि जादपलयं दिवसो। जइ मणासि तो पइदिणे मणाहि, सत्तदिणे एव तुं सव्वं कीडा संसारे पेक्खिदो। अओ कं दिणं ण णवो आसि। अदो दिणो पुराणो, णव बरिसं, णव दिवसं किं माणासि? तएव भोगं, तएव रोगं तएव झग्गडं, सा खलु राग दोस-पण्णदी चहेदि। अओ बोल्लेसु णव दिवसो, णवकालं कहं रहिदा? संपुण्ण-कालेसु जीवो जम्म-मरणाणं कट्ठं सहिदा। एरिसो को पज्जाओ अह सेसो णो रहिदो जत्थ तु ण पवेसिदो, चउगदिसु चउरासिलक्ख-जोणिसुं, भवं

दिवस। यदि मनाना ही है तो प्रतिदिन मनाओ, सात दिन के अंदर ही तूने सारे खेल संसार में देखे हैं। इसलिए कोई दिन नया नहीं है। अतः दिन पुराने है, नया वर्ष नया दिन क्या मनाते हो? वे ही भोग, वे ही रोग, वही झगड़ा, वही राग-द्वेष की परिणति चल रही है। अब बताइए नया दिन, नया काल कहां रहा? संपूर्ण कालों में जीव ने जन्म-मरण कर कष्ट सहन किए। ऐसी कोई पर्याय अब शेष नहीं छोड़ी जहाँ तू न गया हो, चारों गतियों में चौरासी लाख योनियों में, भव धारण कर भ्रमण किया है, इस जीव के लिए कोई नई गति नहीं बची। एक मात्र सिद्ध गति शेष है उसकी ओर अपना पुरुषार्थ कर। इस जीव ने इस चतुर्गति संसार में असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम किए, कभी राग रूप, कभी द्वेष रूप मगर अर्हंत रूप परिणाम नहीं किए। यदि एक बार अर्हंतरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गहित्ता भमिदा, व इणं जीवस्स का गदि सेसा ण रहिया। एग मेत सिज्झ गई सेस-रहिया, तत्थं णिय उज्जमेहि। इणं जीवो चउगदी भवम्हि असंखेज्जलोग-पमाण-परिणामं किदो, कुत्थ रागरूवे, कत्थ दोसरूवे परं अरहदरूवे परिणामं णो किदो। जइ एगहुत्तं अरहदसरूवं परिणामो किदो इणं भवे अज्जोपाय ण भमियव्वं। भो णाणि! देक्ख, पंच परावत्तणे एगंपि ऐरसिो णसेसो जस्स तुमं ण लहेसि। अओ भो णाणि! अह वियारेहि बुज्झेसु व संहलेसु। उज्जमं करेहि मुत्ति सिज्झीए इणं तुज्ज लक्खो अत्थि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

परिणाम कर लेता तो इस संसार में आज तक नहीं भटकना पड़ता। भो ज्ञानी! देख पंच परावर्तन में एक भी परावर्तन ऐसा नहीं बचा जिसको कि तूने प्राप्त नहीं किया है। इसलिए भो ज्ञानी! अब सोंच समझ और संभल जा। कर पुरुषार्थ मोक्ष का यही तेरा ध्येय लक्ष्य है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुहजणगा संबंधा

विसुद्धआद! तुं कस्स णिय मण्णिदो? किं मण्णत्तो वि को कस्स होदि? जो अण्ण-दव्वम्हि णिय संबंधं जुंजेदि, सो खलु दुही होदि। सुही सो चिय होदि जं णिखेक्खसरूवं जाणेदि। किं अण्णसंबंधेसु को वि जीवो सहाणुभवं किदो? जत्तो वि महासंगामो जादो तस्स सव्वस्सहेउ णिरवेक्ख-दिट्ठीस्स अभावेव मण्णेहि। णिरवेक्खं ज़त्तो तत्थ ण, विसंवाओ। संसारम्हि सव्वे सु-अवत्था णिरवेक्खेव अत्थि। भवे सो खु जीवो सव्वपिओ, जो संसारे वासित्ता वि संसारी होऊण वि संसार-संबंधादो वि रत्तोसि। जत्तो अहिय संबंधं बड्ढेज्जा, तत्तो अहिअं दुहं बड्ढेज्जा, णियाणंद-विणासो

संबंध ही दुःख के जनक

हे विशुद्धात्मन्! तू किसे अपना मान बैठा है? क्या मानने से भी कोई किसी का हुआ है? जो पर द्रव्य में अपना संबंध जोड़ लेता है, वही दुःखी हो जाता है। सुखी वही हो सकता है, जो एकत्व के स्वरूप को समझता है। क्या पर संबंधों में किसी भी जीव को सुख का वेदन हुआ? जितने महासंग्राम हुए उन सबका कारण एकत्व दृष्टि का अभाव ही समझो। एकत्व जहां है वहां विसंवाद नहीं। संसार में सबसे सुंदर अवस्था एकत्व की है। संसार में वही प्राणी सबका प्रिय होता है, जो संसार में रहकर संसारी होकर भी संसार के संबंधों से विरक्त रहता है। जितने ज्यादा संबंध बढ़ेंगे उतने ज्यादा दुःख बढ़ेंगे, निजानन्द का विनाश होगा। जिस प्राणी को आत्मानन्दी बनना है तो वह पर संबंधों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होदि। जं जीवं आदसुही होउं, तं पर-संबंधाओ परे-वसेदु। लोए जसं वहि पवंचादो जवो लहेदि परं आद्जसं अप्पणुभूदीदो अच्चंत-पिथगं होज्जदि। भोचिदसरूप आद! तु णिरवेक्खम्हि रत्तो होज्जा अम्मि एगो ममत्तरहिदो विसुद्ध, दव्वत्थिग-णयेण विसुद्धो। णाण दंसण सहावी परंपारिणामिग-भावरूवो, टकोक्किण्णं, अखण्डो, अविणासी, णिच्च-णिरंजणो, भगवदरूवो मज्झ आदा। ववहार-दिट्ठीदो आद! संसारे तुज्झ को वि णत्थि। मेत्त एगा णिम्मल-संमं-परिणदी एव णिय बंधू। अज्जोपाय भव-काण्णम्हि तुं एग्गेव कम्मं कुव्वेदि। एग्गेव दिग्ध भवम्हि भमिदो। एक्केव तुं जादपलयं व लहिदो। कम्मफलाइं वि तुह अक्केलो वि भुंजिदो। विसय-

---

से परे रहे। लोक में ख्याति तो बाह्य प्रपंचों से जीव प्राप्त कर सकता है, पर आत्म ख्याति स्वात्मानुभूति से अत्यन्त पृथक हो जाएगा। भो चिद्स्वरूप आत्मा! तू एकत्व में लीन हो जा। मैं एक ममता से रहित शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से शुद्ध हूँ। ज्ञानदर्शन स्वरूप, परमपारिणामिक भावरूप, टंकोत्कीर्ण, अखण्ड, अविनाशी, नित्य, निरंजन भगवद् रूप मेरी आत्मा है। व्यवहार दृष्टि से भी, भो आत्मन्! संसार में तेरा कोई नहीं है। एक मात्र सम्यक्त्व परिणति ही निज बंधु है। आज तक भव वन में तूने अकेले ही कर्म किए हैं। अकेले दीर्घ संसार में भटका है। अकेला तू जन्म व मृत्यु को प्राप्त हुआ। कर्मों के फल भी तूने अकेले ही भोगे हैं। विषयों के निमित्तों में तीव्र राग भाव किए। कुटुम्ब आदि के निमित्त से भी तूने बहुत दुष्कर्म किए। पर ध्यान रख! संसार से भोगों के संबंध है अवश्य। पर अन्य कोई भी तेरे पाप फल में भागीदार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहणेसु-रागभावं किदो। कुडुंबाई-णिमित्तेण वि तुह बहुआ दुक्किदं किदो। मुणेहि! संसारे भोआणं णादो, अवसो अण्णं को वि तुज्झ पावविवागे ण हिस्सेयारो। लोलुवी संसारम्हि पडिदो अत्तो। तुमं वद्धंतो! तिव्व वेयणाओ तणुगदं, मणगदं जाव संतावेंति, किं तयाणि तुज्झ तं विसमदाणं कोवि वट्टावेदि? को वि ण आवेदि। तो तु किं असार-इंदजालम्हि जीवेउं साणुभूदिरूवो रयणत्तय-धम्मचयेसि? णिय मेहाए कज्जं कुव्वेसु, जइ सुहेच्छा आसि, अप्पलिणो हाऊण, एअत्त-विभत्त-अप्पादो संबंध-ठावेहि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

नहीं है। स्वार्थी संसार में पड़ आत्मा। तू फंस रही है। तीव्र वेदनाएँ शारीरिक, मानसिक जब सताती है, क्या उस समय तेरी उन विषमताओं को कोई बाँटने आता है? कोई भी नहीं आता। तो तू क्यों व्यर्थ में भ्रम जाल में जीकर स्वात्मानुभूति रूप रत्नत्रय धर्म को खोता है? स्व की बुद्धि से कार्य कर, यदि कल्याण की भावना है तो स्व में लीन होकर एकत्व विभक्त आत्मा से संबंध स्थापित कर।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमत्थादु तित्थो णियप्पो

हे विण्हु! संसारे जत्ताविदव्वा दिक्खंते ते सव्वे तइत्तो अच्चंत भिण्णा। पुणरवि तु मोहंधो होऊण पर दव्वं णियरूवं आणेसि इणं मिच्छं वियारं भवे-भमावेदि। विचिंतेहि! वत्तमाणे माया-पिदू, बंधू-बहिणीए संबंधो आसि, सो तुज्झ शरीर संबंधो ण, तुज्झ सच्चिआणंद-रूव-आदस्स! देहविणासं संबसंधविणासं जाण। अरे तु इणं पच्छा ससंबंधं किं मुच्चिदो? जाव तुज्झ गत्तस्स अव्वओ वि तुज्झ ण-तणू वि ताओ भिण्णं, सोवि तुमए सह ण गच्छेज्जदि, पुण जो अच्चंत भिण्णं भवणं, वाहणं, देवालयं, णामपट्टं, पसस्सदी तुज्झ कस्स? तुमं विक्खित्तो कहेमि या णाणी, जो भिण्णत्तणे

परमार्थ से निजात्म ही तीर्थ है।

हे विज्ञात्मन्! संसार मे जितने द्रव्य-पदार्थ दिखाई दे रहे हैं वे सभी तेरे से अत्यन्त भिन्न हैं। फिर भी तू मोहाधं होकर पर द्रव्य को निज रूप मान रहा है, यही मिथ्या भ्रांति भव-भ्रमण करा रही है। सोच! वर्तमान में जो माता-पिता, भाई-बहिन आदि का संबंध है वह तेरे शरीर का संबंध है न कि तेरी सद्चिदानंद रूप आत्मा का। शरीर विनाश होते ही संबंधों की समाप्ति समझ। अरे तू इनके पीछे स्व-संबंध को क्यों खो बैठा? जब तेरे शरीर के अवयव भी तेरे नहीं है-शरीर भी तेरे से भिन्न है, वह भी तेरे साथ जाने वाला नहीं है, तो फिर जो अत्यंत पृथक भवन, वाहन, मंदिर, नामपट-प्रशस्तियाँ तेरी कैसे हैं? तुझे पागल कहूँ या ज्ञानी जो कि भिन्नत्व में अभिन्नत्व और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिण्णत्तं व अपिथगत्तं देक्खेसि। रे मूढ! किंचि वियारेहि! किं कसाय-भावं वा कसायं बड्ढावमाणं दव्वं तुज्झ आसि? तुं किं दोण्हस्स विसंवायेसु पडेसि? जाव सरीरत्तो भिण्णं दव्वं दुण्णेव ण तुह, पुणरवि तुमं देहं णिय किं कहेसि? सहज-सुद्ध-दसाभोगं कुव्वेहि। जोइ! तुमं कहं अप्प विसयं छड्डित्ता अण्ण विसय-कसायाणं भेगम्हि गच्छेसि?

देआलओ, तित्थंपि कस्स पेक्खाओ साहगं णियतित्थाओ पडण-हेदू। वत्थुदो तित्थं व देआलयं संकिलेसत्तं ण उप्पज्जावेदि किण्णु तित्थखेत्ते पवेसित्ता मुमुक्खु-जीवस्स अप्प विसुज्झीए बुड्ढी होदि। जं दव्वतित्थम्हि भावतित्थं गवेसेंति तस्स संकिलेसत्तं

अपृथक्त्व देख रहा है, रे मूढ धी! जरा चिन्तवन् तो कर! क्या कषाय-भाव या कषाय को बढ़ाने वाले द्रव्य तेरे हैं? तू क्यों दोनों के विसंवाद में पड़ता है? जब शरीर से पृथक द्रव्य दोनों ही तेरे नहीं हैं, फिर भी तू शरीर को स्व क्यों कहता है? सहज-शुद्ध दशा का भोगी हो। हे योगी तू क्यों आत्म-भोग को छोड़कर विषय-कषायों के भोग में जाता है?

मंदिर तीर्थ भी किसी अपेक्षा से साधक को निज तीर्थ से पतित होने में निमित्त बन रहे हैं। वास्व में तीर्थ व मंदिर संक्लेशता उत्पन्न नहीं कराते बल्कि तीर्थ भूमि में पहुंच कर मुमुक्षु जीव के लिये आतम निर्मलता में वृद्धि ही होती है। जो द्रव्य तीर्थ में भाव तीर्थ की खोज करते हैं उनके लिए संक्लेशता नहीं, आत्मा निर्मलता ही उत्पन्न होती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ण अप्प विसुज्झेव च्चिय पज्जेदि। तित्थंखेत्तं तं णिम्मल वग्गणाणं ठाणं त्थि जं पुव्वम्हि पुण्ण-पुरिसाणं सव्वंगेण फुरिदो। णाण-वेरग्ग-चारित्त-जोइं पजालत्थं तित्थम्हि गच्छिदव्वं, णो कसाय-बुड्ढत्थं। जो जीवो तित्थभूमिए वि कत्तामदिं रक्खेदि, अहं माणं वंछेदि तं तित्थं तारगं ण होदि, णिमग्गं एव होदि। ववहार-तित्थं णिच्छयतित्थस्स पज्जत्थं मेत्त साहणं ण सज्झं। परमत्थ-दिट्ठीए पेक्खित्तं सणिगड-साहणं णिच्छय तित्थेव अत्थि, परं पइ जीवसामत्थं णिच्चय तित्थम्हि पवेसस्स ण, तास ववहार तित्थस्स आलंवणो विसय-कसायत्तो सुरक्खत्थं परमावस्सगं, पर णबुड्ढत्थं कसायं। दिट्ठीए इणमेव वसिदव्वं पमत्थेण णियप्पेव तित्थो आसि।

है। तीर्थ क्षेत्र उन पवित्र वर्गणाओं के केन्द्र हैं जो पूर्व में पुण्य पुरुषों के सर्वांग से स्फुट हुई थी। ज्ञान, वैराग्य चारित्र की ज्योति को जलाने हेतु तीर्थों में जाया जाता है, न कि कषाय वृद्धि के लिए। जो जीव तीर्थ भूमि में भी कर्त्ता बुद्धि रखता है, अहंत: स्थापित करना चाहता है उसके लिए तीर्थ तिराने वाले नहीं होते, डुबाने वाले ही होते हैं। व्यवहार तीर्थ निश्चय तीर्थ की प्राप्ति के लिये साधन मात्र हैं साध्य नहीं है। परमार्थ दृष्टि से देखा जाए तो निकट साधन निश्चय तीर्थ में प्रवेश करने की नहीं है उनके लिए व्यवहार तीर्थ का आलंबन लेना विषय कषाय से बचने के लिए परम आवश्यक है, पर कषाय वृद्धि के लिये नहीं। दृष्टि में यही रहना चाहिए कि परमार्थ से निजात्म ही तीर्थ है। बाह्य तीर्थ को निज स्वभाव से भिन्न है मेरा आत्म स्वभाव नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहि तित्थं णिय सहावादो भिण्णं, ण मज्झ आद-सहावो। कारण समयसार हेदू ववहार तित्थं। कज्जं समयसार हेदू ववहारो णिच्छयो रयणत्तयो। कज्ज-समयसारो पुण्ण णिम्मल तित्थ-भूदं सुद्ध-अत्थ-विंजण-पज्जाए परिणदो सिज्झप्पा। इमे तित्थेव णिच्छलं, अविणासी, सेस-सव्वा विणासिगा, संकिलेसत्तं-उप्पादगो, भिण्णं अण्णो, अण्णतेण जुत्तो। मुणह! णिय तित्थ-लब्भत्थं तुमं रयणत्तय-धम्मस्स आराहणं किदो, तं लक्खे लिणो होहि। अण्णं बहिर वत्थाइं व खेत्तस्स पच्छा संजम सियरत्थाओ ण चुक्केज्जदि।

हे जोइ! तुं चिंतेज्ज! गुरु आणं संपुण्णं पालेहि व गुरुविणा पत्थणा वि करेहि पहु! जस्स किरिया-चरचाए णिय गुरु पडंतो,

---

कारण समयसार का कारण है व्यवहार तीर्थ। कार्य समयसार का कारण व्यवहार व निश्चय रत्नत्रय है। कार्य समयसार है पूर्ण शुद्ध तीर्थ भूत शुद्ध अर्थ व्यंजन पर्याय से परिणत सिद्धात्मा। यही तीर्थ अचल अविनाशी है बाकी के विनाशिक है, आकुलता के उत्पादक है, भिन्न है अन्य है, अन्यत्व से युक्त है। ध्यान रख! निज तीर्थ की प्राप्ति हेतु तूने रत्नत्रय धर्म की आराधना की है उस उद्देश्य की पूर्ति में ही लीन रहना, अन्य बाह्य पदार्थों या गिरिओं के पीछे संयम शिखर से च्युत नहीं हो जाना। हे योगी! तू ध्यान रखना! गुरु आज्ञा पूर्ण पालन करना, पर गुरु से प्रार्थना भी कर लेना प्रभु! जिस क्रिया चर्या से निज गुरु गिर रहा हो, तड़प रहा हो वह गिरि कब काम आएगी? पहले तीर्थ बनाए नहीं गए, बन गए थे। आज बलात् तीर्थ बनाए जा रहे हैं। तात्पर्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तडफडंतो सो गिरि कत्थ कज्जं आएज्जदि? पुव्वं तित्थं ण णिम्मिदो भूदो। अहुणा बलपुव्वं तित्थं णिम्मिदव्वं। अत्थं इणं जत्तोवि सिज्झखेत्तं आसि ते सव्वे णिम्मिदो ण अविदु जादं। जत्थ मुणिरायो व तित्थयरो तवं किदो, केवलं लहिदा ते खेत्तं सयमेव ही तित्थो होदि। तहेव-साहगो तवेदि तं ठाणे पावण-वग्गणा पवाहेदि सा वसुहा तित्थभूमी होज्जदि। विज्जाणेहिं सुवत्ता लिहिदा- "ते गुरुपयं जह रक्खहि तदेव तित्थं होदि।

जाव तुज्झ पायाओ-भूमी तित्थं होदि, पुण तुं बहितित्थेसुं फसित्ता किं लाहं? जं एगत्तं अण्णत्तं सरूवलब्भत्थं तुं गिहं चागिदो, तं लक्खपूण्णदा ताव ण होंति पुण किं पयोजणं सिज्झेदि? मुणहि!

यह है कि जितने भी सिद्ध क्षेत्र हैं वे सभी बनाए नहीं गए अपितु बन गए। जहाँ मुनिराजों ने तीर्थंकरों ने तपस्या की, कैवल्य को प्राप्त किया वे स्थल स्वयमेव तीर्थ बन गये। वैसे ही साधक साधना कर लें तो उस स्थान पर पावन वर्गणाएं प्रवाहमान होती है, वह भूमि तीर्थ बन जाएगी। देखो पूर्व विद्वानों ने कितनी सुन्दर बात लिखी है- "ते गुरु चरण जहां धरे जग में तीरथ होय"

जब तेरे चरणों से भूमि तीर्थ बन रही है तो फिर तुझे बाह्य तीर्थों में फंसने की क्या आवश्यकता है? जिस एकत्व, अन्यत्व स्वरूप की प्राप्ति हेतु तूने गृह त्याग किया था, उस उद्देश्य की पूर्ति तो हो नहीं रही, तो फिर क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ? तू ध्यान रख! बाह्य तीर्थ-गुरु आदि के संबंध तेरे से भिन्न है- ऐसा निश्चय नय से तू जान। और भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहिर तित्थ-गुरुआइ- संबंधो तुइत्तो भिण्णो-एरिसो णिच्छय-णयेण तु बुज्झ। व जत्तोव भवे संबंधा आसि ता भिण्णा।

एग-मेत्त णाण-दंसण-सरूवो तुज्झ, हं णायगसहावी परम-पारिणामिग-सरूवो। तुं चिंतणेसु। अओ पर-संबंधो ववहार-णयेण आसि परण्णु परमत्थेणं सव्वं भिण्णं जाणेसु।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

जितने संबंध संसार में हैं वे भी भिन्न हैं।

एक मात्र ज्ञान-दर्शन स्वरूप तेरा है, मैं ज्ञायक-स्भावी-परम परिणामिक स्वरूप हूँ। इस प्रकार तू ध्यान कर, चिंतवन् कर। अतः पर संबंध व्यवहार नय से तो है लेकिन परमार्थ से सभी भिन्न समझ।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कम्मासवदारो त्थि साहुत्तं

हे आराहग! भव सिंघवे जीवो किं भमंतो? तुमं अहुणा वि ण जाणेसि किं? मोक्ख- चरिचं करेसि, कम्म बंधाओ रक्खं इच्छेसि, पर बंधणं कह होदि इणं ण वियारेसि? कम्मासेवण विणा कम्मबंध ण। पुव्वे ण कम्मबंझणं, कम्मासवो होदि। बंधत्तो कि बिहेसि? डरिदव्वं तो आसत्तो डरेहि। अब्भंगसणाणेणं विणा मल्लो कत्तो वि रजे, मल्लट्ठणे कुल्लेदि तास रजण लग्गेदि। रजावण्णस्स मूलहेदू सणिग्गत्तं तेल्लं आसि। अब्भंगसणाणेणं पच्छा रज़जुत्त-मल्लठाणेसु कुल्लेदि तेण णियमेण सरीरे रजं आरोहेदि। एवं संसार मल्लठाणेसु जीवा कुल्लंते व कम्म-रजेण आवण्णिदा। संसारे

खोखली साधुता कर्माश्रव का द्वार

हे विशुद्धात्मन्! भव सिंधु में जीव क्यों भटक रहा है? तूने आज तक नहीं जाना क्या? मोक्ष की चर्चा करता है, कर्म बंध से बचना चाहता है, पर बन्ध कब होता है यह क्यों नहीं सोचता? बिना कर्मास्रव के कर्म बंध नहीं है। पहले कर्म बंध नहीं, कर्मास्रव होता है। बन्ध से क्यों डरता है? डरना है तो आश्रव से डारो। बिना तेल मालिश किये पहलवान कितनी ही धूल में अखाड़े में कूद जाये उसे धूल नहीं लगती है। धूल चिपकने का मूल कारण स्निग्धता है, तेल है। तेल से युक्त होकर धूल से धूसरित अखाड़े में कूदेगा तो नियम से शरीर में धूल चिकेगी। इसी प्रकार संसार अखाड़े में जीव कूंद रहे हैं, और कर्म धूल से धूसरित हो रहे हैं। पर संसार में अरिहंत देव भी हैं, संसारी हैं फिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरिहंतदेवोपि अत्थि, पुण कम्मबंधं ण पावेदि किं हेदू? ते तेल्लरूवी-मोह-राग-सणिग्गत्तं मुच्चिदा अओ ते बंधण संपज्जंति। कम्म रजं तस्स अग्गेवि आसी। हे णाणि! कम्मादो भयं ण आवस्सगं। कम्माणं वग्गणाओ लोगागासे परिपूण्णं संपुरिदो ताण को भिण्णं करेदि? उज्जमं इणं कादव्वं रागस्स तेल्लं ण आवेदि। आसवो ण आसवहेऊदो सुरक्खा आसि। हेतु त्तो सुरक्खा। देहे रजारोहणस्स पच्चक्ख-हेदू तेल्लं। तेल्लं संपोच्छिया व ण लग्गिदव्वं तो रजं कस्स आवण्णेदि। तहेव तेल्लरूवं पंचविह मिच्छत्तं, पंच अविरदिं, चउकसायं, ती जोग्गं, पण्णरसविह पमायाइं मुच्चेज्जा तो कम्मरज्जादो आदा सुरक्खेज्जा, अण्णहा

भी कर्म बंध को प्राप्त नहीं होते हैं क्या कारण है? क्योंकि उन्होंने तेल स्थानीय मोह-राग की स्निग्धता का परिहार कर दिया है इसलिए वे बंध को प्राप्त नहीं होते। कर्म धूल तो उनके सामने में भी है। हे ज्ञानी! कर्मों से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। कार्माण वर्गणाएं तो लोकाकाश में ठसाठस भरी पड़ी है उन्हें कौन अलग कर सकता हे? प्रयास यह करना है कि राग का तेल न आए। आश्रव से नहीं, आश्रव के कारणों से बचना है। प्रत्ययों से बचना है। शरीर में धूल लगने का प्रत्यक्ष-निमित्त तेल हे। तेल पौंछ लिया जाए अथवा लगाया ही न जाए तो धूल चिपकेगी ही नहीं। उसी प्रकार तेल, तेल स्वरूप पांच प्रकार का मिथ्यात्व, पांच अविरति, चार कषाय, तीन योग, पन्द्रह प्रकार का प्रमाद छोड़ दे तो कर्म की धूल से आत्मा बच सकती है, अन्यथा नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णवि। आद सहावो आसवभावं जाणेहि! कम्मासवं हसंतो-हसंतो करेसि। झाणेहि तस्स फलोदयम्हि अच्छेहिं अस्सु धारा बहावेदि। सहावत्तो पण्हं कुणसु! पचक्खापचक्खादो मिच्छत्तस्स उवभोगं तो ण चलंतो? वयी वेसम्हि अवइस्स उवभोगं तो णो होदि? अप्पं छलंतो, अण्णं भत्ते छलंतो, पूया करावंतो सि? किं अप्पणो चिंतणं किदो कवि? तुज्झ परिणामाणं परिणदी कुत्थ? गुणट्ठाणं, विसुज्झीठाणं, लेस्साठाणं वियारं कुव्वेदि किं? लेस्सा अम्हाणं कुत्थ गच्छंता? मण-वयण-कायम्हि णिम्मलत्तं आसि व णा? चिंतेज्ज! किण्हआइ तिण्हं असुह लेस्साओ जादा सुहम्हि आसत्तो सपरिणदी, इस्सा-विसादं सहावो असुह-मणं, किं तुमं इणं

बच सकती। आत्मभाव, आस्रव भाव को समझ! कर्म आश्रव हंसते-हंसते करता है, लेकिन ध्यान रख विपाक के समय गंगा-यमुना की धारा नेत्रों से निकलेगी तब तुझे रोना पड़ेगा। स्वभावों से प्रश्न कर! प्रत्यक्ष परोक्ष रूप मिथ्यात्त्व का सेवन तो नहीं चल रहा? व्रति के भेष में अविरति का भो तो नहीं हो रहा है? स्वयं को छल रहा, अन्य भक्तों को छल रहा है, पूजा करा रहा, क्या स्वयं के ऊपर चिन्तवन चला है, कभी तेरे परिणामों की परिणति कहाँ है? गुणस्थान, विशुद्धि स्थान, लेश्या स्थानों पर कभी विचार करता है क्या? लेश्या हमारी कहां जा रही है? मन, वचन, काय में निर्मलता है या नहीं, ध्यान रख! कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्या से उत्पन्न सुखों मं आसक्त स्व परिणाम, ईष्या विषाद स्वभाव अशुभ मन से तू बच रहा है कि नहीं? सोच! गृहस्थों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणदी-रहिदो? भोयणं उवभोगं मेत्तो णो भोगाणं चिंतणंपि कम्मासवस्स हेदू। असुह चित्तादो तु सुरक्खंतो वि ण? वियारेहि। गिहत्थादो णिच्चं ण? तुम्मं पइसद्धा भक्खेंति पइसपद्धा-जाला साहू-साहणं सज्जणत्तं भस्सं करेंति। चिंतेहि? ज़ो असुह मणस्स चरिचा आसि सा पुण्णा ण घट्टेदि किं? जइ होंति ताव कस्स णिय-णिग्गंथं मुणी सिकारेसि? किं अज्जव-मद्दव-धम्म-जुत्तो तुमं आसि? धम्मादो तु देहस्स पहावणालिणो। दियंबररूवं आद पहावणत्थं धारिदव्वं। वयं देहस्स पहावणालिणा। चिंतेहि! जाव माण पुट्ठी ण होदि, वयणस्स असुहसं पवित्तिं आरंभेदि, भासा समिदी, वयण-गुत्ती, सच्च-धम्मं आमूलपणासत्थं उज्जमेहि।

भी नीचे तो नहीं हे? तूझे स्पर्धा खाये जा रही है। स्पर्धा की ज्वाला साधु की साधना को, सज्जनता को भस्म किए जा रही है। विचार कर! जो अशुभ मन की चर्चा है वह पूर्ण घटित नहीं होती क्या? यदि हो रही है तो कैसे अपने आप को निर्ग्रन्थ योगी स्वीकार किये हैं? क्या आर्जव-मार्दव धर्म तेरे अन्दर दिख रहा है? धर्म की ओट में तू अपने शरीर की प्रभावना में लगा है। दिगम्बर रूप आत्म प्रभावना के लिए धारण किया जाता है। हम तन के निजी अहं की प्रभावना में लगे हैं। देख! सोच, जब अहं पुष्ट नहीं होता तो वचन की अशुभ प्रवृत्ति प्रारंभ कर देता है, भाषा समिति, वचन गुप्ति, सत्य धर्म को जड़ मूल से नष्ट करने को तैयार हो जाता है। देख, सोच! स्त्री कथा, भोजन कथा, मौखर्य परिणति, वाचालता ये अशुभ वचन की क्रिया है। बंधन मारण,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वियारेहि! इत्थी कहा, भोयण-कहा, मुखर-परिणदी, बहु भासण असुह वयणस्स किरिया। बंधणं मारणं तारणं, करं दिक्खावणं, अंगुलि दिक्खावणं, देहं विक्किदं, भवेहिं अच्छेहिं बिहावेदि, असुह कम्मस्स चेट्ठा आसि। इमे जइ तुज्झ परिणदी आसि, तदो णिय-भावं जोइ ण जाणेहि, मोक्ख मग्गी णा मण्णेहि किरियाओ संसार अत्थि, वयणं मोक्ख कुणेदि। कस्स असुहोवओई तुज्झ मोक्खमग्गो पसत्थो होस्सहि? असुह समण-वयण-कायाणं परिणदी असुहोवओगो असुह-कम्मासवेव कुणेदि। असुह आसवत्तो णारइयतिरिय-आउस्स बंज्झेदि। चिंतेज्जा! एरिण्डस्स लक्कडी उवरी सुट्ठु दिक्खेदि व अंदरेण णिब्बला होदि। तहेव तस्स

तारण, हाथ दिखाना अंगुली दिखाना, शरीर को विकृति करना, भौहें आंखो के माध्यम से भयभीत करना, अशुभ कार्य की चेष्टा है। इनमे तेरी परिणति यदि है तो अपने भाव को योगी मत मान बैठना, मोक्ष मार्गी मत स्वीकार लेना, क्योंकि क्रियाएं संसार मार्ग की हैं, चर्चा मोक्ष मार्ग की करता है। कैसे मोक्ष मार्ग तेरा प्रशस्त होगा? ये अशुभ मन, अशुभ वचन, अशुभ काय की परिणति अशुभोपयोग है। अशुभ उपयोगी अशुभ कर्मास्रव ही करता है। अशुभास्रव से नरक, तिर्यंच आयु का बंध करता है। ध्यान रखना, ऐरण्ड की लकड़ी ऊपर से अच्छी दिखती है, अन्दर ही अंदर खोखली हो जाती है। उसी प्रकार उस योगी की परिणति है जो ऊपर की क्रियाओं में साधुता दिखा रहा है अन्दर में कामनाओं-वासनाओं, अहंकार, ममकार का धुन लगा है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोइस्स परिणदी होदि जो उवरी किरियाए साहूत्तं दिक्खावेदि अंतसे इच्छाओ-वासणाओ, अहंकारस्स, ममकारस्स घुणं लग्गिदा, बुज्झेदि अंतसेत्तो साहुत्तं णिब्बला आसि। णिब्बल- साहुत्तं कम्मासवेव कारणं, णिज्जर-मोक्खस्स ण हेदू। भो णाणि! णीय साहणस्स लक्खं काऊण वट्टेहि, अण्णहा-उहय-लोअ-सुहत्तो तू रहिदो होस्ससि। आसव-हेऊओ विरमेज्ज, संवरं, णिज्जरं पडि णिय पुरिसत्थं कुणेज्ज।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

समझना अन्दर से साधुता खोखली है। खोखली साधुता कर्मास्रव का ही कारण है, निर्जरा, संवर मोक्ष का कारण नहीं है। भो ज्ञानी! स्व साधना का लक्ष्य बनाकर चल, अन्यथा उभय लोक के सुखों से तू रहित हो जाएगा। आस्रव के कारणों से दूर रह कर, संवर निर्जरा के प्रति अपना पुरुषार्थ कर।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुज्झोवओगस्स फलं मोक्खो

हे विण्हु! जीवाइ-दव्वादो पुण्णो लोगो उवरिं, मज्झ, अहस्स भेयत्तो तीविहो। अहो भागे णरगं-णिगोदं, मज्झ लोयम्हि असंखाद दिव समुददा उड्ढ-लोयम्हि सग्गं, सग्गस्स अग्गे सिज्झालयं। इमेसु लोगेसु जीवो अण्णाणादो भमेदि। तएसु लोगेसु जीवो अणाइयालत्तो भमंतो। तए लोयम्हि सुहासुह-परिणामादो भमंतो। सुहासुहस-भावं अणाइयालत्तो दिट्ठं, सुदं अणुभूदं विसयादो कुणेदि। हे चेयण्ण? असुह भावत्तो तुं णिरिए-तिरिए भमिदो, सुहोव-ओगाओ सग्गं संपज्जिदं, सुहासुह-मिस्सादो

शुद्धोपयोग का फल मोक्ष

हे प्रज्ञ! जीवादि द्रव्यों से भरा ये लोक ऊर्ध्व, मध्य, अधो के भेद से तीन प्रकार का है। अधो भाग में नरक निगोद, मध्य लोक में असंख्यात द्विप समसुद्र हैं, उर्ध्व लोक में स्वर्ग है, स्वर्ग के आगे सिद्धालय है। इन लोकों में जीव अज्ञान वश भ्रमण कर रहा है। तीनों लोकों में जीव अनादि काल से भटक रहा है। तीनों लोक में शुभाशुभ परिणामों के वश में होकर घूम रहा है। शुभ-अशुभ भाव आदि अनादि काल से दृष्ट, श्रुत, अनुभूत विषयों के वश होकर कर रहा है। हे चैतन्य! अशुभ भावों से तू नरक, तिर्यंच गति में भटका, शुभोपयोग से स्वर्ग को प्राप्त किया, शुभाशुभ के मिश्रण से मनुष्य गति को प्राप्त किया है। शुभ-अशुभ उभय भावों के अभाव से शुद्ध भाव होते हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मणुगइं पज्जिदो। सुहासुह उहय भावाणं अहावत्तो सुभभावो हेदि, जं आगमे सुभोवओगो भण्णीदो सुहावओगस्स फलं मोक्खं। भो चेयण्ण! परम-पारिणामिग-भावजुत्तो तुज्झ आदसरूवो तहेव लहेसु। पर-दव्वेहिंतो णिय-रागपरिणदिं मुच्चित्ता, सरूवे रमेज्ज। णिय पहावणं पेक्खहि, बहिं पहावणाए मा आसत्तेहि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

जिसे आगम में शुद्धोपयोग कहा जाता है। शुद्धोपयोग का फल मोक्ष है। भो चैतन्य! परम पारिणामिक भाव से युक्त तेरा वास्तविक स्वरूप है उसी की प्रप्ति कर। पर द्रव्यों से अपनी राग परिणति का त्याग कर, स्वरूप में रमण कर। आत्म प्रभावना की ओर दृष्टि रख, बाह्य प्रभावना में ही मत लगे रहना।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहे आददिट्ठी हु दुरप्पणो

हे णिम्मल-आद! तुं णाण-घण-सरूवो। अमुत्तो तुज्झ सरूवो। पोग्गलं-सरूवो मणणेणं, तुज्झ अण्णाणत्तं। भो णाणि! तुं गिह-परिवारं बेहव मुंचिदो एवं साहुसरूवं धारिदो। विवारेहि! अहुणा वि किंचि जहिदव्वं, तं पडि तुज्झ दिट्ठी किं णो गच्छेदि? अण्ण दव्वादो। वि रागं मुच्चिदो, परं जास दव्वम्हि तु णिवसेसि पडिक्खणे, तं देहं पडि ममत्तंकेत्तिअं अवसारीदो? किं चि वियारेहि! चिंतेज्जा परमाणू पमाणं पि गत्ताइगेहिंत्तो पर-दव्वेहिंतो रागं अत्थि, तो हे जोइ? तू सिद्धिं ण पावेसि, अविदु संपुण्णं आगम कंठम्हि

शरीर में आत्मदृष्टि ही दुरात्मा

हे विशुद्धात्मन्! तू ज्ञान घन स्वरूप है। तेरा स्वरूप अमूर्त है। पुद्गल में रहना, पुद्गल को स्वरूप मानना, तेरी अज्ञानता है। भो ज्ञानी! तूने घर छोड़ा, परिवार छोड़ा, वैभव छोड़ा एवं साधु रूप को धारण कर लिया। पर ध्यान रख! अभी भी कुछ छोड़ना है, उस ओर तेरी दृष्टि आज तक गई कि नहीं? अन्य द्रव्यों से भी राग हटा, पर जिस द्रव्य में तू निवास कर रहा है प्रतिक्षण, उस शरीर के प्रति ममत्व कितना दूर हुआ? जरा विचार कर, ध्यान रख, परमाणु प्रमाण भी शरीरादि पर द्रव्यों से राग है, तो भो योगी! तू सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता, भले संपूर्ण शास्त्रों को कण्ठ में धारण किये हो। ज्ञान तो जानकारी मात्र है। जब तक विरक्त भाव नहीं है, तब तक शास्त्र ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गहेसि। णाणं तो णाण-मेत्तं। जावं वेरग्ग-भावोण होज्जा, तावं आगमणाणं किं कुणेज्जा? अभव्व-जीवस्स एगारह-अंगस्स णाणं सक्केदि, किं तं सिद्धी दायमं? मेत्त जसं गहावेदि। वियारेसु! साहगो सरीरस्स असुइत्तं, अणिच्चस्स पवयणं करित्ता जण-जणाइं बेहिदूणं भाव संजुत्तो करेदि, वेरग्गं गहावेदि। किण्णु तारिसं भाव-भासणं अंतस पेक्ख! अत्थि णत्थिवा? देक्ख! अण्ण-जणाणं ते जीव ठिदो-देहम्हि रागं कुव्वंते परण्णु भो णाणि! तुं गत्तछाईए रागं कुव्वेसि। किं साहगा पवज्जं पोग्गल-पयासत्थं एव गिण्हंते, जइत्तु चित्ताणि साहगस्स होदि, तत्तो अण्ण-सावगस्स दुल्लहा होंति। छाई

क्या कर सकता है? अभव्य जीव को ग्यारह अंग तक का ज्ञान होता है, क्या वह सिद्धि दायक है? मात्र यश दिला सकता है। पर सोच! साधक शरीर के अशुचित्व, अनित्य स्वरूप के बारे में तो प्रवचन कर जन समुदाय को समझाकर भाव विभोर कर देता है, वैराग्य करा देता है। पर वैसी भाव-भासना स्व के अंदर देख! है या नहीं? देख अन्य जन तो मात्र जीव स्थित देह में राग करते हैं लेकिन, भो ज्ञानी! तू तो शरीर की छाया पर राग कर रहा है। क्या साधक वर्ग दीक्षा पुद्गल के प्रचार के लिए ही लेते हैं? जितने चित्र साधक के निकलते हैं, वे शायद ही अन्य किसी गृहस्थ के निकलते हों। चित्रों को देखकर बहुत खुश होते हैं, जिस कार्यक्रम में फोटो नहीं निकले तो लगता है, कार्यक्रम अधूरा ही है। अब वे कैसे समझे कि संसार में वैराग्य है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्ताणं बहुआ हरिसंते, जास सहाए छाईचित्तं ण होदि ताव अणुभवेदि सहा णिरसा। अहुणा सो कस्स जाणेदि संसार-देहत्तो वेरग्गो अत्थि, जो भुई होहिदि तस्स देहे पडिढो, परोप्परं आलेक्खं चित्तं णिय-चित्तं मलिणं कुणेदि। भो चाइ! वेरग्गि। तुज्झं वेरग्गो कदा होहिदि? किं बारसाणुवेखाए चिंतणं तुज्झ चरियाए बहिरं? अणुवेक्खाओ चिंतगो गत्तालेक्खं उज्जोयत्थं वियप्पम्हि जीवेदि? सो खलु सज्झायस्स मुक्खुं होदि। जस्स साहगस्स पत्तीगा चित्ताणं ण होंति ते सेट्ठ-साहगस्स कमेण बहि अत्थि अणुमाणेण चित्तेसु णो चित्तत्तणं चिंतेहि,....

जिसको राख हो जाना है, उस शरीर के पीछे पड़ा है, एक दूसरे के चित्र देखकर अपने चित्त को मलिन करता है। भो त्यागी! अब तुझे वैराग्य कब होगा? क्या बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन तेरी चर्या से बाहर हो गया है? अनुप्रेक्षाओं के चिन्तक शरीर के चित्रों को छपाने की चिन्ता में जी रहे हैं? वही स्वाध्याय का मुख्य अंग बन रहे हैं। जिस साधक के कलेन्डर फोटो नहीं निकलते वो शायद वरिष्ठ-साधक की गिनती में नहीं आते। पर देख चित्रों में नहीं चित्तपने का विचार कर, कागज तो समाप्त हो जाएगा।

हे प्रज्ञ! कुन्द-कुन्द स्वामी, कार्तिकेय स्वामी से तो एक बार शरीर की स्थिति का ज्ञान कर ले इसमें है क्या, पवित्रता? जिसकी ख्याति में साधुवर्ग पड़ा है आत्मख्याति को छोड़कर। कोई राज होना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भो पण्ण! कुंद कुंद-कत्तिकेय सामिणा एगहुत्तं शरीरणाणं लहेसु इमे किं आसि, सुइदा? जस्स पहावणाए साहु-वग्गो समाहिदो तं अप्पपहावणं मुच्चित्ता। कोई रहस्सो होयव्वो अरे! शरीरंपि तुह णियदव्वं ण, तुं असरीरी चिदसरूवो त्थि, जाव तुमं जाणेहि पुणरवि परिपोसणं किं? धिक्कारो त्थि, मिच्छा-परिणदिं। सरीरम्हि आदइट्ठी जस्स सो कस्स महप्पा? सो दुरप्प हु। अरे! जस्स फासमेत्तादो सुट्ठु-पवित्तं, पुप्फमालं, चंदण-गंधं णि चित्तं हरिदं सो वि सिग्घं गंधं दिण्णं, जं अट्ठीहिंत्तो बंज्झिया, मासेहिंत्तो लित्तो, चम्मादो अच्छिदो, किमि पुण्णो, अपवित्त-देहस्स वि किंचिवि वियारेसु।

चाहिये। अरे शरीर भी तेरा स्व द्रव्य नहीं है, तू तो असरीरी चिद्स्वरूप है जब तुझे मालूम है फिर भी इसकी पुष्टि क्यों? धिक्कार हो, मिथ्या परिणति को। शरीर में आत्मा दृष्टी जिसकी है वह महात्मा कैसा? वह दुरात्मा ही है। अरे जिसके स्पर्श मात्र से सुन्दर पवित्र, पुष्प माला, चन्दन गन्ध जो मन को हरण करने वाला वह भी शीघ्र दुर्गन्ध को देने लगता है, जो हड्डियों से बंधा मांस से लिप्त है, त्वचा से आच्छादित है, कृमियों के समुह से भरा है, अपवित्र शरीर के बारे में तनिक तो विचार कर। इतना ही नहीं, भो ज्ञानी! अचेतन दुर्गंधित, अनित्य है। सड़ना, गलना, मृत्यु को प्राप्त हो जाना उसका स्वभाव है। इस प्रकार एक बार शरीर की सत्यता समझकर इससे राग को हटाकर स्वशुद्ध आत्म द्रव्य की ओर दृष्टि डाल, वही उपादेय है। इस प्रकार चिन्तवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इयत्तु वि णो, भो णाणि! अचेयणं दुग्गंधियं, विभस्सं घिणिदं, रस-रूहिर-मंस-मेद-अट्ठी-मज्झा-मुत्त-पीव-सुक्कआइ-मलेहिं संपुण्णं, चम्मकिदं, मुत्तियं, दुग्गंधिअ, अणिच्चं। सडण-गलण-मिच्चु-पत्तं तस्स सहावोत्थि। एवं एगहुत्तं सरीरस्स सच्चाइं जणित्ता इमस्स रागं छंडिदूण परम विसुद्धं अप्पं पडि पेक्खहि, सो एव उवादेयो। चिंतणं असुचि-भावणा व इणमेव सरीरत्तो रागं मुच्चत्थं वरकला अत्थि तं णादूणं च सग-दव्वम्हि पउत्तो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

करना अशुचि भावना है, और यही शरीर से राग हटाने की अनुपम कला है। उसे सीखकर स्वद्रव्य में लीन हो जा।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवरेणं बिणा अप्पसिद्धी-असंभावो

हे मुमुक्ख! मोक्खलाहो संवर पुव्वगो णिज्जराए होहिदि। तम्हा संवरस्स चिंतणं कुण। संवेरणं विणा अप्पलद्धी असंभवो। सव्व पढम-साहगे मोक्खत्थं उज्जमं णवि संवरत्थं होदव्वो। जो संव्वरुज्जमं कुणेज्जा तस्स मोक्खुज्जमो सयमेव होदि। पुढत्तो णो आवस्सगत्तं ण णवीण-कम्मांणं पवेसो णत्थि पुराणि कम्माणि णिज्झरेदि। इणमेव कमो होहिदि तदा एगया, एरिसे मंगलं होज्जा, तुज्झ णिव्वाण-कल्लाणगं च होहिदि एव सच्छ-णिम्मल-फलिह व्व-टंकोक्किण्णंपरमं-पारिणामिगा जा विसुद्ध अवत्था तास लाहो

बिना संवर के आत्मसिद्धि संभव नहीं

हे मुमुक्षु आत्मन्! मोक्ष की प्राप्ति संवर पूर्वक निर्जरा से होगी इसलिए संवर भावना का चिन्तवन कर। बिना संवर के आत्मसिद्धि संभव नहीं है। सर्वप्रथम साधक के अन्तः करण में मोक्ष की तैयारी नहीं, संवर की होनी चाहिए। जिसने संवर की तैयारियां कर ली हैं, उसकी मोक्ष तैयारियां स्वमेव हो गई। अब अलग से तैयारियां करने की कोई आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि नवीन कर्म प्रवेश नहीं कर पा रहे, पुराने कर्म निजीर्ण हो रहे हैं। यही क्रम रहेगा तो एक दिन ऐसा मंगलमय होगा, कि तेरा निर्वाण कल्याणक मन जाएगा। अर्थात् शुद्ध स्फटिक समान निर्मल, टंकोत्कीर्ण, परम पारिणामिक जो शुद्ध दशा है उसकी प्राप्ति हो जाएगी। लेकिन भो ज्ञानी! वह संवर है क्या? एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होस्सदि। णाणि! सो संवरो को? कधं होदि इणं पुव्वं जाण। जाव तुज्झ सव्वरणाणं ण होदि ताव तुं कधं संवरेसि? संवरो-संवरो इणं जवंतेण संवरो णो। संवर-तच्चभावणं जाण, सं-रूवेण आयारेहि तुं संवर सरूवं लहेहिसि। आगच्छंतो कम्म-णिरोहो त्थि संवरो। आसवादो पुढो जाएहिदि ताव संवरो होहिदि। अप्पाणं सत्तु त्थि मिच्छत्तो। तं मिच्छत्तं सत्तुं णिरोहेहि। तं कहं होस्सदि? तस्सिं च वियारेहि। भो चेयण्ण! जइ तुं रायं जयेसि पुणविसेस-पुरिसत्थावस्सगत्तणं ण होज्जदि। दुट्ठ-मिच्छत्तेणं अज्ज पेरंतं - भवसायरम्हि भमावेदि इमं समूलं णस्सिदं, तहेव संत्तीए चिट्ठेहि।

होता है कैसे? इसे पहले समझ। जब तक तुझे संवर का ज्ञान ही नहीं होगा, जब तक तूं कैसे संवर करेगा? संवर हो, संवर हो इस बात की जाप्य करने से तो संवर संभव नहीं है। संवर तत्त्व भावना को समझ, समीचीन रूप से तद्नुसार प्रवृत्ति कर तू संवर के स्वरूप को प्राप्त कर लेगा। आते हुए कर्मों का रुक जाना उसे संवर कहते हैं। आस्रव के प्रत्ययों से पृथक हो जाएगा, तब संवर होगा। आत्मा का सबसे प्रबल शत्रु है, मिथ्यात्व। उस मिथ्यात्व शत्रु का निरोध कर। वह कैसे होगा? उस पर विचार कर। भो चैतन्य! यदि तू मूल सम्राट को परास्त कर देगा फिर विशेष पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं होगी। दुष्ट मिथ्यात्व ने ही आज तक भव सागर में भरमाया है इसके लिए जड़ मूल से नष्ट कर देना, तभी शान्ति की श्वांस लेना। शुत्रु चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, शुत्रु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रिऊ सुच्छो थुलो वा सत्तू ताव सत्तेव त्थि ण णाणं कह छलेहि ठगेहि। अओ सम्मत्तरूवं वज्जदारं कादूणं मिच्छतं संवरेहि। ण णिद्दोस संमत्त-दारं सलग्गिदेण सत्तु-सबलो, किंचिवि। सोत्तं पाउण णिय कज्जं कुणेदि, मिच्छत्तं-णिकम्मो मा जाणेसु। मुणणं, णिग्गोड तरुबीअं पुण तस्सिं अइमिउं वालतुल्ल-मूलं गिरिं फाडेदि जाव णिय विअराल रूवं गहेदि, सव्व रुक्खेहिं विसाल रुक्खो णियबले चिट्ठदे। इणमेव दसा मिच्छत्तस्स अत्थि। सणियं-सणियं पवेसंतो सम्मत्त-गिरिम्हि, णिय-मिच्छापरिणदीहि सणियं-सणियं मोहित्ता विसाल संसार-रुक्खं करेंति। अओ मिच्छत्त-सोदंः-चल-मल-

---

तो शत्रु ही है, क्या मालूम कब छल ले। इसलिए सम्यक्त्वरूप दृढ़ वज्र कपाट लगा कर, मिथ्यात्व का संवर कर। पर निर्दोष सम्यक्त्व कपाट लगाना, शत्रु प्रबल है, जरा सा स्रोत मिलने पर अपना कार्य कर लेगा, मिथ्यात्व अकार्यकारी नहीं समझ बैठना। ध्यान रखना, वट वृक्ष का दाना फिर उसकी नाजुक पतली बाल जैसे जड़े पर्वत को फाड़ देती हैं, जब अपना बड़ा रूप धारण कर लेता है, सर्व वृक्षों से दीर्घ वृक्ष अपने बल पर खड़ा कर देती है। यही दशा मिथ्यात्व की है। धीरे-धीरे प्रवेश करता सम्यक्त्व रूप पर्वत पर, अपनी मिथ्या परिणतियों से धीरे-धीरे अधिकार कर, महान विशाल संसार वृक्ष को खड़ा कर देता है। इसलिए मिथ्यात्व का स्रोत-चल, मल, अवगाढ़ ये तीन दोष हैं यदि उन पर कंट्रोल नहीं किया तो वह धीरे-धीरे मिथ्यात्व का रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओगाढं च तिदोसा, जदि ते ण संजमेदि तदो तं सणियअं सणियमं मिच्छत्तरुवं धारेहिदि। अओ सम्मत्तदारं दिडं होदव्वं, ऐरिसो जिणेणं भणिदं।

भावेण सह पंच महव्वएहिं भो णाणि! तूं पंचविह अविरदिं-णिसेहेहि। कसाय-भावत्तो आसव-णिरोहं अकसाय-परिणामेहिं करेसु। मणसा वचसा कायसा हुव-आसवं मणोगुत्ती-वयण-कायगुत्तीए णिरोहेहि। जा अप्पं असुह-भावाओ सुरक्खेदि सा गुत्ती। सुहोवओगस्स वित्ती असुहोवओगं संवरेदि सुहोवओग-णिरोहं सुद्धोवओगादु संभवो। सुहोवओगो मुक्खरूवेण धम्म-सुक्क

धारण कर लेगा। इसलिए सम्यक्त्व का कपाट दृढ़ होना चाहिए ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

भाव सहित पांच महाव्रतों से भो ज्ञानी! तू पांच प्रकार की अविरति का निरोध कर। कषाय भावों से अपने वाले आस्रव का निरोध अकषाय परिणामों से कर, एवं मन-वचन-काय से होने वाले आस्रव को मनोगुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति से निरोध कर। जो आत्म को अशुभ भावों से बचाए, वह गुप्तियां है। शुभोपयोग का निरोध शुद्धोपयोग से संभव है। शुद्धोपयोग मुख्य रूप से धर्म शुक्ल ध्यान का नहीं, संवर का हेतु है। हे मनीषी! उस पावन ध्यान की साधना कर। निश्चय नय ये निर्विकल्प समाधि ही संवर का हेतु है, व्यवहार से त्रिगुप्ति, पांच समिति, दस धर्म, बारह अनुप्रेक्षाएं, बाईस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

झाणस्स णत्थि, संवर हेदू त्थि। भो मणीसि! तस्स पावण-झाण साहणं कुण। णिच्छयणयेण णिव्विअप्प समाही एव संवर-हेदू, ववहारेण तिगुत्ती, पंच समिदी, दह धम्मो वारह-अणुवेक्खा, बावीस-परिसह-जया तेरस विह चरिय-अणुपालणं संवरहेदू परम-सुद्ध णिच्छय णयादु आद-संवरो। सद्द-रूव-किरिया संवरो, णत्थि, ण संवर-किरियाओ। णिय सुद्धप्प-सहावे थिरत्तं सयं संवरो त्थि। तम्हा- भो णाणि! उहय-संवर-सिद्धीए संलग्गेहि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

परिषह जय, तेरह प्रकार का चारित्र का पालन ये संवर के हेतु हैं, परम शुद्ध निश्चय नय से आत्मा ही संवर है। शब्द रूप, क्रिया रूप न कोई संवर है न संवर की क्रियाएं है। स्व शुद्धात्मा में लीनता स्वमेव संवर है। इसलिए भो ज्ञानी! उभय संवर की सिद्धि में लीन हो जा।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विसुद्ध-विसेसणं विसुद्धेज्जा

भो णाणसरूवो अप्पण! एग समये सिद्धाणं अणंदभागे, अभव्व-जीवादो अणंतगुणे कम्मणं बंधो त्थि तम्हा समयप्पबद्ध-पमाण-कम्म-बंध पडि समयो। णिज्जरा तुमं कियत्ता कुणेसि? एरिसो दु णो आगच्छिदा णिज्जराठाण-लाहत्थं पर विवरीदं बंधेदि। कसायठाणाणं बड्ढेदि या विसुद्धीठाणाणं? कवि उवविसिउं तुं विचिंतेसि? भो विसुद्ध सायरो? चिंतेहि, तुज्झ णामे अइविसालं विसेसणं लग्गिदा एगो विसुद्ध व बीओ सायरो, चिंतेहि विसुद्धो एव सव्वं अत्थि। विसुद्धीए विणा, केत्तियं वि चागं, तवस्सं, पवयणं करेसि, किण्णु जहेव जसकित्त-णिय कज्जं करेदि, तहेव जसो

विशुद्ध विशेषण को विशुद्ध ही रखना

भो ज्ञान स्वरूप आत्मन्! एक समय में सिद्धों के अनन्तवें भाग अभव्य जीवों से अन्त गुणे कर्मों का बन्ध हो रहा है यानि समयप्रबद्ध प्रमाण कर्मों का बन्ध प्रति समय हो रहा है। निर्जरा तू कितनी कर रहा है? ऐसा तो नहीं, कि आये थे निर्जरा-स्थान की प्राप्ति के लिए पर उल्टा बन्ध कर रहा है। कषाय स्थानों की वृद्धि हो रही है या विशुद्धि स्थानों की? कभी बैठकर तू चिन्तवन करता है? भो विशुद्ध सागर! ध्यान रख़ तेरे नाम में बहुत बड़े विशेषण लगे हैं- एक ओर विशुद्ध दूसरी ओर सागर। ध्यान रख, विशुद्धि ही सर्वस्व है। विशुद्धि नहीं है तो कितनी ही त्याग, तपस्या, प्रवचन कर लेना, लेकिन जब यशः कीर्ति अपना कार्य कर रही है, तब तक यश तो फैल जाएगा, पर आत्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पसरेहिदि, पर अप्प-खादी ण लब्भेसि। किं पवज्जा-समये मेत्त-उवए-सेव तुम्हं लक्खो आसी? अदुवा आद-कल्लाणस्स। खायोवसमिग-णाण-संपत्तेहि अहं माणं मा कुणेसु इणं वि अणिच्चं। किं तुम्ह णाणं कहं को असमण्णो होस्सदि, चरमठिदीए णाणं कज्जं करेदि वा णो। तहेव तच्च-चरिचा, उवएसो, पवयणसारो जहेव आद-विसुद्धी। जहा आद विसुज्झीए अभावो तहा धम्मं मुण किरिया कंडं मेत्तो णायेसु, अप्पधम्मादो रहिदा परिणादी एव जाण। हे चेयण्ण! किंचि मुण "विसुद्ध" विसेसणं विसुद्धं कुण असुद्धं मा। उवाए सो ण पहावणा णो सरीरस्स, अप्पपहावणं, अप्प-धम्मं, खमं, संति णो मुंचेसु। अवर-विसेसणं

ख्याति से वंचित रहेगा। क्या दीक्षा लेते समय पर उपदेश ही मात्र लक्ष्य था तेरा? या आत्म कल्याण का क्षायोपशमिक ज्ञान की प्राप्ति कर अहं मत कर बैठना, ये भी विनाशीक हैं, क्या तुझे ज्ञात है कब कौन पागल हो जाए, अंतिम दशा में ज्ञान कार्य करता है या नहीं। तब तक ही तत्त्व चर्चा है, उपदेश है, शास्त्र प्रवचन है, जहां तक आत्म विशुद्धि है। जहाँ आत्म विशुद्धि का ही अभाव हो रहा है, वहाँ धर्म को कोरा क्रिया काण्ड समझो, आत्म धर्म से रहित परिणति ही समझो। हे चैतन्य! चेत जरा, विशुद्ध विशेषण को विशुद्ध ही रखना, अशुद्ध मत कर बैठना। उपदेश न हो, प्रभावना न हो शरीर की, पर आत्मप्रभावना, आत्म-धर्म, क्षमा, शांति, उसे मत खो बैठना। दूसरा विशेषण है सागर, सागर में जितनी ही नदियों की बाड़ आ जाए, नदियाँ उथली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"सायरो" सायरो एव सो णो जादि णिय-सीमाए बहिरो सो गहीरो, णिय मज्जादं अइक्कमेदि, सायरो कयावि णिय मज्जादं णो अइक्कमेहि। तहेव पडि साहगे-पच्छावि सायरो त्थि। भो साहु! सो विसमत्तणेसु उवसग्गेसुं, संमाणे अवमाणे वि सायरो त्थि। साहू सावगो अण्णाणी, मिच्छदिट्ठी कुणेहि णं णिय गहीर चरिआए-विणासं मा कुणेहि। चरियाए गंभीरत्तं, वायाए महरत्तं, चित्ते सणेहं, वच्छल्लो, पेम्मो, मेत्ती, करुणा, पमुदित्तं मज्झत्थभावो आवस्सगो त्थि। विसुद्धसायरो तुह णामो सत्थगो। अण्णहा तुज्झेव अण्ण वाहणीसुं का अवरा भेयं णा जो सयं पडिदस्सं खु पुण किं पडेहिदि, जो उट्ठो होदि सो च्चिय पडेहिदि। अओ इत्तो मुणेहि-अहुणा

होती है, अपनी सीमा तोड़ देते है पर, सागर तो सागर ही रहता है, वह अपनी सीमा से बाहर नहीं जाता गंभीर रहता है। उसी प्रकार प्रत्येक साधक के नाम के पीछे सागर लगा रहता है। भो साधु! कितनी विषमताएं आ जाएं, उपसर्ग परिषहों के पहाड़ टूटें, तेरा अपमान ही नहीं, महाअपमान हो जाये, चाहे साधु करे, चाहे श्रावक करे, अज्ञानी, मिथ्या दृष्टि करे, पर अपनी गंभीर चर्या का विनाश मत कर बैठना। चर्या में गंभीरता, वाणी में मधुरता, हृदय स्नेह, वात्सल्य, प्रेम, मैत्री, करूणा, प्रमुदिता, माध्यस्थता होना अनिवार्य है, तभी विशुद्ध सागर नाम तेरा सार्थक है। अन्यथा तेरे और सामान्य नदियों में कोई अन्तर नहीं रहेगा। गिरे का क्या गिरता, जो खड़ा होता है, वही गिरता है। इसलिए इतना ध्यान रखना अभी वर्तमान में तेरे उठते कदम हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संपडिए तुज्झ उट्ठंते पाए साहणाए। किंचि सावगा इच्छंते। (अहं परिपुण्णो व धम्मसुण्णो) अण्णस्स उण्णदिं किं होदु? को कत्तो वि उज्जमेहि, झाणेहि, आद सहावं ण मुंचेसु ण तं एरिसं कलंगं लग्गेज्जदि, जस्स तुं इदं पज्जाए कयावि ण सुहरेसि। भावी-पज्जाअं को जाणेदि, अओ वट्टमाण-परिणदीए विसेसे। विचारेहि। जाव वि विक्किदो होइ खीरं, तक्कं कि विक्कदं होस्सदि अवजशो, कित्ती, माणे, तासेव पसरावेदि जास को कित्ती ण होइ, तास माणवमाणेण को पओजणं ण होदि। अओ णाणी विवेगेणं सह कज्जं कुण। बंधू जस-पइट्ठाए समये लग्गेदि, णासम्हि को विविट्ठं कालो व पुरिसत्थं ण लग्गेदि अओ विचंते हि तुमं पर परिणदीए रहिदो होऊण,

---

साधना के। चन्द श्रावक वर्ग तो चाहते हैं (जो कि अहं से ओत-प्रोत धर्म से शून्य हैं) सामने वाले की उन्नति क्यों हो? कोई कितना प्रयास करे, पर ध्यान रख अपने स्वभाव को मत खो बैठना, नहीं तो ऐसा कलंक लगेगा, जिसे तू इस पर्याय में सुधार ही नहीं कर सकता। भविष्य की पर्याय को किसने जाना इसलिए वर्तमान परिणति पर विशेष ध्यान रख। जब भी फटेगा तो दुग्ध, छांछ क्या फटेगी। अपयश, कीर्ति, मान उसी का फैलाया जाता है, जिसकी कोई कीर्ति न हो, उसे मान, अपमान से कोई प्रयोजन नहीं। इसलिए ज्ञानी विवेक से कार्य करता है। भैया कीर्ति, प्रतिष्ठा बनाने में काल लगता है, मिटाने में कोई विशेष श्रम, काल नहीं लगता। इसलिए ध्यान रख पर परिणति से रहित होकर, ऐसी क्रिया कर जिससे पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एरिसं किरियं कुणेज्जसु जास पुव्व संचिअं कम्म-णिज्जरा होइ व अपुव्वं कम्माणं बंधेदि णो।

पुव्वबंद्धाणं कम्माणं गलणं, णिज्जरा भासिदा। जेणं भावेणं संवरो होदि व जं संवरस्सहेदू, ता एव णिज्जरा हेदू। तस्स भाव-कम्माणं णिज्जरावि होदि। सा णिज्जरा दुविहा-सविवागा-अविवागा च। णिय समय-विवागे णिज्जरिय कम्मं सविवागणिज्जरा। इमा सविवागा णिज्जरा चउगदीणं जीवाणं होंति। बीआ णिज्जरा अविवाग-णिज्जरा। जा समय-पुव्वं तवेण संवरपुव्वे ण होदि, तं आगमे अविवाग-णिज्जरा वुच्चिदा। सा अविवाग णिज्जरा वयारूणो संजमी जीवाणमेव होदि। पदमं

एवं नवीन कर्मों का बन्ध भी न हो।

पूर्वबद्ध कर्मों का गलना, निर्जरा कहलाती है। जिन भावो से संवर होती है, अथवा जो संवर के कारण हैं, वे ही निर्जरा के कारण हैं। उन भावों से कर्मों की निर्जरा भी होती है। वह निर्जरा दो प्रकार की है- सविपाक, अविपाक। अपने समय के आने पर कर्मों के निर्जीण होने को सविपाक निर्जरा कहते हैं। यह सविपाक निर्जरा चारों गतियों के जीवों में पायी जाती है। तथा दूसरी निर्जरा अविपाक निर्जरा है। जो समय पूर्व तप के द्वारा संवर पूर्वक होती है, उसे आगम में अविपाक निर्जरा कहते हैं। वह अविपाक निर्जरा व्रतों से युक्त संयमी जीवों के ही होती हे। प्रथम निर्जरा से मोक्ष मार्ग में कोई हित नहीं है। द्वितीय निर्जरा ही मुमुक्षु जीव के कल्याणकारी है, शेष नहीं। इसलिए प्रत्येक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिज्जराए मोक्ख मग्गे कोवि हिदो णत्थि। बीए णिज्जराए मुमुक्खू जीवस्स कल्लाणगारी आसी ण अण्णा। अओ पइखणे सुरक्खा-अइआवस्सगो। साहग। तुं सहज-णिय सरूवे वसिउं सिक्खेहि, तत्तो णिय लक्खं पावेहिदि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

क्षण में सावधानी रखना बहुत आवश्यक है। भो साधक! तू तो सहज स्वरूप में लीन रहना सीख ले, तो अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिणधम्मो हि सुधम्मो

विसुद्ध आद! पडिदं पावणं करणत्थं को वि मग्गो अत्थि दु सो जिणोवइट्ठो सद्धम्मो वीदरागं धम्मं चयित्ता अण्णं कोवि एरिसो ण जो इणं जीवं संसार-सायरादु णित्थारेदि। इणं जीवो अणाइ-कालत्तो संसार-सायरम्हि पउत्तो। इणं चुक्कस्स हेदू त्थि कुधम्मं सुधम्मो जाणित्ता तस्सेव भुंजिदं कुसेवणं कादूण ण कोवि णिरोईजादो व होस्सदि। विवरीद-मग्गे चलिऊण को एरिसो जणो अत्थि जो लक्खं लहेहिदि। भो चोयण्ण! मग्गी लद्धिं सुमग्गे च्चिय होस्सइ। दिसाए विहीणो कयाइ णिय खेत्तं ण लहेदि। अओ। भो णाणि! तुं धम्मस्स चिय भावाणं भजेहि, जिण-सासणं जिणं होऊण

जिनोपदिष्ट ही सद्धर्म

हे विशुद्धात्मन्! पतित को पावन बनाने वाला यदि कोई मार्ग है तो वह है जिनोपदिष्ट सद्धर्म। वीतराग धर्म को छोड़कर अन्य कोई ऐसा नहीं है जिससे यह जीव संसार सागर से उत्तीर्ण हो सके। इस जीव ने अनादि काल से संसार गर्त में गोते खाये। इस भूल का हेतु यह रहा कि कुधर्म को यह सद्धर्म मानता रहा, उसी का सेवन करता रहा। कुपथ्य सेवन करके कोई न निरोग हुआ है, न हो सकता है। विपरीत मार्ग पर चलकर कौन ऐसा व्यक्ति है जो लक्ष्य की प्राप्ति कर लेगा। भो चैतन्य! मार्गी की प्राप्ति सद्मार्ग से ही होगी। दिशा विहीन व्यक्ति कभी स्व क्षेत्र को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए ज्ञानी। तू धर्म की ही भावना भाना, जिनशासन को जैन बनकर ही मानना, जिन बनने के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हि माणोहि, जिणत्थं ण एरिसो वि जीवो अत्थि, जो जादिणा जिणा व धम्मेणं वि णियं जिणो धम्मप्पणो कहेदि, णं सिद्धंत-सुत्तेहिं जिणो भणेइ तं सविणे वि अणुइअं तव चेयणे कस्स कहामु? जाईए किरियाए वा पुण्णं जिणसासणमेव गहिदं, पुण अंतसे सिद्धंत-सुत्तादो विहीणो होदूण सगस्-णमोत्थु सासणं समलं-कुणेदि। जास को विज्जणा कहेदि मुणेहि पिवेहि अणुं सेहि को जाणेदि सग्गं, णारगं, मोक्खं च वट्टमाण-सुहाइं मुंच्चित्ता भावीए अंणतरे किं होमु? संपडीए भोगोवभोगं सेवित्ता सयं सुहिं कुण, एरिसं चिंतणं चदुवाग-मदे अत्थि। जावं जीवणं तावं सुहेण जीवेहि रिणं गहिऊण घियं पिव। एसो सिद्धंता एसो त्थि चदुवाग-दंसणम्हि। एवं सद्धा जं

लिए। नहीं तो ऐसे भी जीव मौजूद हैं, जो जाति से जैन हैं एवं धर्म से भी अपने आपको जैन धर्मात्मा कहते हैं, लेकिन सिद्धांत एवं सूत्रों से जिन कहलाने लायक तो वे स्वप्न में भी नहीं है जागृत में कैसे जैन धर्मात्मा कह दें? जाति व क्रिया काण्डों से पूर्ण जिनशासन को ही धारण किए रहते हैं, फिर भी अन्दर सिद्धांत सूत्रों से विहीन होकर स्व नमोऽस्तु शासन को कलंकित कर देते हैं। जैसे- कोई व्यक्ति कहता है, खाओ, पीओ, मौज करो, आगे कौन जानता है स्वर्ग, नरक, मोक्ष? वर्तमान के सुखों को छोड़कर भविष्य के पीछे क्यों पड़े हैं? वर्तमान में भोग, उपभोग का सेवन कर स्व को सुखी कर, ऐसी धारणा चार्वाक मत की है। जब तक जीना है तब तक सुख से जीओ, ऋण लेकर घृत का पान करो, ये सिद्धांत जैन का नहीं, ये तो सिद्धांत चार्वक दर्शन का है। इस प्रकार आस्था जिस किसी भी जैन जाति वाले व्यक्ति की हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किंवि जिणजणस्स होइ इमा वत्था चदुवाग दंसणस्स अत्थि, तो जिण धम्मी कधं होहिदि, ते सव्वे जिण दंसण सिद्धंत-सिद्धेत्तं पक्खसुण्णेव अत्थि। जिण धम्मोवत्थु-सहावं उक्किट्ठदि कम्म-सिद्धंत मण्णेदि। पडि-आदम्हि ईसरत्तं सत्ती विज्जमाणा जिण धम्मो-णियकत्तं ण मण्णेदि, जीवो सयमेव णिय सुहदुहाणं वा कत्ता अत्थि। ईसरं कत्ता जिण-दंसणे ण बुज्झदि, ओआरवादंपि णो मण्णेदि। पडिदव्वं सतंतं त्थि, अत्थ-पज्जाय-परिवट्टणं पडिपल अबद्धरूवेण होदि, ण कोवि कस्स परिवट्टावेदि ण सयमेव केण परिवट्टदे, जओ दव्वदिट्ठि णा दव्वो णिय-धम्मं कयावि ण मुंच्चेदि। णिमित्त मेत्त परसंजोओ अत्थि, परण्णु उवादाणं सयमेव

यह अवस्था चार्वक दर्शन की है, तो उसे जैन धर्मी नहीं कहा जा सकता है, वह जैन सिद्धांत का विरोधी है। इसी प्रकार से अन्य दर्शनों के भी भाव जीव के हो सकते हैं, वे सब जैन सिद्धांत धर्म पक्ष से शून्य ही हैं। जैन धर्म वस्तु स्वरूप का कथन करता है, कर्म सिद्धांत को स्वीकारता है। प्रत्येक आत्मामें ईश्वर बनने का सामर्थ्य है। जैन धर्म पर को निज का कर्त्ता नहीं मानता, जीव स्वयं ही अपने दुःख सुख का कर्त्ता है। ईश्वर को कर्त्ता जैन दर्शन स्वीकार नहीं करता, अवतार वाद को भी स्वीकार नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, अर्थ पर्याय का परिणमन प्रतिपल स्वतंत्र चल रहा है, न कोई किसी को बदलता है न स्वयं ही किसी से बदला जाता है, अर्थात् द्रव्य दृष्टि से द्रव्य स्वधर्म को कभी भी नहीं छोड़ता। निमित्त मात्र पर का संयोग है, लेकिन उपादान स्वयं का ही कार्यकारी होता है। निमित्त निमित्त ही है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किरियासीलं होदि। णिमित्त-णिमित्तेव ण उवादाणं। उवादाण-जागरुत्ताए हि णिमित्तं णिय कज्जं कुणेदि। बंझा-इत्थीए पइसंजोगेवि किं कुणेदि? किं तस्स पुत्तलाहो होज्जदि? पइ-संजोअ-जादंपि बंझा इत्थीए पुत्तलाहो ण होदि। एवं सबल-उवादाणेण हि सबल-णिमित्तं णिय कज्जं कुणेदि। जिणदंसणे कज्जहेऊ ण अई-सुट्ठु वत्तं कुणंते। उदयरूवेण ही कज्ज-सिद्धी संभव होइ, ण एकंतेणं। जहेव जीवो धम्म-मम्मं ण जाणेदि, तहेव सो सुही ण सक्केदि। जिणिंद-णिदिट्ठो- "अहिंसा परमो धम्मो", सच्चं तस्स आधारो, विणयो जस्स मूलो त्थि खमा तस्स बलो, त्थि बंहचेर-रक्खिदो त्थि, तेसु उवसमो पमुहो त्थि, णियदी तस्सं

उपादान नहीं है। उपादान की जागृति योग्यता के होने पर ही निमित्त अपना कार्य करता है। बांझ स्त्री के लिए पति का संयोग क्या कर सकता है? क्या उसे पुत्र प्राप्ति होगी? पति का संबंध तो हुआ है। बांझ स्त्री के पुत्रोत्पत्ति होती ही नहीं है। इसी प्रकार प्रबल उपादान के होने पर ही प्रबल निमित्त अपना कार्य करता है। जैन दर्शन कार्य कारण की बहुत ही सुन्दर चर्चा करता है। उभय रूप से ही कार्य सिद्धि संभव है एकांत से नहीं। जब तक जीव धर्म के मर्म को नहीं समझेगा, तब तक वह सुखी नहीं हो सकता। जिनेन्द्र देव ने यह जो अहिंसा लक्षण धर्म कहा है, सत्य उसका आधार है, विनय उसकी जड़ है, क्षमा उसका बल है, ब्रह्मचर्य से रक्षित है, उपशम उसमें प्रधान हैं, नियति उसका लक्षण है, परिग्रह रहित पाना उसका आलम्बन है। उसकी प्राप्ति नहीं होने से दुष्कर्म विपाक से जायमान दुःख को अनुभव करते हुए ये जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्खणं, अपरिग्गहत्तं तस्यालंबणं। इमस्स ण जादे तु दुक्कम्म-विवागेण जायमाणं दुक्खं अणुभवंता इमें जीवा अणाइ संसारे परिभमं। व इमस्स लाहं पउत्ता णाणविह अब्भुदय-लाह पुव्वं मोक्ख लाहो णिच्छिदो। इणं सचिंतणं धम्म सख्यातच्चाणुवेक्खा त्थि। एवं विचिंतमाणो जीवस्स धम्माणुरागेण तस्स लब्भत्थं सया उज्जमसीलो होदि।

"पुज्जवाद सामिणा" सव्वत्थ सिद्धी-गंथे उत्तं भो णाणी! तु वरधम्मो चलित्ता णिय-कल्लाणं कुणेहि, वहि-परवंचत्तो विरमेहि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

अनादि संसार में परिभ्रमण करते हैं, परन्तु इसका लाभ होने पर नाना प्रकार के अभ्युदय की प्राप्ति पूर्वक मोक्ष की प्राप्ति होना निश्चित है। ये स्व चिन्तन करना धर्म स्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा है। इस प्रकार चिन्तवन करने वाले जीव के धर्मानुराग वश उसकी प्राप्ति के लिए सदा यत्न होता है। ऐसा आचार्य भगवन् "देवनन्दी" अपर नाम श्री "पूज्यपाद स्वामी" ने "सर्वार्थसिद्धि" ग्रंथ में कहा है। अतः भो ज्ञानी! तू सद्धर्म पर चलकर स्वात्मा का कल्याण कर वाह्य परपंचों से दूर होकर।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो पुरिसो भीरू त्थि जो बोहीए पमाई

हे विसुद्धप्प! तुमं झाएज्ज तुज्झ जं जिणरूव संपदं पत्तेज्जा सामण्णं मा जाणेहि, अरह-सरूवं संपज्जिदं तुमं। पंच परमगुरुणं तुज्झणामं गहे इमस्स अवमाणं मा कुणेहि, मा कुणावेसु, मा सुमण्णुंमणेहि। जइ तु मुणिरूवं ण आचारेसि तुज्झ मुणिधम्मं होही कहेज्जसि। मण्णेसु। जो जिणआणं सिगारेउं जिणरूव-आयारणं मा कुणेदि सो सकलंकी। तुमं चिंतेहि, तुज्झ किंवि पयारेण णमोत्थु सासणस्स अवमाणं मा होदव्वं। जइ तुं जिणआणं मण्णेसि, णं मुणेहि जिण आणा-भंगस्स दोसोजादि- तं साहगं जो जिणिंददेववेसं गहिऊण तं ण आयरेदि, सो जिणआणा भंगी

वह पुरुष कायर है, जो बोधि में प्रमादी है

हे विशुद्धात्मन्! तू ध्यान रखना, तुझे जो जिन रूप की प्राप्ति हुई है, उसे सामान्य मत मान बैठना, अरहन्त स्वरूप को प्राप्त किया है तूने। पांच परम गुरुओं में तेरा नाम लिया जाता है, इसकी अवहेलना नहीं करना, न करनवाना, न किसी अवहेलना करने वाले की अनुमोदना करना। यदि तू मुनि पद रूप आचरण नहीं करता है, तो तुझे मुनि धर्म द्रोही कहा जाएगा, कहलाएगा। जो जिन मुद्रा को स्वीकार कर जिन रूप आचरण नहीं करता है वह कलंकी है। तो ध्यान रख, तेरे द्वारा किसी भी प्रकार से नमोस्तु शासन की अवहेलना नहीं होनी चाहिए। यदि तू जिन आज्ञा को मानता है, तो ध्यान रखना जिन आज्ञा भंग का दोष लगता है- उस साधक को जिनेन्द्र देव के भेष को धारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असम्माइट्ठी। जइ दोसोजादो तं मण्णेहि णिय अवराहं बुज्झेसु, इमस्स धम्मरूवो ण मण्णेहि इमत्तो तुज्झ उवहासो होसि, ण जिणदेव-सासणस्स। णिय चुक्कं अमण्णिदो तं पयासंतो "जो अहं करेमि सो चिय सच्चं।" इदं कहमाणो सावगो-साहू वा जिण सासणादो बहिं अवित्तु मिच्छाइट्ठी एव। जे सतच्चं पयासणं ण कादूण जिण सासणं मलिणेंति। जिण वेसी जदि छलेंदि तत्तो अहियो दोसो अण्णो को वि णत्थि। जिण सासणस्स जत्तो तेण। अहो चेयण्ण! तुं मुणिवरेहिंतो वि इच्छायारं कुणसु, माणं पुट्ठत्थं जइधम्मं मुंच्चित्ता चरियाए तप्परो होदु। भगवण! संपुण्ण-समण चरियाणं परिणदी णिम्मलं होदु, पंथवाओ, परंपरावाओ रहिदो

कर पालन नहीं करता है। जिन आज्ञा को भंग करने वाला सम्यग्दृष्टि हो ही नहीं सकता। यदि दोष लगे तो स्वीकार कर लेना, अपना अपराध मानना, इसे धर्म रूप स्वीकार नहीं कर लेना, इससे मात्र तेरी ही हंसी होगी, जिनदेव के शासन की नहीं होगी। स्व-भूल को स्वीकार न कर उसे और प्रतिपादित करने वाला "जो मैं कर रहा हूँ" वही सत्य है, ऐसा कहने वाला श्रावक और साधु दोनो जिनशासन से बाह्य है, यानि कि मिथ्यादृष्टि ही है। जो स्वच्छ तत्व का प्रतिपादन न करे जिन शासन को दूषित कर रहे हैं। जिन भेषी छल करता है यदि तो उससे ज्यादा क्षति अन्य कोई किसी के द्वारा जिनशासन की नहीं होती है जितनी कि उसके द्वारा। इसलिए चैतन्य उन मुनिवरों से प्रार्थना कर लिया कर जो अहं की पुष्टि के पीछे मुनि धर्म की वास्तविकता से हटकर चर्या में तल्लीन हैं। भगवन् संपूर्ण श्रमणाचार्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होदु। अप्पसहावे व जिणधम्मो। अण्णाणी मुद्धो हि पंथे, परंपराएसु गच्छदि, णाणी णिय-सहावेण सयमेव ण होदि। साहू धम्मो आकिंचणो। भो चेण्ण! मढ-देआलए सलग्गो अप्पालयादो ण विरमेहि। अण्णे-परिणदीए गमणकारणं किं? वियारेहि ण कयावि तुमं? लग्गदि साहगो बारसाणुवेक्खाओ विरत्ता जादा अण्णहा बहिं पशंस-पूय-लाहे इयतु मा रमंते। भो णाणि! तुमं एगहुत्तं बोहि-दुल्लह-भावणाए वियारेहि। कओ कहं आगच्छिदो तुं। इणं मणुज-पज्जयो अइव-दुल्लहो, णिगोदत्तो सामण्ण-थावरो, थावरत्तो तसं, तसेसु वि पंचिदिय-पज्जायस्स लाहो अईव दुल्लह-कज्जं। पंचिदिएवि सण्णी अइदुल्लहो। सण्णीएसुं वि पुण्णाउं लहिऊण

की परिणति निर्मल हो, पत्थवाद, परंपरावाद से परे हो जाए। आत्मधर्म जिनधर्म है। अज्ञानी मूढ़ जीव ही पन्थ परंपराओं में जाते हैं, ज्ञानी को तो स्व-आत्म तत्त्व से समय ही नहीं मिलता। आकिंचन धर्म है, साधु का। भो चैतन्य! मठ मंदिरों के पीछे पड़कर स्वमन्दिर से मत दूर हो जाना। पर में परिणति जाने का कारण क्या है? कभी विचार नहीं किया तूने? लगता है कि साधक बारह भावनाओं से विरक्त हो चुके हैं, अन्यथा बाह्य ख्याति, पूजा, लाभ में इतने न उतरते। एक बार तू बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा का चिन्तवन कर ज्ञानी! कहां से कहां आ गया तू। ये मनुष्य पर्याय कितनी दुर्लभ है, निगोद से सामान्य स्थावर, स्थावर से त्रस, त्रसों में भी पंचेन्द्रिय पर्याय का मिलना कितना कठिन कार्य है। पंचेन्द्रिय में भी सैनी होना दुर्लभ है। सैनिओं में पूर्ण आयु की प्राप्ति कर मनुष्य बनना इतना ही दुर्लभ है, जैसे लवण समुद्र के पूर्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माणुसत्तं इत्थेव दुल्लहो, जधा लोण-सासरम्हि जुव अत्थाहे जुवां व खेप्पिअं तस्स सेलस्स संजोअं दुल्लहं। जास-लवण सायरम्हि पुव्व खेतम्हि जुवं खेप्पिअं व तस्स सायरम्हि पच्छिम खेत्ते सेले खेप्पिअं, पुणो तं सेलस्स जुव-छिद्दम्हि पवेसो जधा अदिदुल्ल हो, तहेव चउरासी-लक्ख-जोणि मज्झे इमो जीवो मणुजो जम्म-दुल्लहो हु अत्थि। सुदेसे, कुले जम्मं, रूवं, आउं, आरोग्गं, सत्तिं-विणयं, धम्म-सवणं, गहण-मदि व धारणं इणं पि इह लोगे अइदुल्लहा। इमस्स पावेउं जिणसासणे बोही ण सुलहो। जओ कुपथाणं बहुदा, व रागं-दोसं पि सबला। भो साहु! तुमं कत्तो पुण्णवंतो, जो तुमं सव्वं लहिदं, इणं सव्वत्तो दुल्लहो, सुद्ध भाव-गहणं। साहू अप्पं परिणामं

भाग में जुवां को डाले और उसी समुद्र के पश्चिम भाग में सैल को डालें, पुनः उस सैल का जुवां के छिद्र में प्रवेश कर जाना जैसे कठिन है, उसी प्रकार चौरासी लाख योनियों के मध्य में इस जीव को मनुष्य जन्म का मिलना दुर्लभ ही है। उत्तम देश, कुल में जन्म; रूप, आयु, आरोग्य, शक्ति, विनय, धर्म-श्रवण, ग्रहण-बुद्धि और धारणा ये भी इस लोक में दुर्लभ ही हैं। इनके मिल जाने पर भी जिन शासन में बोधि (रत्नत्रय) सुलभ नहीं है। क्योंकि कुपथों की बहुलता है और राग, द्वेष भी बलवान है। भो साधु! तू कितना पुण्यशाली है, जो तूने इतना सब कुछ प्राप्त कर लिया, पर इन सबसे दुर्लभ है, शुद्ध भाव रखना। साधु स्व परिणाम रख, अन्यथा तुझे भवसागर में ही रूलाना पड़ेगा। तुझे ऐसा विचार करना चाहिए कि भव-भव मंथन करने वाली, गुणों में विस्तार को प्राप्त बोधि मैंने प्राप्त कर ली है, यदि यह छूट जाए तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुरक्खेज्जा, अण्णहा तुह भवसायरम्हि णिक्खेवेज्जाहि तुज्झ एरिसं-वियारिदव्वं किं इमं भव-भव मथियं, गुणवतं बोहिं अहं पत्तेमि, जइ इमे चुक्केज्जदि तं खु पुणो ण सुलहो। मज्झ पमाद-णवरं। जो मणुस्सो अइ दुल्लहं बोहीए पत्तिउं पमादेइ, सो पुरिसो कायरो भीरू। तं दुग्गदिं पत्तं-सोगं कुणदि। एवं अदि-कढिणं रयणत्तय-धम्मं लहिऊणं जे साहगा खादी-पूया-लाहे, मरणंते, इदं भूइउं चंदणं इज्झावेदि तुल्ल-णिप्फलो अत्थि।

अप्पणो! तुं चिंतेहि! णिय अप्पधम्मस्स उज्जमेहि। तम्हा कल्लाणं होहिदि जिण-मुद्द-गहणं सत्थगो होहिदि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

निश्चित रूप से पुन: सुलभ नहीं है। अत: मेरा प्रमाद करना ठीक नहीं है। जो मनुष्य दुर्लभता से मिलने वाली बोधि को प्राप्त करके प्रमादी होता है, पुरुष कायर है, वह दुर्गति को प्राप्त हुआ शोक करता है। इस प्रकार अति कठिनता से प्राप्त होने योग्य उस रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करके जो साधक ख्याति पूजा लाभ में मरण करते हैं, यत तो भस्म के लिए चन्दन को जलाने के समान निष्फल है।

हे आत्मन्! तू ध्यान रख स्व आत्मधर्म का पुरुषार्थ कर तभी कल्याण होगा और जिन मुद्रा धारण करना तेरा सार्थ होगा।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आद-सोहणोवाओ णियालोयणा

हे आद! साहू चित्तो सीहत्तो सप्पत्तो पाणित्तो भयभीदो णो होदि, णिट्ठुरत्तो णिंट्ठुरं पाणीदो णिब्भयं हविऊण विहरंते, परं पाव-परिणदिं पासित्ता साहूचित्तो कंददि रोम-रोमत्तो चित्तवेयणा णिसरेदि। हा! एवं कदो जादो? असुह परिणामा किं जादा? ताओ कधं सुरक्खेमि? सिहो व सप्पो भक्खंते तदो पज्जाय विणासेदि, परं असुहो णो बंझेदि। जइ तस्स समये समदापरि-णदीए संजुत्तो। परं असुह-परिणदीहिं णियमेण असुह कम्माण-बंधेहिदि। भोग वित्तिए संती, सुह समदाए कप्पणां खपुप्फ चिणव्वं। साहू आलोयणा,

आत्मशोधन का उपाय आत्मालोचना

हे प्रज्ञात्मन्! संत हृदय सिंह सर्प जैसे प्राणियों से भयाक्रांत नहीं होता, क्रूर से क्रूर प्राणी से निर्भय होकर विचरण करते हैं परंतु पाप परिणति को देखकर संत हृदय रो पड़ता है, रोम-रोम से अंतस्थ की वेदना फूट पड़ती है। हाय! ऐसा क्यों हुआ? अशुभ परिणाम क्यों हुये? उनसे कैसे बचें? सिंह व सर्प भक्षण करें तो पर्याय का विनाश तो हो सकता है लेकिन अशुभकर्म का बंध नहीं होगा। यदि उस क्षण समत्व परिणाम रहे तो। परंतु अशुभ परिणामों के माध्यम से नियम से अशुभ कर्मों का बंध होगा। भोग वृत्ति में शांति सुख समत्व की

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिंदा, गरहालिणो होदि, साहू सयम्हि जगुच्छादो पुरिदो होदि, सयमेव अण्णादो उप्पेरिदेणं विणा। अप्पसुद्धीए वरमोवाओ णिंदा गरिहा-आलोयणा। जं पावाओ जहत्थ विरत्ती होइ, सोच्चिय अप्पणिंदं करेदि ण अण्णे। संपुण्ण-पावत्तो मुत्तो लहु दुक्किदं पि गिरिव्व पेक्खादि। जो किंचिवि असुह वित्तिं लहुं मण्णित्ता चयेदि सो बड्डो पावी होऊण, दुग्गम संसारम्हि पडेदि, पुण तं को वि ण सुरक्खेदि। सेट्ठो एसो अत्थि। विसयं पडि अदिक्क-परिणाम-जाग्गिदे होदव्वं। इमे भावा किं जादा। वदिक्कमो अइचारं ण सक्केउ, जो अइचारं कुणेसु वि उववविसेदि किंपि ण अइचारेव

कल्पना करना आकाश से पुष्प चुनना है। संत आलोचना, निंदा गर्हा में लीन होता है, संत अपने आप में ग्लानि से पूरित होता है स्वयमेव किसी से प्रेरित होकर नहीं। आत्म-शोधन का सुंदर उपाय निंदा, गर्हा, आलोचना करता है। जिसको पापों से यथार्थ विरक्ति होगी वही व्यक्ति आत्म निंदा करता है शेष नहीं। अशेष पापों से मुक्त होने वाला ही लघु दुष्कृत्य को पर्वत तुल्य देखता है। जो अल्प अशुभ वृत्ति को अल्प समझकर यों ही छोड़ देता है वह एक दीर्घ पापी बनकर दुर्द्धर संसार में डूब जाता है फिर उसे कोई नहीं बचा सकता है। श्रेष्ठता तो यह है कि विषयो के प्रति अतिक्रम रूप परिणामो के होने पर जाग्रत होना चाहिये। ये भाव उत्पन्न ही क्यों हुये? व्यतिक्रम अतिचार तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जादो, ते अणायारत्तो णो मुक्का, तं मुणेसु सव्वस्स भग्गोदयो। अइयारम्हि जं ण सचेदेदि सो अणायारम्हि लिणो होदि। वियारेहि पावकद्दमलिणो पाव कम्मत्तो कस्स सुरक्खेहिदि? अवस्सेव कम्म बज्झं पत्तेउं दुग्गदिस्स भाजणो होज्जा। हे आद! महाव्वआइं गहिऊण तुमं महाण पुरिसत्थं किदो, तं पुरिसत्थस्स तहेव सफलदा। तुज्झ चित्ते वि कस्स वि पाव-संकप्पो ण उप्पज्जेज्जा तहेव महव्वयस्स परिपालणं पुण्णरूवेण संभवं होज्जा! जइ सगचरित्तेण परिणामो सिहिलेदि तो सिग्धं णिदं, गरहं आलोयणं कुण पइक्कमणं, पच्चक्खाणं पुव्वं पायच्छिदेण सग-सुद्धिं करेहि।

प्रवेश न करने पाये, जो अतिचार को करके भी शांत बैठ गया कुछ नहीं अतिचार ही हुआ है वे अनाचार से बच जाये तो समझो सबके भाग्य का उदय हैं। अतिचार में ही जो नहीं चेता वह अनाचार में मग्न हो जाता है। अब स्वयं विचार कर, पाप पंक में लीन पाप कर्मों के बंध से कैसे बचेगा? अतएव अवश्य ही कर्मों के बंध को प्राप्त कर दुर्गति का भाजन होगा। हे आत्मन्! महाव्रतों को स्वीकार कर तुमने महा पुरुषार्थ किया है, उस पुरुषार्थ की सार्थकता तभी है। तेरे मन में भी किसी भी पाप का संकल्प जन्म न ले तभी महाव्रत का पालन पूर्ण रूपेण संभव है। यदि स्वचरित्र से परिणाम शिथिल होते हैं तो शीघ्र ही निंदा, गर्हा, आलोचना कर, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान पूर्वक प्रायश्चित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अण्णहा संकिलेस-भावत्तो कुमरणं होहिदि। समाहि मरणं णवि होस्सदि। णिद्दोस चरियाए धारग-संजमस्स हि समाहिमरणं संभवो। अओ आदसोहणं कुणसु आलोयणाए, ण संकिलेसत्तणं।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

कर अपनी शुद्धि कर लेना। अन्यथा संक्लेश भावों से दुस्मरण होगा, समाधि सहित मरण नहीं हो सकेगा। निर्दोष चर्या के पालक संयमी का ही समाधि मरण संभव है। अत: आत्मशोधन कर आलोचना से संक्लेशता से नहीं।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोसाणं उवसमणं पायच्छित्तं

भंते पण्ण! अचिंत-सत्तिजुत्तो कत्थ हिंडदि। किं तुमं णिय सतंत ण सत्ताणाणं णवि। पइ-दव्वं अबंधं। तेसुं छह दव्वेसुं तुमं पि एगदव्वं। एगदव्वं णं कयावि पर दव्वरूवं जादं ण होस्सदि। जीवां दव्वा अणंता, ते सव्वे जीवा णिय सत्तापेक्खा अबंधा। सव्वस्स णिय-णिय खाओवसमसत्ती होंति। "कस्स कोवि कत्ता-हत्ता वा णवि। मूढो पज्जाए जादपलयं दव्वस्स जादपलयं जाणेदि। दव्वस्स कवि विणासं वयं वा ण होदि। पज्जाय परिवट्टं णो णिमित्त सहभागी अण्णाणि दव्वाणि संति सहावं ण परिवट्टेदि। पुण्णं अत्थि तो

संपूर्ण दोषों के शमन का माध्यम प्रायश्चित

हे प्रज्ञात्मन्! अचिंत्य शक्ति संपन्न तू कहां व्यर्थ में भटक राह है। क्या तुझे निज स्वतंत्र सत्ता का भान नहीं है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। उन छः द्रव्यों में से तू भी एक द्रव्य है। एक द्रव्य कभी न पर द्रव्य रूप हुआ है ना होगा। जीव द्रव्य अनंत है वे सभी प्रत्येक जीव निजसत्ता की अपेक्षा स्वतंत्र है। सबकी अपनी-अपनी क्षयोपशम शक्ति है। न कोई किसी का हर्ता है न कर्त्ता। मूढ़ जीव पर्याय के नाश उत्पाद को द्रव्य का नाश उत्पाद मानता है। द्रव्य का कभी भी नाश व्यय नहीं होता। हाँ पर्याय परिणमन में निमित्त रूप सहयोगी अन्य द्रव्य हो सकते हें लेकिन स्वभाव को परिवर्तित नहीं कर सकते। यदि सामने वाले का पुण्य है तो उसके सुख में आप निमित्त बन सकते हैं, पापोदय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुहम्मि तुमं णिमित्तं सक्केसि, ण पावोदये। कमस्स सबलदाए को कस्सवि ण उवयारं करेदि। जो जिणसिज्झंतं बुज्झेदि सो कयावि मज्झ णाणे णयणणिरं ण मुच्वेदि। कारणं सो जाणेदि कम्मोदयं मज्झेव भुत्तव्वं। णिस्सारेण संकिलेस-परिणामादु लाहो किं? कम्म विवागं ण को बड्ढावेदि ण को घट्टावेदि। इत्तो अवस्सं उच्छाहं पदेदि। कम्मबंधं अहं किदं तस्स णासगो वि अहमेव। विसुद्धभावेण, मंदकसाएण तीव्व कम्मोदयं मंदावेदि तहा संजम-तवणिमित्तेण संवरणिज्जरं कारित्ता कम्माणं खयं जीवो सयमेव कुणेहि। सव्वत्तो महादव्वत्ता णिय चुक्कं णाऊण आलेयणं,

---

में नहीं। कर्म की प्रबलता में कोई किसी का उपकार भी नहीं कर पाता। जैन सिद्धांत को जानने वाला कभी भी मेरी समझ में आश्रुपात नहीं कर सकता। कारण वह जानता है कर्म विपाक मुझे भोगना ही पड़ेगा। व्यर्थ में संक्लेश परिणाम करने से क्या लाभ? कर्म विपाक ना कोई बड़ा सकता है ना कम कर सकता है। इतना अवश्य है ढाढस दिला सकता है। कर्मबंध मैने किया है उसका नाश करने वाला भी मैं ही हूँ। विशुद्ध भावों से, कषाय की मंदता से, तीव्र कर्मों के विपाक को मंद तो कर सकते हैं तथा संयम तप के माध्यम से संवर निर्जरा करके कर्मों का क्षय यह जीव स्वयं ही करेगा। सबसे बड़ी बात अपनी भूल को भूल स्वीकार करके आलोचना प्रतिक्रमण तथा प्रत्याख्यान कर देना चहिये, साथी ही निःकषाय भाव से प्रायश्चित धारण करना अनिवार्य है। कोई क्या कहेगा उस बात को भूल जाना चाहिये। अनंत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पडिक्कमणं व पच्चक्खाणं कादव्वं, सहेव णिक्कसाय भावेण पायच्छिदं गहणं परमावस्सगो। को किं कहेदि तं वत्तं चुक्किदव्वं। अणंद-भवस्स हेदू असुद्धभावं चयित्ता, विसुद्ध परिणामेण गुरु-सक्खी पुव्वं। अहं भावं चयेहि, पायंच्छिदेण सव्व-दोसाणं उवसमेसु। पायच्छिदेव संपुण्ण दोसाणं उवस-मत्थं मूल-मंतं, एरिसं अम्हाणं पुव्वाइरियाणं कहणं, तहा तित्थयर-भगवंताणं देसणा। पावं तो पावं हु पावकम्मं लुक्कावेउं चिट्ठुणं पायच्छिदं ण महापावं।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

भावो के कारण अशुद्ध भावों का त्याग कर, विशुद्ध परिणामों से गुरु साक्षी पूर्वक अहं भाव का त्याग कर, प्रायश्चित समस्त दोषों के शमन का मूल मंत्र है, ऐसा हमारे पूर्वाचार्यों का कथन है तथा तीर्थंकर भगवन्तों की देशना है। पाप करना तो पाप है ही परन्तु पापकर्म को छिपाकर रखना प्रायश्चित स्वीकार नहीं करना महापाप है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुहिजणाणं चित्ते ठाणं

हे अप्पण! तुं जोइपुंजं णाणं लहेसु। जदो पदीवादो वीर-पहू पइजणस्स अंतसे पयासिउं, मिच्छत्तं, असंजमं असूआणं तिमिरं परे किदा/जेण पदिवेण तुज्झ अप्प देवं दरिसाविंदो तस्स पदिवोवासणं कुणेहि। अचेयण पदीवं बहू पजालिदो ते उवसमिदा परं एरिसो चेयण्ण-णाणदीवं पजालेहि जो कयावि ण उवसमेज्जदि। अखंड, आविणासी जोइं फुरावेसु। सा जोई तहेव फुरेहिदि जाव माणव चित्ते मणुजत्त-पदीवो पजालेदि। धम्मिगाणं चित्ते करूणा-दया-दीवं पजालेहि। आगम-णाणीणं अंतसे अप्पणाण-पदीवो जलेहि,

---

दुखित हृदयों को अपने हृदय से लगाओ

हे आत्मन्! तू ज्योतिमर्य ज्ञान को प्राप्त कर। जिस दीपक के माध्यम से वीर प्रभु ने जन-जन के अंदर प्रकाश कर, मिथ्यात्व, असंयम, घृणा के अंधकार को दूर किया था। जिस दीपक के माध्यम से ही तेरे निज भवन में विराजमान निज देव का दर्शन कराया है उस दीप की उपासना कर। जड़ दीपक अनेक जलाये वे बुझ गये पर ऐसा चेतन्य ज्ञान दीपक जलाओ जो कभी न बुझ पाये। अखण्ड, अविनाशी ज्योति को प्रकट कर। वह ज्योति तभी प्रकट होगी जब मानव हृदय में मानवता का दीप जले, धर्मात्माओं के हृदय में करूणा, दया का दीप जले। शास्त्र ज्ञानियों के अंतस्थल में आत्मज्ञान का दीप जले, साधकों के अंतःकरण में साधुता का दीप जले, प्राणी मात्र के प्रति वात्सल्य का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहगणं अंतसे साहुत्तं पदीवो जलेहि, णाणी मेत्तं पडि वच्छल्ल पदीवं पजालेसु, परोप्परं पीदिं, सणेहं, अणुरागाणं पदीवो जलेदु। जइ इमा पदीवा ण पजालेज्जा तदो- सम्हल मिट्टीए पदीवो मिट्टीए मिलेज्जदि।

रे जडधि! चेदो मिट्टीए पवेसेहिदि। हे चेयण्ण! तुमं किंचिवि कुण ण पावेहि सि पुण खिज्जेहिदि। णिय-विवेगेण कज्जं कुणेहि संवेयणादं फुरेहि। जइ संवेयणा उवसमिदा मंणेहि, अप्पणाण-पदीवो ण पजलेदि। अम्हे पेक्खामो पयडि णिम्मलणिज्झरो णिय महुरं कल-कल सरेण संजुत्तो किण्णु

दीप जले, परस्पर में प्रेम, अनुराग का दीप जले। यदि ये दीप नहीं जलते तो ध्यान रखना मिट्टी के दीप मिट्टी में मिल जायेंगे।

रे मूढ़! चेत, मिट्टी का तन मिट्टी में मिल जायेगा। चैतन्य तू कुछ कर नहीं पायेगा फिर पिछे मात्र पछतायेगा। स्व विवेक से कामकर, संवेदनाओं को प्रकट कर। यदि संवेदनाये समाप्त हो गई तो ध्यान रख आत्मज्ञान के दीप वाले नहीं हैं। हम देखें प्रकृति की ओर निर्मल झरने अपनी मोहनी नीर कल-कल की आवाज से भरा है पर, मानव हृदय अपने आप से सबको हटाता जा रहा है। दुखित हृदय को देखकर पत्थर भी आसू टपकाने लगता है। ओहो! एक मानव हृदय को क्या हो गया जो शवों को देख-देखकर मुस्कुरा रहा है।

हे धर्म धारक धर्मात्माओं। प्रकृति को देखकर अपनी सरल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माणवमण-णियत्तो। सव्वं परे कुणंतो। दुहिचित्ताणं पासित्ता उप्पलो वि णयणणिरं मुच्चेदि। अहो! एगं माणवमणं किं जादं जो सवाइं पेक्ख-पेक्खिउं हरिसंतो।

हे धम्म-धारगो धम्मप्पणो! पगडि पेक्खित्ता णिय अगुडिल पगडीए आगच्छेहि। दुहि चित्ताणं णिय चित्तम्हि लगा। जलेहि पदीवो तुज्झ पुण ण कयावि उवसमेज्जा।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

प्रकृति में आ जाओ। दुखित ह्रदय को अपने ह्रदय से लगाओ। जल जायेगा दीप तेरा फिर कभी नहीं बुझ पायेगा।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वयणमोणेणं सह मणमोणी

हे विण्हु! अदसत्ती संगहणत्थं सुट्ठुवाओ "मोण-साहंणा"। वायालो गंभीरत्तं महुरत्तं णासेज्जा वायालस्स सुवत्ता वि सुपयारेण ण सुणेज्जा। हिदं सिदं, पियं भाइस्स वायास पहावो मुग-तिरिअंचेसुं पि पडेदि। देक्ख! तित्थयरो महावीर सामिस्स जीवो सिहपज्जाए गूड भासासमीदिए धारगा णिग्गंथादु- मुणीरायाणं कारूण्ण-वयणं सुणिऊण पडिबोहँ लहेदि। इत्तेव भणिदा जुगल मुणिराया। हे, भावी-भगवद! इमा किरियं तुमं ण सोहेदि। सव्वे पाणिणो रक्खगो कुरंगिए परचक्कं मा कुण। णरसीहस्स

वाणी के मौन के साथ मन के मौनी बनो

हे विज्ञात्मन्! आत्मशक्ति को संचय करने का सुंदर उपाय है "मौन साधना"। वाचाल व्यक्ति गंभीरता, मधुरता को खो बैठता है। वाचाल की श्रेष्ठ वार्ता भी अच्छी तरह सुनी नहीं जाती। हित, मित, प्रिय भाषी की वाणी का प्रभाव मूक पशुओं पर भी पड़ता है। देखो तीर्थंकर महावीर स्वामी का जीव सिंह की पर्याय में गंभीर भाषा समिति के पालक निर्ग्रंथ दो मुनिराजों की कारुण्य वाणी को श्रवण कर प्रतिबोध को प्राप्त हुआ। इतना ही तो कहा था युगल मुनिराजों ने। हे! भावी भगवन्! ये कृत्य आपको शोभा नहीं देता। प्राणीमात्र की रक्षा करने वाले मृग पर वार नहीं करो। नरसिंह मुनिराज की आवाज सुनते ही वनराज सिंह की आंखे आद्र हो गई। आत्म निंदा से पूरित होकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुणिरायस्स झुणिं सुणंतेव वाणरायस्स सीहस्स अक्खिआइं णमीजादं। अप्प णिण्दापुरिदो अहिंसा-धम्मं अंगिकारेसु देहे भवम्हि ''जीवेज्ज जीवणं देहि'' णादवंतो भगवंद महावीर सामी जादो।

सो चेव मोणं, मोणं जत्थ विसय कसायणंपि मोणं। वयणेहिं मोणं मेत्तं जिणदेवो मोणवयं ण भण्णिदो वंछाणं उवसमत्थं मोणं गहिदव्वं। जो मोणं गहिऊण चउ सण्णा लीणो आहारं, भयं मेहुणं, परिग्गहं। तं आगमे मोणं ण भण्णेदि। सा तिरिअवित्ती। वयणेण मुक्का, मणेण व कायेण बोल्लन्ते ते मणु आयारे मुक्को णिरीह-तिरिया वि। चउ सण्णाए मोणं धारेसु इदमेव सुट्ठु आसि। मोण-

---

अहिंसा धर्म को स्वीकार कर दसवें भव में ''जियो और जीने दो'' नारे का नाद करने वाला महावीर स्वामी हुआ।

वही मौन मौन है जहाँ विषय कषायों का भी मौन हो। वचनों से मूक होने मात्र को जिनदेव ने मौन व्रत नहीं कहा। आशाओं की शांति के लिये मौन धारण किया जाता है। जो मौन धारण करके चारों संज्ञाओं में लीन हो (आहार, मय, मैथुन, परिग्रह)। उसे जिनवाणी मौन स्वीकार नहीं करेगी। वह तो पशु वृत्ति हैं। वचन से मूक, तन और मन से बोल रहे हैं वे मनुष्य के आकार में मूक निरीह तिर्यंच ही हैं। चारों संज्ञाओं से मौन धारण कर श्रेष्ठ यही हैं। मौन व्रत में शरीर से भी संकेत नहीं होना चाहिये। जो साधक निर्दोष मौन व्रत का पालन करता है, उसकी वाणी मनोहर हुआ करती है। सर्वांग से दिव्य ध्वनि का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वये देहत्तो वि संकेदं ण होदव्वं। जे साहगा णिम्मल-मोण वयं पालंते। तस्स वाया मणेहरा होंति। सव्वंगेण दिव्व झुणिस्स सामी केवली भगवदेव होदि। मोणवयणं सुदस्स विणयं अत्थि। विणयो मोक्ख-दारो। मोणं कुणेसु मुक्को हविऊण ण मुणि होऊण।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

स्वामी केवली भगवान ही बनता है। मौन व्रत श्रुत की विनय है। विनय मोक्षमार्ग का द्वार है। कर मौन, मूक बनकर नहीं मुनि बनकर।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णो कत्ता, दिट्ठा होहि

हे चेयण्ण! तु संसारे कत्ता भावत्तो णे सक्खी भावंतो जीवेहि कत्ता दिट्ठी एव भवे, भमावेदि। संसार परंपराए उवसंमस्स जइ वंछा, तो अण्णस्स कत्ता भावं मुच्चेदु। पडि जीवो णिथ-भावाणं कत्ता। णिय भाव-णिमित्तेण णिय सुहासुह कम्मं कुणेदि। जहेव कम्मं करेदि तहेव सुहासुहं कम्मफलस्स भोत्तवि होदि।

सुकिद कम्मस्स पुण्ण-पावोदएणेव लोए दुहं-सुहं व पत्तए। अण्ण ईसर-पुरिस-किदं ण सुह-दुहं। पर-वत्थु, पर-पुरिसणिमित्तं, होदि फलविवागं णिय कम्मस्स जाणेहि। जो जणा अप्पं परस्स,

---

कर्त्ता नहीं दृष्टा बनो

हे चैतन्य! तू संसार में कर्त्ता भाव से नहीं साक्षी भाव से जीना सीख। कर्तापन की दृष्टि ने ही भव में भटकाया है। संसार की परिपाटी को समाप्त करने की यदि इच्छा है, तो पर के कर्त्तापन को छोड़ दो। प्रत्येक जीव जिनभावों का कर्त्ता है। जिन भावों के माध्यम से अपने शुभाशुभ कर्म का कर्त्ता है। जैसे कर्म कर्त्ता है वैसे ही शुभाशुभ कर्म फल का भोक्ता भी है।

स्वकृत कर्म के पुण्य पापोदय से ही लोक में दुःख-सुख प्राप्त होता है। अन्य ईश्वर, पुरुष कृत सुख-दुःख नहीं हैं। पर पदार्थ, पर पुरुष निमित्त बन सकते हैं परंतु फलोदय तो निज कर्म का ही समझो। जो व्यक्ति स्वयं को पर का, पर को स्वयं का कर्त्ता मान बैठा है। वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अण्णं सगस्स कत्ता जाणेदि। सो दुह परंमराए ण पणासेण समत्थो। विचारेहि कत्ता-भावम्हि माणो उप्पज्जेदि। उहय भावा हु भवबंधस्स हेदू। सुट्ठु जादं सुक्किदस्स फलोदयं, अवरं जादं दुक्किदस्स फलोदयं। हरिस-विसादं वा कस्स वयणस्स किदो। कम्म-विवागोदयं होसि, सम्मभावेण सह णिज्जरा तहा संवरो होदि। संकिलेस-परिणामेणं कम्मस्सवो अपुव्वकम्माणं होदि। सम्म-परिणामेहिं मोक्खमग्गो पसत्थो होज्जा। संकिलेसदाए संसार-मग्गस्स बुड्ढेदि। सविवेगणाणेण णिण्णयं कुणेहि, मज्झ किं आसि? आदरिसे वत्थूणं पइकिदी भासेदि, आदस्सो अलित्तो णो

दुःख परंपरा का विसर्जन नहीं कर पायेगा। ध्यान रखना कर्त्तापन में अहंकार ममकार का जन्म होता है उभय भाव ही भव बंध के कारण है। अच्छा हुआ तो सुकृत्य का फल, बुरा हुआ दुष्कृत्य का फल है। हर्ष विषाद किस बात का किया है। कर्म विपाकोदय तो होगा, साम्यभाव रखेगा तो कर्म निर्जरा तथा संवर को प्राप्त होंगे। संक्लेशता करेगा तो आश्रव बंध नवीन कर्मों का होगा साम्य परिणामों से मोक्षमार्ग प्रशस्त होगा। संक्लेशता से संसार मार्ग की वृद्धि होगी। स्वविवेक ज्ञान से निर्णय कर क्या करना है मुझे? जैसे दर्पण में प्रत्येक वस्तुओं के प्रतिबिम्ब झलकते हैं परन्तु दर्पण लिप्त नहीं होता। सर्वज्ञ ज्ञान तुल्य अरहंत सर्वज्ञ देव के ज्ञान में विश्व की चराचर द्रव्य पर्याय झलकती हैं। वे जानते हैं, देखते हैं। साक्षी भाव से तन्मय नहीं होते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होदि। अरहंत-सव्वण्हु-देवणाणम्हि संसारस्स सव्वदव्व-पज्जाए भासेंति ते, जाणंति, देकखंते साक्खि भावेण लिणं मा होंते मोहाभावम्हि अओ कम्म-बंज्झं ण लहंते। तहेव भो पण्ण! तुमं सक्खी भावेण जीवेहि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

मोह के अभाव में इसलिए कर्म बंध को प्राप्त नहीं होते। उसी प्रकार भो प्रज्ञ! तू साक्षी भाव से जीना सीख।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालत्तणे संजमो, संजमे णो बालत्तणं

हे विसुसज्झप्पणो! मणवसेण विणा साहणा ण होदि। चित्त-परिप्फंदणं मोक्ख मग्गम्हिं अवरोधो। जाव चित्तचलायमाणं होज्जा ताव पावण-पवित्त-सबल-णिमित्तंपि किंचिवि ण कुणेज्जदि। सहगाय होयव्वं तं सव्वपढमं चित्त-थिरकरणत्थं उज्जमं कुणेदु। जेण-जेण णिमित्तेहिं चित्तं वियारी होदि तेण-तेण णिमित्तेहिं णिय अप्पं सुरक्खेहि। जाव मण-इंदिय विसए गच्छेदि ताव विवेगणाणं णासेदि। लज्जं वोस्सरेदि। रे मण! जाव तुमं उवसमेज्जा ताव सयं अथिर-वित्तीए चिंदणेज्जा। तं समयम्हि सयं

बालपन में संयम धारण हो सकता है परन्तु संयम में बालपन नहीं

हे विशुद्धात्मन्! मन को वश में किये बिना साधना संभव नहीं है। मन की चंचलता मोक्षमार्ग में अवरोध है। जब चित्त चलायमान हो उस समय पावन पवित्र प्रबल निमित्त भी कुछ नहीं कर पाते। साधक के लिये चाहिए व सर्वप्रथम चित्त स्थिर करने का पुरुषार्थ करे। जिन-जिन कारणों से चित्त में विकार आते हों उन-उन कारणों से अपनी आत्मा की रक्षा कर। जब मन इन्द्रिय विषयों की ओर गमन करता है तब विवेक ज्ञान को खो देता है। लज्जा गुण का तो विसर्जन ही कर देता है। रे मन! जब तू शांत होता है तब स्वयं चंचल वृत्ति का चिंतवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धिक्कारेण विणा ण रहेसि। मण-गदी परमाणु-वेगेत्तो वि अहिअं होदि। चलायमाण-चित्तेण किंवि ण कज्जसिद्धि, ण णियं कज्जं पडि णिरुस्सहित्तं तिणरूल्लसित्तं पायं पसारेदि। णाणणंद सहावं जहेव लहेज्जा तहेव चित्तं उवसमेज्जा। दिढचित्ते चरित्त-किरिया पालेदि जणो, पर सम्मचरिय-रूप-परिणामं णो लहेदि। जहोट्ठयं इणमेव अत्थि चरिय-गहण पुव्वं चित्तदिढत्थं सुआगमस्स अज्झणं अवेक्खिअं।

चरियवंत्तस्स अणुभूदि णाणं अवेक्खिअं पुरिसत्तं इत्थित्तं व धम्मस्स जादपुव्वं जो जणो संजम-मग्गे चलेदि पच्छा उम्मग्गं

कर ले। उस समय अपने आप को धिक्कारे बिना रह नहीं सकता। मन का वेग परमाणु के वेग से भी ज्यादा लगता है। चंचल चित्त वृत्ति में किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं होती, निज कार्य के प्रति उदासीनता उत्साहहीनता कदम जमा लेती है। ज्ञानानंद स्वभाव की प्राप्ति तभी होगी जब चित्त को शांत कर ले। स्थिर चित्त में चारित्र की क्रियायें तो पाल लेता व्यक्ति, पर सत्य चारित्र रूप परिणामों को प्राप्त नहीं कर पाता। यथार्थता यही है चारित्र धारण करने के पूर्व चित्त को संभालने हेतु सम्यक् शास्त्रों का अध्ययन अनिवार्य है। चारित्र धारक व्यक्ति के लिए अवस्था जन्य अनुभूतियों का भी मान होना अनिवार्य है पुरुषत्व धर्म व स्त्रीत्व धर्म के प्रकट होने के पूर्व जो व्यक्ति संयम मार्ग पर चलने लगते हैं बाद में उन्मार्ग की ओर दृष्टिपात करने लगते हैं। हाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पेक्खेदि। हां जइ तदो धम्मादो जादपुव्वं संजम गहिदो तदो साहगस्स तद-संबंधी आगम-अज्झणेण पुण्णं णाऊण असुची तहा वेरग्ग भावणाए अप्पं संत्तो रक्खिदव्वं। बालत्तणे पवज्जाओ गहणे को ण दोसो, किण्णु संजम-पालणम्हि बालत्तणं ण संजम-साहणा भव-प्रणासत्थं गहणीय।

मणेव संसारो। अंतसे रागदोसाइ-किलेस भावणा त्थि सो च्चिय संसारो तेण विणा ण अणण्णसंसारो। अओ दुहसमुद्दाओ णिसत्थं णिसारत्थं वियारं त्थि। तदो चरिय-गहणं पच्छा विसयादु विरत्तीए उप्पादं सव्वपुव्वं होयव्वं।

यदि तत् धर्मों के प्रकट होने के पूर्व भी संयम धारण किया हो तो साधक के लिए तत् संबंधी आगम ग्रंथो के अध्ययन से पूर्ण ज्ञानकर अशुचि तथा वैराग्य भावना से अपने आप को आद्र रखना चाहिए। बाल अवस्था में दीक्षा धारण करना कोई दोष नहीं है परंतु संयम पालन में बालपन नहीं होना चाहिये संयम साधना संसार हानि के लिये धारण की जाती है।

मन ही संसार है। मन में राग द्वेष आदि क्लेश भवनायें है वे ही संसार है। उसके अलावा अन्य कुछ नहीं है संसार। अतः दुखार्णव से निकलने निकालने का विचार है तो चारित्र धारण बाद में भावों से विरक्ति का जन्म सर्वप्रथम होना चाहिये।

हेय-उपादेय आपा पर का विवेक जाग्रत हो जायेगा तो वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेयोवादेअ-सपराणं विवेगो जग्गेज्जा ताव सो जणो सयमेव हेअं मुच्चित्तां उवादेअं गहेज्जा। इणमेव चरित्तं। पावं हेयो, संजमो-वयो उवादेओ, इणमेव मोक्ख-मग्गो। अओ दिढचित्तेव णिम्मलचरित्तं। सद साहगस्स तहेव पुरिसत्थं आवस्सगो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

व्यक्ति स्वयमेव हेय को छोड़ उपादेय को स्वीकर कर लेगा। यही तो चारित्र है। पाप हेय है, संयम व्रत उपादेय है यही मोक्षमार्ग है। अतः चित्त की स्थिरता ही निर्मल चारित्र है। सद् साधक के लिये उसी प्रकार पुरुषार्थ करना अनिवार्य है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समदाए साहुत्त-परिक्खा

हे विण्णो! भवम्हि माणं, अवमाणं, सुह-दुहं च सामण्णं त्थि। साहूजणा सव्वम्हि समदं ठंति। संकप्प-वियप्पत्तो भिण्णं होंते। सु-समदा तहेव जह अवमाणो होदि। तं पि संमाणादो उणो मा जाणेहि जत्थ अवमाणो होदि। साहूत्तं परिक्खा इणमेव आसि।

कत्तिकेयाणु पेक्खा-गंथे कत्तिकेयसामीलिहिदो-सामण्ण जणस्स पेक्खा जो साहगो, साहगेण किदअवमाणं सहजभावेण गहेदि, सो साहगो असंखाद- गुणसेणी णिज्जरेदि। लोगे वि दिट्ठं अण्णेण किदावमाणत्तो जेत्तियं वेयणा णवि होदि तेत्तियं

समता में साधुता की परीक्षा

हे विज्ञात्मन्! संसार में मान, अपमान, सुख-दुख होना कोई विशेष बात नहीं है। साधुजन सभी में साम्य भाव रखते हैं। संकल्प विकल्पों से परे होते हैं। यथार्थ समता वहाँ है, जहाँ अपमान होता है। उसे भी सम्मान से कम नहीं मानना जहां अपमान होता है। साधुता की परीक्षा तो यही है।

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिखा है- सामान्य जन की अपेक्षा जो साधक, साधक के ही द्वारा किये गये अपमान को सहज भाव से स्वीकारता है, वह साधक असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा करता है। कारण, लोक में भी देखा जाता है पर के द्वारा किये अपमान का कष्ट होता है। यही कारण है कि कर्म निर्जरा अधिक होती है। क्योंकि इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुसंबंधिणो किदावमाणत्तो कट्ठं हेदि। इदमेव कारणेण कम्मणिज्जरा अहिअं होदि। जओ इमा ठिदीए अप्प सुरक्खत्थं तिव्व- पुरिसत्थं कादव्वं। भो पण्ण! तुमं सग भावाणं संवारित्ता रक्ख।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

स्थिति में स्व को संभालने में तीव्र पुरुषार्थ करना पड़ता है। भो प्रज्ञ! तू निज भावों को संभाल कर रखना।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सगपर-पसंसाणिंदासु उच्छाहो णो महणिज्जो

हे पण्णाद! कज्जं कुणसु-णिय णिंदा सवणं। जेत्तियं दुक्करं तेत्तियं दुक्करं कज्जं अण्णपसंसं सवणं जाणेहि। किण्णु इणं दोण्णेव कम्म बंधस्स अहेदू। णिय पसंसाए पफुल्लणं अण्ण पसंसाए कुल्लाणं तहा णिया णिदाए कुल्लणं, अण्ण णिंदाए पफुल्लणं जत्थ होदि तहं णियमेण कम्मबद्धो होदि कम्मबद्ध पकिरिआ परिणामेसु अहारिदो। जहेव परिणामो होज्जा तहेव कम्मबंधो होज्जा। सव्व पढमो जिणागमे कमं इणमेव भण्णिदं।

"पढमं करणं चरणं दव्वं णमो।"

चउवि अणुजोगा कमेहिं पणामं किदं। पढमाणुजोगे

स्व प्रशंसा पर निंदा में, नहीं फूलना ही महानता है

हे प्रज्ञात्मन्! बुद्धि विवेक से कार्य करना, निज निंदा सुनना जितना कठिन है उतना ही कठिन कार्य पर प्रशंसा की सुनना समझ। परंतु ये दोनों ही कार्य बंध के हेतु नहीं है। स्व प्रशंसा में फूलना, पर प्रशंसा में कूलना तथा स्व निंदा में कूलना, पर निंदा में फूलना जहाँ चल रहा हो वहां नियम से कर्म बंध है। कर्म बंध की प्रक्रिया परिणामों के अवलम्बित्त है। यथा परिणाम तथा कर्म बंध होता है। सर्वप्रथम जैनागम का क्रम यही रखा गया।

"प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।"

चारों ही अनुयोगों (वेदों) को क्रमशः नमस्कार किया गया है। प्रथमानुयोग में वर्णित महापुरुषों के चरित्र पुराणों से यह ज्ञात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वण्णिदं महापुरसिाणं चरित्त-पुराणेहिंतो णाणजादं, कस्स पयारेण पुण्ण-पावेहिंतो विवागे को-को जीवो सुहं-दुहं लहिदो। करणाणुजोगे तं परिणामाणं चरचाए करेदि जेण परिणामेण सुहासुहस्स बद्धं किदं। जइ कम्म सिज्झत्तो सुपयारेण जीवस्स णाणे सज्झाए सह आगच्छेदि ताव विवागाभावे। जीवो असुह कम्मादो विरत्तो होज्जदि। पई किरिया कम्मकिदपुव्वे तास अज्झवसिदव्वं। तं कज्जतो किं विहं कम्मं बज्झेज्जदि तहा तास परिवाकं मज्झेव सयं भुंजिस्सामि। दुग्गइत्तो पइखणं जग्गिऊण सचेदोपहरी होऊण जीवणं जीवेज्जा सो सुसाहग-सावगो वा। धम्मगुरु विज्जाणाणं व णिय धम्मोवएसेसु कम्मसिज्झंतस्स वक्खाणं अणिवारिदव्वं। सहेव

होता है, कि किस प्रकार से पुण्य पाप के उदय से कौन्-कौन से जीव सुख-दुःख को प्राप्त हुये हैं। करणानुयोग उन परिणामों की चर्चा करता है जिन कारणो (परिणामों) से शुभाशुभ कर्म का बंध किया है। यदि कर्म सिद्धांत भली भांति जीव की समझ में श्रद्धा पूर्वक आ जाये तो विपाक का भाव होने पर जीव अशुभ कृत्यों से परे हो जायेगा। प्रत्येक क्रिया कर्म करने के पूर्व उसे चिंतवन करना पड़ेगा। उस कार्य से किस प्रकार से कर्म बंध होगा तथा उसका परिपाक मुझे ही स्वयं भोगना होगा। दुर्गति से प्रतिक्षण जागृत होकर सजग प्रहरी बनकर जीवन जीयेगा वह श्रेष्ठ साधक व श्रावक। अतः धर्म गुरु व विद्वान के लिये अपने धर्मोपदेशों में कर्म सिद्धांत का वर्णन अनिवार्य रूप से करना चहिये। साथ ही तद् विषय संबंधित ग्रंथों के पठन-पाठन का उपदेश देना चहिये। कर्म सिद्धांत का ज्ञाता स्वयंमेव चरणानुयोग की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तद्संबंधी गंथाणं सज्झायस्स उवदेसिदव्वं। कम्म-सिज्झंतस्स णादो सयमेव चरणाणुयोगे पायं रक्खेदि। कम्मबद्धस्स किरिया पावाचरणं। एरिसो णाऊण पावस्सत्तो सुरक्खाए हेदू संजमं पालेज्जदि व कादव्वं। जाव चरणाणुजोग-हेदू संजमं पालेहिदि व पालणीयमेव। जाव चरणाणुजोगं संपत्तेज्जा, ताव सयमेव अप्पं पवेसेज्जा। चरणस्स ठिंदी एवं दव्वाणुजोगो। भो पण्ण! चउ अणुजोगेहिं विसय-वत्थुं जाणित्ता ण सपसंसाए ण पर णिंदाए हरिसेउ।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

ओर कदम रखेगा। कर्म बंध की क्रिया पापाचरण है। ऐसा समझकर पापास्रव के बचने हेतु संयम का पालन करेगा और करना ही चाहिये। जब चरणानुयोग हेतु संयम का पालन करेगा और करना ही चाहिये। जब चरणानुयोग को प्राप्त कर लेगा तव स्वभाव में प्रवेश स्वतः होगा। चरण की स्थिरता ही तो द्रव्यानुयोग है। भो प्रज्ञ! चारो अनुयोगों की विषय वस्तु समझकर न स्व प्रशंसा न पर निंदा में प्रसन्न हो।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणामाणं-परिणदिं संरक्खणं साहुत्तं

भो विण्णाद! चित्तस्स णिम्मलत्तं एवं सच्चधम्मो। णतरं सद्दाणं, किरियाणं आडंबरो। सच्चधम्मजुत्तो पइ कत्तव्व णिय संतिं, झाणे रक्खेदि। जास किरिआकलावेण आदसंदी विभंजेदि, ता मुमुक्खु जीवाणं कयावि ण कायव्वं। लोगम्हि तुव पसंसा-णिद्दा व किंपि होज्जा चित्ते मलिणत्तं ण गहिदव्वं। सुहं-दुहं च लाहो-अलाहो ते सव्वे कम्म-किदावत्था। कम्मं पोग्गलिकं जड कम्मं पच्छा णिय आद सुहं मा विसारेहि। ताणं कम्माणमेव कज्जं। सिद्धसरूवी आद संसारम्हि भमेदि। रागाइ विहावभावेसु जीवेदि।

परिणामों की परिणाति को संभालकर रखना ही साधुता

हे प्रज्ञात्मन्! अतः करण की पवित्रता ही सत्य धर्म है। बाकी तो शब्दों का, क्रियाओं का आडम्बर है। सत्य धर्म निष्ठ व्यक्ति प्रत्येक कर्तव्य में स्वशांति का ध्यान रखता है। जिस क्रिया-कलाप से आत्मशांति भंग होती हो वह मुमुक्षु जीव को कभी नहीं करना चाहिये। चाहे लोक में तेरी प्रशंसा हो चाहे निंदा परंतु मन में मलिनता को जन्म नहीं देना चाहिये। सुख-दुख, लाभ-अलाभ ये सब कर्म कृत अवस्थायें हैं। कर्म पौद्गलिक है जड़ कर्मों के पीछे निज आत्म सुख को नहीं भूल जाना। उन कर्मों की ही महिमा है। सिद्धस्वरूपी आत्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विहावभावेण विणा इणं कम्मं ण विणसेज्जदि तहा कम्मा-भावेण विणा रागाइ-भावाणं अभावो विणो होदि। साहगं पइखणे परिणामाणं परिणदीए सुरक्खा आवस्सगा। णिम्मल परिणामेण विणा ण को वि कम्माणं विणासिदो व णवि विणासेज्जदि। कम्मेसु उज्जमं किं कुणेस्सदि? उज्जमेसु णिय परिणामेसु। परिणामाणं परिणदि-परिवट्टणमेव साहणा। भावेसु सिदिलत्तं णा लहेज्जा, सम्हल तुज्झ सव्वा किरिया मेत्त-पदंसणं होज्जा। पदंसणेण मेत्तेण कयावि अप्पकल्लाणं ण होदि। विसुज्झीए-विणा संपुण्णं किरियाए णिरत्थगं जाणेहि। दोसं, डाहं, मया, लोहं, काम-कोहो,

---

संसार में भटक रही है। रागादिक विभाव भावों में जी रही है। विभावों के अभाव हुये बिना कर्म नष्ट नहीं होंगे तथा बिना कर्म अभाव हुये रागादिक भावों का अभाव नहीं होगा। अतः साधक को प्रतिक्षण परिणामों की परिणति को सम्हालकर रखने की आवश्यकता है। बिना परिणामों की निर्मलताके न कोई कर्मों को समाप्त कर सका न कर पायेगा। कर्मों पर पुरुषार्थ क्या करेगा? पुरुषार्थ कर निज परिणामों पर। परिणामों की परिणति को बदलना ही तो साधना है। यदि भावों में मंदता नहीं आई तो ध्यान रख सारी क्रियायें तेरी मात्र क्रियाकांड रूप ही रह जायेगी। कोरी क्रियायें कभी आत्मकल्याण नहीं करा पायेगी। बिना विशुद्धता के समस्त क्रियायें निरर्थक ही समझो। द्वेष, डाह, मत्सर्य, लोभ, काम, क्रोध, मान, मायदि विकार जहाँ समाप्त हो गये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असूया रोसाइ वियारं जत्थ उवसमेदि, कसायम्हि रिउत्तं होदि, तुमए विणयो, विवेगो फुरिदो जाणेहि परिणामेसु विसुज्झीए जादा अहुणा सुमग्गो पसत्थो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

हों, कषायों में ऋजुता आ गई हो, तेरे में विनय, विवेक, भक्ति प्रकट हो समझ लो परिणामों मे विशुद्धी ने जन्म ले लिया। अब कल्याण मार्ग प्रशस्त है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जसमरणं सु-मरणं अजसजीवणत्तो

हे हंसप्पण! मुणिधम्मो सेट्ठत्तणं, महाणत्तणं सामी। इदा धम्मा सामण्ण जणागहसक्केंति। समंतभद्द सामी रयणकाण्डग-सावगचारे भण्णिदा महा-पुरिसेव महव्वयाइं गहेदि। तिलोय-तिलगत्तं पदेदि, सो भव्व-जीवो, जो जिणिंद देवस्स मंगलमयरूवं गहिदो। णमणं तं भव्ववर अप्पं जेण णिय अप्पेण करूणं करित्ता जिणलिंगं गहिदं। लोग-सिहस्स चरमं फासेदि "जिणमुणी" इमा वत्ता सुपसिद्धा। इमा वत्ताए, वियारेहि, जदि चरिचाए णिव्वाहो आदस्समयो जादो ताव इणं जिण-मुद्दं-अप्प-कल्लाणस्स हेदू,

---

यश का मरण श्रेष्ठ है, अपयश के जीने से

हे हंसात्मन्! मुनिधर्म श्रेष्ठता, महानता का स्वामी है। इस धर्म का धारण सामान्य जीव नहीं कर पाते। समंत भद्र स्वामी ने रत्नकारण्डक श्रावकाचार जी में उल्लेखित किया महापुरुष ही महाव्रतों को धारण करते हैं। त्रिलोक तिलक अवस्था को प्रदान करता है वह भव्य जीव जिसने जिनदेव के मंगलमय रूप को धारण किया है। नमन है उस भव्यवर आत्मा को जिसने निज आत्मा पर करूणा कर जिनलिंग को प्राप्त किया है। लोक शिखर की शिखा को स्पर्श करता है 'जिनमुनि' यह बात सर्व प्रसिद्ध है। परन्तु इस बात का ध्यान रखना यदि चर्या का पालन आदर्शमय रहा तब तो यह जिन मुद्रा आत्मकल्याण की हेतु है, यदि कहीं लोक पूजा, प्रतिष्ठा में चला गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जइ कहं लोय पूया, पइट्ठाए गच्छिदा तं भाव लिंगी मुणी वि एगत्तिसा भवे हिंडेदि। बीत्तसाए भवम्हि मुत्तिसिरिं लहेहि।

भो चयेण्ण! णिय भावाणं सुट्ठु कुण। ऊवरिं सोवाणत्तो पडिदो पुरिसो। णिय हत्थपायं णासेदि। भवे हंसणं लहेदि, तहेव साहू जदि संजसम-भावादो पडिदो ताव तस्स चरियचरणं भंजेदि। बाल-गोवालो वि तं साहगस्स हसंते तहा कम्म-कलंकादो अलित्तो होदिं। आदस्सत्तं पलयेंति। पुणो ठाविदो वि होइ, सकल्लाणं पि करेदि परं जणसामण्ण मज्झे पुण्णरूवेण सद्धहिदि ण होदि। सुपसिज्झ जिणवागरण-कातंतरूवमालाए अई सुट्ठु सुत्तीदिण्णं- "सक्किद

तो भाव लिंगी मुनि भी 31 भव भटक सकता है। बत्तीसवें भव में मोक्षश्री को प्राप्त कर लेता है।

भो चैतन्य! निज भावों को सुधार। ऊँची सीढ़ी से गिरा प्राणी हाथ पैर को तोड़ लेता है। जगत में हास्य को प्राप्त होता है उसी प्रकार साधु यदि संयम भाव से गिरते हैं तो उनका चारित्र चरण टूट जाता है। बाल गोपाल उस साधक की हंसी करते हैं तथा कर्म कालिमा से लिप्त होता जाता है। आदर्शता पलायन होती जाती है। पुनः स्थापित भी हो जाता है, स्वकल्याण भी कर लेता परंतु जन सामान्य के बीच पूर्ण रूपेण आस्था का अधिकारी नहीं बन पाता। "सकृत बाधितो विधिर्वाधित एव सत् पुरुषवत्" अर्थात् जो असत् पुरुष के समान एक बार बाधित को विधि बाधित ही समझना चाहिए। यद्यपि यह सूक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाहगा विही बाहगा एव सप्पुरिसव्व'' जदवि इमा सुत्ती वागरणस्स विसयं णादुं सिरि भावसेणाचारियो तिवेज्जोदिण्णो। सारं जाणेहि-जो पुरसो णिय छाविं एगहुत्तं सुमलिणं किदं सो बाहिदेव ण होज्जा अविदु सुद्धुजणा तं वि असुद्धो-पुरिसव्व पेक्खेंति। साहगवग्गं णिय चरिय-रयणस्स तहा जस रक्खा सुवण्ण-रयणेहिंतो वि अहिय दुल्लहं जाणिदव्वं। जीवणं जदि अत्थि जसेव अवजसस्स जीवणं किं जीवणं। सम्माणं, जसेण सह एग मुहुत्त जीवणं पि वरं, अकित्तीए सह सहसवरिसाणं आउ भोगंपि असारो। वीर पहुस्स पायम्हि पडिपलं इणमेव णिम्मल-भावणा साहगो भावंतो रहिदव्वं। भयवं

व्याकरण विषय को समझने हेतु श्रीमद भावसेनाचार्य त्रेवेध जी ने दी है। तात्पर्य यह समझना जो सद्पुरुष अपनी छावि को एक बार धूमिल कर लेता है वह बाधित ही नहीं होता अपितु श्रेष्ठजन उसे भी असद्पुरुषवत् ही देखते हैं। साधक वर्ग को अपने चारित्र रत्न की तथा यश की रक्षा स्वर्ण रत्नों से भी ज्यादा अर्धमय समझना चाहिए। जीना है तो यश का ही है अपयश का जीवन भी कोई जीवन है। सम्मान, यश के साथ का एक मुहूर्त जीवन श्रेष्ठ है परंतु अपकीर्ति के साथ हजारों वर्षों की आयु को भोगना व्यर्थ है। वीर प्रभु के चरणों में प्रतिपल यही पवित्र भावना साधक को भाते रहना चाहिए कि भगवान मेरा चारित्र निर्मल रहे, मुझ अल्पज्ञ के माध्यम से नमोस्तु शासन में मलिनता ना आये। यद्यपि शासन तो निर्मल ही है, रहेगा, फिर भी मेरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मज्झ चरियं णिम्मल पवित्तं रहेज्जहि, हं अप्पणाणेण। णमोत्थु सासणे मल्णित्तं ण आगच्छेज्ज। जद्दवि सासणं णिम्मलेव अत्थि, होज्जदि, पुणरवि मए को असद्धा ण पज्जेउ, जस्स हं संजमं गहणं किदं-अंतिय मरणे मज्झ संजमेण सहेव होदू इणमेव णिम्मल-भावणा सया-रक्खेहि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

द्वारा किसी को अनास्था उत्पन्न न हो, जिस संयम का वरण किया है अंतिम मरण भी मेरा संयम के साथ ही हो यही निर्मल भावना सतत् बनाये रखो।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्पसाहणस्स सोवाणं मोणं

हे विण्णप्पण! तुमं चिंतेहि वियाराणं, संकिलेसाणं णिमित्ताणं ण विणासेसु तं उवसमेहि ण, तं पडि णिय दिट्ठी गच्दति तं दिट्ठि गच्छंति तं दिट्ठिं चएसु। दव्वं जत्थ-तत्थेव। जो णिमित्तं पच्छा पडिदं-तं कयावि अप्पं ण लहिदं। णिमित्तत्तो जो चुओ तं पारं गओ। आदसाहणा संपदीए बहु दुल्लहा, णग्गो होदि सरलो। इमे समये देहे उस्सगं करिस्संतो चंडो ण बहुवा। साहु उवरि चउत्थाकालव्व को उवसग्गो ण होंति, पर संपडीए भत्तेहिं जो उस्सग्गो दियम्बर-साहूसु आगच्छेदि किंचि अहिग वेयणा पुण्णा। कोवि वइरि देहे उस्सगो किदो वत्तमाणे साहगाणं चित्तम्हि उस्सग्गो होंति। सारो इणं आसि

आत्म साधना का सोपानः मौन

हे विज्ञात्मन्! तू ध्यान दे! विकारों के, क्लेश के निमित्तों को नष्ट नहीं करना, उन्हें समाप्त नहीं करना, उनके प्रति जो अपनी दृष्टि जाती है, उस दृष्टि को हटाना है। द्रव्य तो जहां है वहां ही है। जो निमित्तों के पीछे पड़ा है वह कभी भी स्व को प्राप्त नहीं कर सकता। निमित्तों से जो हट गया वह पार हो गया। आत्म साधना वर्तमान युग में बहुत कठिन है, नंगा होना सरल है। इस समय शरीर पर उपसर्ग करने वाले चांडाल तो बहुत कम हैं। साधु के ऊपर चतुर्थ कालीन जैसे कोई उपसर्ग नहीं आ रहे, पर वर्तमान में भक्तों के द्वारा जो उपसर्ग दिगम्बर साधुओं के ऊपर आ रहे हैं वे कुछ ज्यादा धातक है। कोई बैरी तो तन पर उपसर्ग करता था लेकिन वर्तमान में साधकों के मन पर उपसर्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो साहू बहिर ववहारम्हि गमणं ण इच्छेदि तस्स उप्पेरंते, जो गच्छिंतो उवेक्खत्ता। सावगो, भत्तगणो सम्माणं साहूहिंतो इच्छेदि महुरं-महुरं वत्ता कादूणं साहू वग्गाणं णियवसकिदं साहिमाणं सिद्धंते अप्प विसमदाए साहु-समक्खं ठाविदूणं साधगस्स सामयिगं णासंते।

हे जोइ! एरिसो भत्तेहिंतो बचित्ता रहेदि। तुज्झमोणं वरदाणं। मोणी एव झाणी होज्जदि। सुगो पिंजरे किं? हेदू माणुस्साणं मज्झे माणुस-जुणीए बोल्लिदो अओ बंधणं लहिदो। हे साहु! झाएज्जा, जत्थ मोणं मुच्चिदं तत्थेव बंधिदो। परवंचत्तो असारवत्तादो सुसरक्खस्स वंछा आसि तदो अप्पणे विसेस-पडिबंधणं गहियव्वं, सो वि सव्वाहिगो वायाए। वायाए अमियो-हलाहलो वा। णाऊण

होते हैं। तात्पर्य यह है- जो साधु बाह्य सामाजिकता में नहीं जाना चाहता उसे प्रेरित किया जाता है, जो चला जाता है उसे उपेक्षित किया जाता है। श्रावक, भक्तगण स्वमान का पोषण सन्तों से कराना चाहते हैं, मीठी-मीठी बातें कर के साधु वर्ग को अपने चंगुल में फँसाकर स्व अभिमान की सिद्ध कर रहे हैं। निजी विषमताएँ साधु के पास रखकर साधक की सामायिक भंग करते हैं।

हे योगी! ऐसे भक्तो से बचकर रहना। तेरे लिए मौन वरदान है। मौनी ही ध्यानि बन पायेगा। तोता पिंजड़े के अन्दर क्यों? कारण कुछ विशेष नहीं है इतना ही है कि मनुष्य के बीच मानव जैसा बोलगया इसलिए कैद हो गया, बन्धन को प्राप्त हो गया। हे बन्धु! तू ध्यान रख जहाँ मौन खुला वहीं फसा। परपंच से, व्यर्थ के विसंवादों से बचना है तो तुझे अपने आप में विशेष प्रतिबंध लगाना होगा वह भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

च्चिया मोणं भंगेहि। मोणं सव्वसेट्ठं साहणं व आद-साहणस्स सोवाणं। सुणहि बहू बोल्लहि अप्पं बोहिमंताणं जीवणं। जो सुणेदि किंचि व करेदि बहुकिंचि व बोल्लदि सव्वत्तो अहिगं, तेण जणं समीवे अण्णं को वि जेट्ठं अबोहिमतं आणिस्स ण आवस्सगत्तं। कस्सवि कज्जे झटति-वयणं साहगस्स पुण्णं असोहेदि। सो जणो कयावि णियदिट्ठिं। ण णमावेदि जो बोल्लत्तं, सो णाणीसु वर-णाणी, अप्पणाणस्स जोग्गो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

सबसे ज्यादा वाणी पर। वाणी में अमृत व जहर दोनों हैं। इसलिए समझकर ही मौन तोड़ना। मौन सर्वश्रेष्ठ साधना है व आत्म साधना का सोपान है। सुनना अधिक बोलना कम ये समझदारों की जीवन शैली है। जो सुनता कम है और करता भी बहुत कम, पर बोलता सबसे ज्यादा, उस व्यक्ति के पास अन्य किसी भी बड़े मूर्ख को लाने की आवश्यकता नहीं है। किसी भी कार्य में एकाएक बोलना। साधक के लिए पूर्ण अनुचित ही है। वह कभी अपनी दृष्टि नीचे नहीं कर सकता जो बोलने से ज्यादा सुनता है, गुनता है, जीवन में ढालता है फिर हित-मित बोलता है, वह ज्ञानियों में श्रेष्ठ ज्ञानी है, आत्मज्ञ बनने का पात्र है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तारज्जे भवादो सो तित्थो

हे विसुद्धाद! तु कत्थं सुत्तो सि किं तुज्झ सग-भव-भमणस्स णवि णाणं? तुमं ऐगं-अंतरमुहुत्ते लब्भ-परिअत्तग-अवत्थाए छत्तिसं तिणिसय छासठ सहस्स हुत्तं जम्मं मरणं किदो। अहो! पेक्ख विगलेंदिसु वेइंदिय लद्ध परिअत्तगस्स अस्सिभवं, तइंदिय लद्धं परियत्तगस्स सट्ठि भवं चउ इंदिय लद्ध परियत्तगस्स चालिस भवं पंचिंदिय लद्ध परियत्तगस्स चोविस भवं तहा एगेंदियाणं 66132 भवे गहिदं। भो णाणि! इणं भवं तुमं एगहुत्तं ण अणेग हुत्तं गहिदो। चउरासि लक्ख जोणिसु कोवि जोणि सेसं ण रहिदं सव्व जोणीसु

जो भवावली से तिरा दे वही सच्चा तीर्थ

हे विशुद्धात्मन्! तू कहां सुप्त है क्या तुझे निज भव भ्रमण का भाव नहीं है? तूने एक अन्तर्मुहूर्त में लब्ध्य पर्याप्तक अवस्था में छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार जन्म मरणादि किया है। ओहो! देख विकलेन्द्रियों में द्वीन्द्रिय लब्धपर्याप्तक के अस्सी भव, त्रीन्द्रिय लब्ध्य पर्याप्तक के साठ भव, चतुरिन्द्रिय लब्धयपर्याप्त के चालीस भव और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के चौबीस भव तथा एकेन्द्रियों के 66132 भवों को धारण किए। भो ज्ञानी! ये भव तूने एक बार नहीं अनन्त बार धारण किए। चौरासी लाख योनियों में से कोई योनि शेष नहीं रही सभी योनियों में, सभी गतियों में भटक चुका है। कारण विषय, कषाय। विषयों की प्राप्ति के लिए कषाय परिणाम करता रहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सव्वगदिसु भमिदो। हेदू विसय कसायं। विसयाणं पत्तेदुं कसायिग परिणामं करमाणो। विसओ विसो। विससेवण-वरं विसय-सेवणेण। अओ विसं एगहुत्तमेव संतावेदि, विसय-सेवणं तो तक्खणेण अणंदभवाणं संत्तावेदि। भोगं भुंजेण पुव्वं पाणी वासणेण संताविदो होंते, भुंजण समये भयं व इच्छत्तो संताविदो, भुंजेण पच्छा पच्छतावे संताविदो होदि। पुणरवि धिक्कारो, तास ण चयेदि। अण्णाणीस्स वासणा उक्समेदि, तो तं कसायेसु जलेदि। किं विडम्बणभवत्तो भयं होदव्वं। चेदण्ण! संसारादो पार-भावणा ण अत्थि किं? तस्स मग्गस्स गवेसहि जस्स तुमं पारेहिसि। धम्म-

---

विषय विष है। विष का सेवन श्रेष्ठ है, विषय सेवन की अपेक्षा। क्योंकि विष एक बार संतापित करता है, विषय सेवन तो तत्क्षण से ही अनन्त भवों के लिए संतापित करना प्रारंभ कर देता है। भोग-भोगने के पूर्व प्राणी वासना से संतापित होता है, भोगते सयम भय व लालसा से संतापित है, भोगने के बाद पश्चताप में संतापित होता है फिर भी धिक्कार है, उन्हें छोड़ नहीं पाता। अज्ञानी की वासना शान्त होती है तो वह कषायों में जलने लगता है। कैसी विडम्बना है भव से भय होना चाहिए। चैतन्य! संसार से तिरने की भावना नहीं है क्या? उस मार्ग की खोज कर जिससे तू पार हो जाए। धर्म तीर्थों का सहारा लो, तीर्थ भूमियों के प्रशान्त वातावरण में अपना वातावरण परिवर्तित कर। जो भवावली से तिरा दे वही सच्चा तीर्थ है। हे मनीषी! रत्नत्रय से युक्त निज आत्मा ही सच्चा तीर्थ है आत्मा-तीर्थ में निमग्न हो जा फिर तुझे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तित्थाणं सरणं गहेसु, तित्थ-भूमीणं पसंतवादावरणम्हि णिय वादावरणं परिवट्टेहि। जो भवावलीए तिरावेदि सो च्चिय सच्चतित्थो। हे मणिसी! रयणत्तजुत्तो णिय अप्पेव सच्चतित्थो। अप्पतिंत्थम्हि लीणा होहि पुण तुज्झ बहिर-तित्थेसु ण भमेज्जा। जाव अप्पतित्थस्स ण सिद्धी, ताव ववहार-तित्थो, सिद्ध भूमीणं दंसणित्ता पुण्णं-अज्जणेहि, सो वि परंपराए मोक्खस्स हेदू।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

बाह्य तीर्थों में भ्रमण नहीं करना पड़ेगा। जब तक आत्म-तीर्थ की सिद्धि नहीं है। तब तक व्यवहार तीर्थ। सिद्ध भूमियों के दर्शन कर पुण्यार्जन कर, वह भी परंपरा से मोक्ष का कारण है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उवएसो, आदेसो णो

भो णाणि! जड दिवं अणेगहुत्तं पज्जालिदो, एगहुत्तं चेयण्णं दिवंपि पजालेहि, जो अखण्डो अविणासी, जो कयावि वयारेण ण बुज्जझेज्जां। केत्तियंवि तिव्व बयारो आगच्छेदि अकम्मं-अचलो होदि सो णाण दीवो। ताव सच्चं णाणजोइ ण पजालेज्जदि, ताव भावाढवी जो दिढ़ तिमिरजुत्ता ताओ ण णिस्सरेंदि। जहेव खायिगा जोईं ण पजालेदि, तहेव खाओवसमिगं जोइं पज्जलेहि। खाओवसमिगं सुदणाणं खायिगणाणं। केवल-णाणं होहिदि।

खाओवसमिग-णाणेण विणा खायिग-णाणजम्मं ण होदि।

उपदेश तो देना.... आदेश नहीं

भो ज्ञानी! जड़ दीप अनन्त बार जले, एक बार चैतन्य दीप जला ले, जो अखण्ड अवनाशी है, जो कभी तूफानों से बुझने वाला नहीं है। कितने ही झंझावात चलें अकम्प, अविचल रहे, वह ज्ञान दीप है। जब तक सत्य ज्ञानज्योति नहीं जलेगी, तब तक भवाटवी जो कि सघन अंधकार से युक्त है, उससे नहीं निकल सकता। जब तक क्षायिक ज्योति नहीं जल पा रही, तब तक क्षायोपशमिक ज्योति को उज्जवल करता जा। क्षयोपशमिक श्रुतज्ञान क्षायिक ज्ञान/केवल ज्ञान को प्रकट कराता है।

बिना क्षायोपशमिक ज्ञान के क्षायकि ज्ञान का जन्म हो नहीं सकता है। भो विशुद्धसागर! ध्यान रख यदि ज्ञान सूर्य को प्रकट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भो विसुद्ध-सायर! जग्गहि जइ णाणदिवायरं पगटावेणस्स वंछासु व णिम्मल सुवासि दस्स वंछा अत्थि, तदो मद-मेहेहिं व समाय, देस सट्ठ; संधाणं परवंचादो विमुहो होहि अण्णहा ण तुमं सयमेव साहणं सक्केज्जसि ण सयं सुही होज्जसि। माणमेहाणं ण्हावं गोदमसामीदो अणुभवं गहेसु व मिदुमदी मुणिरायादो। जाव अहं उववििसयो गोदमो गोदमो दु भण्णंतो पर गोदमसामी ण कहावेदि। अहं उवसमंतेव गणधर सामी जादो। रागस्स अंधेरीए खायिग-मारतंडो ण होदि। जहेव तित्थयर-वड्ढमाणस्स णिव्वाणं जादं अंतसे वीदराग-भावो पुण्णो जग्गेदि, सिग्घं केवल्ल खायिग-णाणस्स दिवायरो

करना चाहता है एवं निर्मल सुरभित करना चाहता है तो अहं के बादलों से एवं समाज, देश, राष्ट्र, संघों के प्रपंचों से विमुख रहना। अन्यथा तू न स्व साधना कर सकेगा न स्वयं को सुखी देख पाएगा। अहं के बादलों की महिमा गौतम स्वामी से अनुभव कर ले व मृदुमति मुनिराज से जब तक अहं रहा गौतम, गौतम तो कहलाते रहे पर गौतम स्वामी नही कहलाए। अहं के समाप्त होते ही गणधर स्वामी बन गए। राग की अंधेरी में क्षायकि सूर्य उदित नहीं हो रहा था, पर जैसे ही तीर्थंकर वर्धमान का निर्वाण हुआ अन्तरंग में वीतराग भाव की पूर्ण जागृति हुई, शीघ्र कैवल्य क्षायिक ज्ञान का दिनकर प्रगट हो गया। रे मूढ़! ध्यान रख, पुरुषार्थ करना चाहिए पर कार्य तो समय पर होगा। पुरुषार्थ नहीं करेगा तो समय भी नहीं हो सकेगा। जिसकी जैसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फुरेदि। रे मुड्ढ! जग्गहि, पुरिसत्थं कादव्वं परण्णु कज्जं तो समयमेव सरेदि। पुरिसत्थं ण कुणेज्जा तो समयेवि ण आगच्छेज्जा। जस्स जं होणहारं, तं तित्थयर-भगवदेव वि ण परिवट्टेदि। अओ तुं सम्हल उवएसो आएसो णो।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

होनहार है, उसे तो फिर तीर्थंकर भगवान भी नहीं बदल सके। इसलिए तू ध्यान रख उपदेश तो देना पर आदेश नहीं।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्धा-पदीवं पज्जलेहि

हे चेयण्ण! अप्प उत्थणस्स मग्गो सम्मसद्धा त्थि। अत्था पत्थरे भगवं दिक्खावेदि। अत्थाए सत्था होदि। जेण संमीवे अत्था तेण समिवे असेसो। अत्था आसि तं सत्था अवस्सेव। जेण समिवे अत्थेव ण तेण कयावि सत्थस्स ण दरिसणावेदि भगवं गवेसणाए आवस्सगत्तं ण, अत्थावाणस्स मग्गिज्जंतस्स आवस्सगो। अइ-अंधयारो परिदो मेत्त मिच्छस्स अणत्थाए। धणवंताणं, सत्थवंताणं मेत्ताणं ओहं दिक्खेदि ण सद्धावंताणं। सद्धाए सत्थस्स गंधो वि ण होदि। सद्धा पंच परमेट्ठीणं पाएसु होदि, सम्मदिट्ठीए सह होदि।

श्रद्धा दीप जलाओ

हे चैतन्य! आत्मउत्थान का मार्ग सम्यक् श्रद्धा है। आस्था पाषाण में भगवान दिखा देती है। आस्था का शास्ता होता है। जिसके पास आस्था नहीं है, उसे कभी शास्ता के दर्शन नहीं हो सकते। भगवान को खोजने की आवश्यकता नहीं है, आस्थावान को खोजने की आवश्यकता है। तिमिर धनधोर छाया है चारों तरफ एक मात्र मिथ्यात्व का, अनास्था का। धनवानों की, स्वार्थवान भक्तों की भीड़ तो दिखती है, पर श्रद्धावानों की नहीं। श्रद्धा में स्वार्थ की गन्ध नहीं होती। श्रद्धा पञ्चपरमेष्ठी के चरणों में होती है, समदृष्टि को लेकर होती है। स्वार्थ व्यक्ति विशेष को देखता है, उसमें धर्म नहीं दिखता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्थं जणो विसेसं पेक्खदि तम्हि धम्मं ण पेक्खेदि, धम्मिगस्स वेसमेसत्तं दिक्खदि व किंचि समयस्स सत्थजुत्ता सद्धा होदि। सत्थरूवा सद्धा तिण्णग्गि व्व सि, जा सबलरूवादु पगडेंति पर किंचि समयम्हिं उवसमेदि। धम्मे जा णिखेक्ख-अत्था, सा च्चिय सच्चरूव-अत्थ, चिरठिदा। सद्धवंतस्स सम्माइट्ठिस्स णाणं, चरिया-मोक्ख-पदायगा। सद्धाविहीणस्स/पुण्ण किरियाओ दिग्घ संसार बुड्ढिकरा।

आइरिय-कुंदकुंदसामिणा उत्तं च रयणसार सत्थे-

दाणं-पूया सीलं, उपवासं बहुविहं पि खवणंपि।

धर्मात्मा का भेष मात्र दिखता है और कुछ समय केलिए स्वार्थ निहित श्रद्धा होती है। स्वार्थ व्यक्ति विशेष को देखता है, उसमें धर्म नहीं दिखता, धर्मात्मा का भेष मात्र दिखता है और कुछ समय केलिए स्वार्थ निहित श्रद्धा होती है। स्वार्थ रूप श्रद्धा घास की अग्नि तुल्य है जो प्रबल रूप में प्रकट होती है पर कुछ ही समय में शान्त हो जाती है। धर्म पर जो निःस्वार्थ आस्था है, वही सत्य रूप आस्था है, चिरस्थाई है। श्रद्धावान सम्यक् दृष्टि का ज्ञान/चर्या मोक्ष प्रदायक है। श्रद्धा विहीन की सम्पूर्ण क्रियाएं दीर्घ संसार वृद्धि का करण है।

आचार्यभगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी ने ग्रन्थराज रयणसारजी में भी कहा है-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्मजुदं मोक्खसुहं, सम्मविणा दीह संसारे॥

बत्तमाणे मिच्छस्स पबल-वायरो चंडत्तं गहिदो, जदो मणुओ सम्मपहेण मुच्चंतो। आवस्सगत्तं पडंतेण उट्ठावणस्स। भगवं महावीर-सामी अंतिम तित्थयरस्स णिव्वण्ण दिवसं अम्हे सव्वे मण्णेंति आगच्छेमो, मण्णामो पदीवाणं मज्झेण जं धणवंताणं पव्वं जादं अज्ज अम्हे किंचि परिवट्टणस्स आवस्सगत्तं अत्थि। जड दिवं पजालेण सह चेयण्ण पदीवाणं पि वियारं कायव्वं। जडदिवं परोप्परम्हि अणपजालं पजालेदि। पर चेयण्णो जल माणं उवसामेदि। पदीवं पजालणं सिक्ख ण उवसमणं। सद्धाए जोइं

दाणं-पूया सीलं, उपवासं बहुविहं पि खवणंपि।

सम्मजुदं मोक्खसुहं, सम्मविणा दीह संसारे॥

अर्थात् सम्यग्दर्शन से युक्त दान, पूजा, शील, अनेक प्रकार के उपवास, कर्म क्षय में कारण भूत मोक्ष सुख के कारण है और सम्यग्दर्शन के बिना दीर्घ संसार के कारणभूत है। वर्तमान में मिथ्यात्व के तूफान प्रबलता को धारण किए है जिससे जनमानस सम्यक् पथ से च्युत होता जा रहा है। आवश्यकता है गिरते को उठाने की। भगवान अन्तिम तीर्थेश महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव को हम सभी मनाते आ रहे हैं, मना रहे हैं दीपकों के माध्यम से जिसे धनिक वर्ग का पर्व बना दिया है। पर आज हमें कुछ परिवर्तन की आवश्यकता दिख रही है। जड़ दीपों को जलाने के साथ चैतन्य दीपकों के बारे में विचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पजालेहि, सद्धा-दिवं ण उवसमेहि। पइ पाणिस्स परिणदीए आगच्छेसु, अहं टुट्टंति अत्थं दिढावेमि। अम्हाणं चरिया, किरिया, वाया एरिसो होदू जस्स वत्तमाण पिढ़िं सच्च-देव-सत्थ-गुरुभत्तिं ण चुक्केदि। णाणस्स संउवओगस्स आवस्सगत्तं। लेहणी पत्तं व मेहाए णिस्सारं वयं ण होयव्वं। जइ अम्हाण लेहणीए, भासणे, चरचाए अणेगाणं अत्था उवसमेंति, सा अण्णाणत्तं उद्योदगा। दिवावलिं पव्वं सद्धावली पव्व-रूवेण मणाहि, सयं सत्थगं होहि। अण्णेवि करेसु, सम्मग्गम्हि चलेहिहि, चलावेहि, तहेव दीवावली-पव्वं सत्थगं होदि।। इणमेव भगवं महावीर-सामिं पडि अम्हाणं भत्तीए

करना पड़ेगा। जड़ दीप तो परस्पर में बुझे तो जला लेते हैं। पर चैतन्य दीप जलते को बुझा देते हैं। दीप जलाना सीखो बुझाना नहीं। तात्पर्य श्रद्धा की ज्योति को जलाओ, श्रद्धा दीप न बुझने पाये। प्रत्येक प्राणी की परिणति में आ जाए कि मैं टूटती आस्था को मजबूत करूँगा। हमारी चर्या, क्रिया, वाणी ऐसी बने जिससे वर्तमान पीढ़ी सच्चे देव शास्त्र गुरु की भक्ति को न भूल पाये। ज्ञान का सदुपयोग करने की आवश्यकता है। कलम कागज एवं बुद्धि का व्यर्थ व्यय नहीं होना चाहिए। यदि हमारी लेखनी से, भाषण से, चर्या से अनेकों की आस्था समाप्त होती है, वह अल्पज्ञता का प्रतीक है। दीपावली पर्व को श्रद्धावली पर्व के रूप में मनाये, स्वयं श्रद्धावान बने दूसरे को बनाए, सदमार्ग में चले, चलायें, तभी दीपावली पर्व सार्थक होगा। यही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होस्सदि। पडि पाणीणं पडि सहभावं कुणसु, भेदगत्तं उवसमिदूण अभेय अवत्थं पाऊण वीरणिव्वाणं मणाविऊण सणिम्माणस्स व णिव्वाणस्स सिद्धीए लग्गेसु।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

भगवान महावीर स्वामी के प्रति हमारी भक्ति होगी। प्राणी मात्र के प्रति सद्भाव बनाये रखें भेदभाव की खाई को समाप्त कर अभेद अवस्था को प्राप्त कर वीर निर्वाण को मनाकर स्व निर्माण एवं निर्वाण की सिद्धि में लग जायें।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णो कुण असुयं

भो चेदण्ण! तुं कत्थवि कदो दि होसि पंचपरम-गुरुं मा विसरावेहि णिग्गंथ-मुद्दं तुमं जत्थवि पावेदि पढमं वंदणं। अहिणंदणं, पच्छा कोवि अण्ण चरिचा। कस्सवि उण्णदिं पस्सिदूणं तुं असूयाभावं ण लहेहि। अज्जोपायं तुं परिणामं णिम्मलं रक्खिदो तदो तुमं अज्जं इदंरूवं गहिदं। तुट्ठो ण होहि तिलोयसिहरं लहेहि। सिज्ज-सरूवं लहेहि पज्जायचित्तेसु मा जुज्झ जुज्झेहि। सरूवो अरसमरूव-मगंधो। अफासो संठादो रहिदो, पुण तुं छाया चित्तम्हि किं? तुज्झ वत्तमाण देहो सिज्झ-सरूवाओ सुट्ठुं लग्गसि। तुमं णिय वात्थविगं सरूवं ण जाणेसि, किं तुमं सिज्झस्स वंछं ण रक्खेसि! किं

ईर्ष्या नहीं पुण्य करो

भो चैतन्य! तू कहीं भी कैसे भी हो, पंच परम गुरु को मत भूल जाना। निर्ग्रन्थ मुद्रा तुझे जहां भी मिले प्रथम वन्दन। अभिनन्दन, उसके उपरान्त कोई अन्य चर्चा। किसी की उन्नति देखकर तू ईर्ष्या भाव को प्राप्त मत होना। आज तक तूने परिणाम निर्मल रखे हैं उसी का प्रभाव है, तू आज इस रूप में है। यहीं संतुष्ट नहीं होना, अपितु त्रैलोक्य शिखर पर जाना है। सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करना पर्याय के चित्रों में मत उलझ जाना। तेरा स्वरूप अरस, अरूप, अगन्ध, अस्पर्श है, संस्थान से रहित है, फिर तू पुद्गल रूप फोटो, तस्वीरों में कैसा? इसका तात्पर्य है तुझे वर्तमान शरीर सिद्ध स्वरूप से अच्छा लग रहा है। तूने अपने असली रूप को नहीं समझा, क्या तू सिद्ध नहीं होना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भवस्स पज्जाएव तुज्झ वरा-णुभवेसि? णिसेजस-सुहत्तो णिरुल्लासो, वत्तमाणस्स पज्जाए संतिं अणुभवसि। जम्हि चेयण पहू चिट्ठंति, सो णस्सदि, देहस्स छाया कस्स सुइरा होदि? कोडा-कोडि मुणिस्सराणं जादा, वत्तमाणे महाणाणी तवस्सी आइरिय कुंद-कुंद सामी-समंतभद्दसामी, अकलंक-देवो, भद्दबाहू, धरसेणो, पुप्फदंतो, भूदबली, गोदमसामी, महावीरसामी, तित्थयराणं छाया ण सस्सदा। ण कस्स सेसा रहिदा। हे दुम्मदि! तुह छायं कस्स-सुरक्खेदि। जेण चित्तं लग्गावेदि ते विण लग्गिदं। जं दूरकादव्वं ते लग्गिदं सावगो सगस्स चित्तं लग्गदि लग्गावेदि व। देसस्स णरणाहा जाव सत्ताए उवविसंते, तण चित्ता समायार-

---

चाहता? क्या संसार की पर्यायों में ही तुझे अच्छा लग रहा है? निःश्रेयस सुख से उदास है, तभी तो वर्तमान की पर्याय में शांति महसूस कर रहा है। जिसमें चेतन प्रभु विराजमान है, फिर शरीर के चित्र कैसे चिर स्थायी होंगे? कोड़ा-कोड़ी मुनीश्वर हो गए, वर्तमान युग में भी महाज्ञानी तपस्वी आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी, समंतभद्र-स्वामी अकलंक देव, भद्रबाहु, धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबली, गौतम स्वामी, महावीर स्वामी, तीर्थंकरो तक के चित्र शाश्वत नहीं हैं। न किसी के बचे हैं। फिर हे अज्ञ! तेरा चित्र कैसे बच पाएगा। जिन्होंने चित्र लगाए वे लग नहीं पाए। जिन्हें हटाने हैं वे लग गए हैं। गृहस्थ स्वयं के चित्र लगाता है लगवाता है। देश के नेता जब तक सत्ता में रहते हैं उनके चित्र समाचार पत्र-पत्रिकाओं के मुख्य पृष्ठ पर छपते हैं। जैसे ही गद्दी गई, चित्र पेपरों में आना बन्द हो जाते हैं। आज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्तम्हि मुक्ख-भायम्हि लगगंते, जहेव सासणं गओ, चित्तंपि गओ। अज्ज अडलबिहारी-वाजवेयी पहाण-मंती अओ समायारपत्तेसु, तस्स चित्तं पयासेदि, इंदिरा-गांधी-महप्पा गंधिस्स किं णो, तं देसं सत्तंतं किदं। अरे बंधु! जस्स ज़म्हि समयम्हि पुण्णं सत्ताए वसदि, तहेव सव्वं आसि, पुण्णं-गदं सव्वगदं। इस्सा ण कुण पुण्णकज्जं। लहुगुरु व मुणी कस्स वि तत्तो परण्णु "णमो लोए सव्वसाहूणं" मुणिऊण कस्सवि णो अहलेज्ज अवलेवज्जा णो। किं पि जसो पसरेज्जा तं कधं अवरोहेसि कस्स वि कित्तीए वाहगो किं होज्जा। इणं तुह विडम्बणा सि। कित्तिं ण कायव्वं। तुमं कियत्तु वि विचिंतेसि मज्झ कित्ती अइपसरिएज्जो। जिण-सिद्धतं मुणेहि।

अटल बिहारी वाजपेयी जी प्रधान मंत्री हैं इसलिए प्रत्येक पेपर में उनका चित्र आ रहा है, इन्दिरा गांधी व महात्मा गांधी का क्यों नहीं, उन्होंने तो देश को आजाद करवाया था। अरे भैया! जिसका, जिस समय तक पुण्य सत्ता में रहता है तभी तक सब कुछ है, पुण्य गया सब गया। ईर्ष्या नहीं करो, पुण्यकार्य करो। चाहे मुनि लघु हों तेरे से चाहे गुरु पर, "णमो लोए सव्व साहूणं" को ध्यान में रखकर किसी की अवहेलना न करना, न करवाना। किसी का यश फैल रहा है तो तू उसे कैसे बन्द कर सकता है? किसी की कीर्ति में बाधक बनना चाहते हो तो यह मंत्र तेरी विडमबना है। कीर्ति की नहीं जाती। कितना ही आप चाहे मेरी कीर्ति फैल जाए। जैन सिद्धांत पढ़ो। नाम कर्म की प्रकृतियों में एक यशः कीर्ति नाम कर्म है, एक अयशः कीर्ति। जिसके इसका उदय है, उसके लिए कोई रोकने वाला नहीं है। नारायण हुए, बलभद्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णाम-कम्मस्स पयडीए एगो जसकित्तीणाम कम्मो व एगो अजसोकित्ती। जास उदयो त्थि, तस्स कोवि ण बाहेइ। णारायणो बलभद्दो वि जादो किण्णु राम-लक्खण-किण्ह-बलरामाणं च खादि अहिगो किं? बारह चक्कियं भरहेतरस्स किं? किं अण्ण-पदवीधारी णत्थि? तेसिं अवेक्खाए एदेसिं लोगाणं जसो कित्ती अहिगासी एवं अणेग-आइरिया मुणिराया। तेसुं वि सव्वस्स जसो ण समाणो। तवस्सी अहिगा जाएज्जा, जेहिं पुव्वम्हि तवोणिहीणं थुदिं किदं, तस्स जसकित्तीए बहुदव्वं संगहिदा तं अहुणा भुंजेति, अओ णाणीणं किंपि संबंधे विवरीदं ण चिंतणीय, उवज्झाणं ण करणीयं अविदु इणं कत्तव्वं करणीयं जत्तो पुण्णं बड्ढेहि, पावकम्मं खयहि।

भी हुए, पर राम, लक्ष्मण, कृष्ण, बलराम आदि का नाम अधिक क्यों? बारह चक्रियों में भरतेश्वर ही नाम क्यों? क्या अन्य पदवी धारी नहीं थे? पर उनकी अपेक्षा इन लोगों की यश कीर्ति ज्यादा थी। उसी प्रकार से अनेक आचार्य हैं व मुनिराज हैं, उनमें सभी का यश समान नहीं है। तपस्वी ज्यादा हो सकते हैं, पर जिन्होंने पूर्व में तपोनिधियों की स्तुति हो सकी है, उससे यश नामकर्म का प्रबल द्रव्य तैयार किया था। उसे अब भोग रहे हैं इसलिए ज्ञानियों को किसी के बारे में उल्टा नहीं सोचना, अपध्यान नहीं करना चाहिए अपितु वह कर्तव्य करना चाहिए जिसके माध्यम से पुण्य की वृद्धि हो, पाप कर्म का क्षय हो। यहाँ तक कि यश: कीर्ति आदि पुण्य प्रकृतियों का भी क्षय हो, सिद्धत्व प्राप्त करें। जब तक सिद्धत्व प्राप्त नहीं हो रहा तब तक जितना पुण्य है, जितना फल है उसमें संतुष्ट होकर पाप कर्म का क्षय हो। अन्यथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व जसो कित्ती वि पुण्ण पयडीणं च वि खयहि सिद्धत्तं लहेहि। जाव सिद्धत्तं पत्तेज्जा ताव जत्तो पुण्णं, जत्तो फलं तम्हि संतुट्ठिऊणं पाव कम्मस्स खएज्जा। अण्णहा जेणं अहंकारेण सह तुं भमेसि, अग्गे वि भमेस्ससि, किंचि वि ण लहेस्ससि।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

जिस अहं के कारण तू भटका है, आगे वैसे ही भटकता रहेगा, कुछ भी मिलने वाला नहीं है।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्पासुहं परमं सुहं

भो अप्पण! भव-भवाणं ओसहीए किं तुज्झ णाणं णो जादं। किं विसरिदो अणंद भवस्स वेयणं? एगं भवस्स अंतो, वेयणा सुमरेदि तदो तुमं पुणो-पुणो भव-भामणस्स हेऊओ भयजदो होस्ससि णं सयं पुण्णं चइदूण चिट्ठंतोसि। जइ सुमरदि भवाणं दुहं तदो दुहस्स हेदू पावकम्मं भोगविलासिदाए ण जी सक्केदि। पाव कम्मं ण णस्सेसि। रे मोहि! जीवो वियारेहि, दुह-मुत्तिस्स उवायं कुण। किं असारं किलेसं पत्तेसि। सम्मउज्जमं कुण विसय सुहादो सहस्सगुणा सुहं आदसुहं। तुज्झ तं णवि सुह-णाणं, किण्णु

आत्म सुख ही सच्चा सुख है

हे प्रज्ञात्मन्! भव-भव की दवा से क्या तेरा आज तक परिचय नहीं हुआ। क्यों भूला है अनंत भवों की वेदना को? एक भव की अंतस्थ वेदना स्मरण में आ जाए तो शायद तू पुनः - पुनः भव भ्रमण के हेतुओं से भयभीत हो जाएगा, पर तू अपने आपको पूर्ण भुलाकर रखता है। कहीं याद आ जायेंगे भावों के दुःख तो दुःख के हेतु पाप कर्म को भोग विलासता में नहीं जी पायेगा। पाप कर्म नहीं कट सकेगा। रे मोही जीव! विचार कर, दुःख मुक्ति का उपाय कर। क्यों व्यर्थ के क्लेश को प्राप्त कर रहा है। सम्यक पुरुषार्थ कर इन्द्रिय सुखों से सहस्र गुना सुख आत्मसुख है। अभी तुझे उस सुख का भान नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0:In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिणेंदवयणे सद्धेसु। केवली भगवं वुत्तं- तं पुण्णरूवेण सच्चं, तम्हि किंचिवि णो संसयं।

ण संसयं तुमं कयावि कुणेसु। संसार विच्छेदस्स णिम्मलउज्जमं कुण, कालंद्धिं णियमादो विज्जत्तं लहे काललद्धीए विणा कस्सवि कज्जस्स ण सिद्धो अद्धपोग्गलपरावट्टणमेत्तं संसार-ट्ठिदी सेसा हो। ताव इमो जीवो पढमोवसम सम्मतस्स जोग्गो होदि, ताव पढमं काललद्धिं पत्तेदि फुरंतेण सह विसुद्ध-लद्धी, खायोवसमलद्धी, देसणा-लद्धी तिजोग-लद्धी, करण-लद्धी, इमाओ पंच-लद्धीओ अवस्समेव । सो जीवो चउलद्धीओ पुणो-

---

जिनदेव की वाणी पर श्रद्धान तो कर। केवली भगवान ने जो कथन किया है वह पूर्ण रूपेण सत्य है उसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है।

ना संशय तू कभी करना। संसार विच्छेद का निर्मल पुरुषार्थ कर काल लब्धि के आने पर नियम से विद्वत्व की प्राप्ति होगी। बिना काल लब्धि के किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं होती। अर्द्ध पुद्गल परावर्तन संसार की स्थिति अवशेष रह जाती है। जब यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व के योग्य होता है तब प्रथम काललब्धि प्रकट होती है साथ ही विशुद्ध लब्धि, क्षयोपशम लब्धि, देशना लब्धि, त्रायोग लब्धि, करण लब्धि ये पांच लब्धियों का होना भी अनिवार्य है। उस जीव ने चार लब्धियाँ तो अनेक बार प्राप्त की है परंतु करण लब्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुणो पत्तो करणलद्धी भव्व-जीवो च लहेदि। करण-लद्धीए विणा सम्मत्तं ण पगडेदि। भव्व! णिय अंतं णिम्मलं कादूणं पंच लद्धीओ तहेसु पंचम गदिं लहेसु।

"जयदु णमोत्थु सासणं"

भव्य जीव को ही प्राप्त होती है बिना करण लब्धि के सम्यकत्व गुण प्रकट नहीं होता है। हे भव्यवर! अपने अंत: करण को निर्मल रखकर लब्धियों को प्राप्त कर पंचम गति को प्राप्त कर।

"नमोस्तु शासन जयवंत हो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणुवादग-पसत्थी

''णिजप्प-तरंगिणी'' गंथस्स मूल पणेदा चिंतगो वा, सिरी आदिसायरस्स सिस्सो, महावीरकित्ती आइरियो, तस्स सिस्सो, विमलणाणवंतो विमलसायरो, तस्स महापण्ण-वंतो सिस्सो गणाइरियो विरागसायरो, तस्स वरिट्ठो, चरिआ-सिरोमणी, अज्झप्पजोई, अज्झप्पसिन्धुस्स राजहंसो, सयल-चित्तो सिरी विसुद्धसायरो त्थि। तस्स आणणुवत्ती सिस्सो, अपण्हु आरज्झ सायरो, आसीसे व आणाए अणुवादं किदो इमस्स गंथस्सो। इमं गंथं फग्गुण-मासे णेमिणाह-चरणेसु छत्तरपुर-णयरे सीरी-णिव्वाण-संव्वदे 2540 आरंभिदो गिम्हवायणाए, व सरोवर-णयरी भोपाल-

---

अनुवादक की प्रशस्ति

इस ''निजात्म-तरंगिनी'' नामक ग्रन्थ के मूल प्रणेता व विचारक श्री आदिसागर जी के सुशिष्य, आचार्य महावीर किर्ति जी, व उनके विमल ज्ञान के धारी शिष्य विमलसागरजी, उनके महान मेधावी शिष्य गणाचार्य विरागसागर जी के जेष्ठ शिष्य, चर्याशिरोमणी, अध्यात्म योगी, अध्यात्म सरोवर के राजहंस, सरल हृदयी, आचार्यश्री विशुद्धसागर जी हैं। उनके आज्ञानुवर्ति अल्पज्ञ शिष्य मुनि आराध्यसागर ने किया है। यह ग्रन्थ फल्गुन माह में नेमिनाथ स्वामी के चरणों में छतरपुर ग्राम, ग्रिष्म कालिन वाचना के अवसर पर वीरनिर्वाण संवत 2540 में आरम्भ किया व झिलों की नगरी भोपाल नगर जहाँगीरा बाद जिनालय आसोज मास शुक्ल पक्ष दशमी वीर निर्वाण संवत् 2540 में संपन्न हुआ। यह ग्रंथ सभी दुःखी व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णयरे जहागीरावाद जिणालये आसोजमासे विजयदसमी दिणे वीर-णिव्वाण-सव्वदे 2540 संपूण्णिदो/इमो गंथो जणसामण्णाणं, दुही-कलंत्ताणं मग्ग-दस्सायगो होज्जा व जुग जुग पज्जंतं णमोत्थु सासणस्स पडागस्स सुत्तरो होज्जा।

क्लांत जीवों के लए मार्ग प्रदर्शक सिद्ध होगा। व युगों युगों तक नमोऽस्तु शासन की निर्मल ध्वजा का सूत्रधार होगा।

शुभम् भूयात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री १०८ विशुद्धसागर जी महाराज

॥ संक्षिप्त परिचय ॥

पूर्व नाम	:	श्री राजेन्द्र कुमार जैन (लला)
पिता श्री	:	सेठ श्री रामनारायण जी जैन (समाधिस्थ: मुनिश्री विश्वजीतसागर जी)
माताश्री	:	श्रीमति रत्तीबाई जी जैन (समाधिस्थ क्षु. विश्वमति माताजी)
जन्म	:	१८ दिसम्बर १९७१
जन्मस्थान	:	भिण्ड (म.प्र.)
गृह-ग्राम	:	रूर ग्राम, जिला-भिण्ड (म.प्र.)
लौकिक शिक्षा	:	मैट्रिक
क्षुल्लक दीक्षा	:	११ अक्टूबर १९८९, भिण्ड
ऐलक दीक्षा	:	१९ जून, १९९१, पन्ना (म.प्र.)
मुनि दीक्षा	:	२१ नवम्बर १९९१ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा श्रेयांस गिरि (म.प्र.)
आचार्य पद	:	३१ मार्च २००७, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
दीक्षा गुरु	:	गणाचार्य श्री विराग सागरजी महाराज
संयमी-सृजन	:	३४ मुनि एवं त्रयदशक ब्रह्मचारी भैय्या
साहित्य सृजन	:	एक शतक आध्यात्मिक कृतियाँ
रुचि	:	न्याय-अध्यात्म, अध्ययन/अध्यापन एवं लेखन। अध्यात्ममयी प्रवचनों के प्रस्तोता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi